णमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स

जैन-शास्त्र-माला-पञ्चमरत्नम्

जैनागमों में स्याद्-वाद

संग्राहक—

जैनधर्मदिवाकर, साहित्य-रत्न, जैनागमरत्नाकर,

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज

जैन-शास्त्रमाला-कार्यालय

जैनस्थानक, लुधियाना

प्रति १००० | प्रथम बार

वीर सं० २४७७ | विक्रम सं० २००८

मूल्य स्वाध्यायमात्र १।)

साधुवादार्थ दो शब्द

स्थानकवासी जैन-संप्रदाय के आगमाभ्यासी विद्वानों में पूज्य आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज का नाम विशेष उल्लेखनीय है आप आगमों के विशिष्ट अभ्यासी और गम्भीर पर्यालोचक हैं। तत्त्वार्थ सूत्र का जैनागम-समन्वय (जो कि आप के द्वारा संपादित हुआ है) आपके जैनागम-संबन्धि असाधारण चिन्तन और मनन का ही विशिष्ट फल है। इसके अतिरिक्त आप ने आगमों के विवेचनीय विषयों से सबन्ध रखने वाले कतिपय मौलिक और अनुवाद रूप ग्रंथों के निर्माण से स्थानकवासी संप्रदाय के प्रसुप्त कलेवर में अभूतपूर्व जागृति उत्पन्न करने का भी पर्याप्त श्रेय प्राप्त किया है। आजसे कुछ समय पहले मैंने आप से प्रार्थना की थी कि यदि आप जैनागमों में विभिन्न स्थानों पर विद्यमान मूल पाठों और खासकर स्याद्-वाद अनेकान्त-वाद विषय के उल्लेखों को--उन पर की गई पूर्वाचार्यों की व्याख्या के साथ—एक जगह संगृहीत कर के एक पुस्तक के आकार में प्रकाशित करा देवें तो जैनदर्शन का तुलनात्मक पद्धति से अभ्यास करने वाले विद्यार्थियों और तात्त्विक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से जैनधर्म के मौलिक स्वरूप की गवेषणा करने वाले विशिष्ट विद्वानों के लिये आप की यह अपूर्व देन होगी। उन्हें इस के लिये अधिक परिश्रम न करना पड़ेगा और यत्न-साध्य वस्तु अनायास ही प्राप्त हो जायगी। इस के सिवाय आर्य संस्कृति के विशिष्ट अंग-भूत जैन-संस्कृति में विद्यमान दार्शनिक विचारों की प्राचीन प्रणाली से अज्ञात जैनेतर विद्वानों को उस के

विशिष्ट स्वरूप का ज्ञान भी सुलभ हो जायगा इत्यादि, मुझे यह कहते हुए अत्यन्त हर्ष होता है कि मेरी इस उचित प्रार्थना को आपने पूरे ध्यान से सुना और उसके लिये यथाशक्ति प्रयास करने का वचन दिया ॥

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि जिस संग्रह के लिये मैंने आचार्य श्री जी से सानुरोध प्रार्थना की थी वह सुचारुरूप से सम्पन्न हुआ। और आज एक अच्छे रूप में मुद्रित होकर पाठकों के कर कमलों की शोभा बढ़ा रहा है। अतः मेरी और मेरे सहचारी अन्य विद्वन्मण्डल जोकि इस विषय से हार्दिक प्रेम रखता है की ओर से आप के इस साधुजनोचित समुचित कार्य के लिये अनेकानेक साधु-वाद। मेरी दृष्टि में विद्वानों के लिये यह वस्तु बड़े काम की है। वे इस से यथाशक्ति यथा-मति लाभ उठाने का अवश्य यत्न करेंगे ऐसी मुझे पूर्ण आशा है ॥

निवेदक—

हंस राज शास्त्री

स्याद्-वाद

स्याद्-वाद की मौलिकता, महानता एवं उपादेयता को जानने से पूर्व उस के शाब्दिक अर्थ पर दृष्टिपात कर लेना उचित प्रतीत होता है।

स्याद्-वाद के निर्माण करने वाले स्याद् और वाद ये दो पद हैं। स्याद् यह अव्ययपद है, जो *अनेकान्त अर्थ का बोध कराता है, वाद का अर्थ है कथन अर्थात् अनेकान्त द्वारा कथन, वस्तुतत्व का प्रतिपादन स्याद्-वाद है। इस अर्थ-विचारणा से स्याद्-वाद का दूसरा नाम अनेकान्तवाद भी होता है।

एकान्त-वाद का अभाव अनेकान्तवाद है। एकान्त-वाद में किसी भी पदार्थ पर भिन्न दृष्टियों से विचार नहीं किया जाता प्रत्युत एक पदार्थ को एक ही दृष्टि से देखा जाता है जब कि अनेकान्त-वाद प्रत्येक वस्तु का भिन्न २ दृष्टिकोणों से विचार करता है, देखता है, और कहता है।

जैन-दर्शन अनेकान्त-वादी है। एकान्त-वाद उसे इष्ट नहीं है। एकान्त-वाद अपूर्ण है, सत्यता को पङ्गु बनाने वाला है और यह लोकव्यवहार का साधक न होकर बाधक बनता है। एकान्त-वाद की व्यवहार-बाधकता उदाहरण से समझिए—

एक व्यक्ति दुकान पर बैठा है। एक ओर से एक बालक आता है, वह कहता है - पिता जी !, दूसरी ओर से एक बालिका आती है, वह कहती है—चाचा जी !, तीसरी ओर से एक वृद्धा आती है, वह कहती है—पुत्र !, चौथी ओर से उस का समवयस्क

*स्याद् इत्यव्ययम् अनेकान्त-द्योतकं, ततः स्याद् वादः- अनेकान्त-वादः। (स्याद्-वाद-मंजरी में मल्लिषेणसूरि)

एक मनुष्य आता है, और कहता है---भाई !, इतने में एक बालक दुकान के भीतर से निकलता है वह कहता है—मामा जी !, मतलब यह है कोई उस व्यक्ति को चाचा, कोई ताऊ, कोई मामा और कोई पिता कहता है। प्रत्येक एक दूसरे की बात मानने को तैयार नहीं है। पुत्र कहता है—ये तो पिता ही हैं। बूढ़ा कहता है—नहीं नहीं, यह तो पुत्र ही है। आदि आदि।

सभी एकान्त-वादी बने हुए हैं—एक ही दृष्टि को लेकर तने हुए हैं। कोई अपना आग्रह छोड़ने को तैयार नहीं, कहिए इन का निर्णय कैसे हो ? कैसे उन के अशान्त मन को शान्त किया जाए ? एकान्त-वाद तो उस विवाद का मूल है, वह भला इस में निर्णायक कैसे बन सकता है ?

यहां अनेकान्त-वाद का आश्रयण करना होगा। अनेकान्त-वाद इस विवाद को बड़ी सुन्दरता से निपटा देता है। देखिए—अनेकान्त-वादी लड़के से कहता है--पुत्र ! तुम ठीक कहते हो---ये तुम्हारे पिता हैं, किन्तु यह ध्यान रहे यह तुम्हारे हैं न कि सबके, क्योंकि तुम इनके पुत्र हो। लड़की से कहता है—पुत्रि ! तुम भी गलत नहीं कहती हो, ये तुम्हारे चाचा हैं, क्योंकि ये तुमारे पिता के छोटे भाई हैं, आदि आदि।

अनेकान्तवाद कहता है—एक ही व्यक्ति में अनेक धर्म हैं, परन्तु वे भिन्न २ दृष्टियों से हैं, न कि केवल एक दृष्टि से, विवाद तब होता है, जब एक ही दृष्टि का आदर होता है, और अन्य दृष्टियों का अनादर। देखा, अनेकान्त-वाद का अपूर्व निर्णय !. और देखो, एकान्त-वाद की लोक-व्यवहार-बाधकता !

स्याद्-वाद के इस गूढ रहस्य को जानने वाले स्याद्-वादी-

अनेकान्त-वादी की दृष्टि में बोर्ड पर खींची हुई तीन इंच की रेखा में अपेक्षाकृत बड़ापन तथा अपेक्षाकृत ही छोटापन रहा हुआ है। यदि तीन इंच की रेखा के नीचे पांच इंच की रेखा खींच दी जाए तो वह (तीन इंच की रेखा) पांच इंच की रेखा की अपेक्षा छोटी है और ऊपर दो इंच की रेखा खींच दी जाए तो वह ऊपर की अपेक्षा बड़ी है। एक ही रेखा में छोटापन तथा बड़ापन ये दोनों धर्म अपेक्षा से रह रहे हैं। स्याद्-वादी तीन इंच की रेखा को "यह छोटी ही है" अथवा "यह बड़ी ही है" इन शब्दों में नहीं कह सकेगा।

ऊपर के विवेचन में अभी तक स्थूल लौकिक उदाहरणों से स्याद्-वाद को समझाने का प्रयत्न किया गया है। अब ज़रा दार्शनिक उदाहरणों से स्याद्-वाद की उपादेयता को समझिए।

जैन दर्शन कहता है कि प्रत्येक पदार्थ नित्य भी है, और अनित्य भी है। पाठक इस बात से अवश्य विस्मित होंगे और उन्हें सहसा यह ख्याल आएगा कि जो पदार्थ नित्य है, वह भला अनित्य कैसे हो सकता है!, और जो अनित्य है वह नित्य कैसे हो सकता है!, परन्तु पाठक ज़रा गंभीर चिन्तन करें और देखें स्याद्-वाद इस समस्या को कैसे सुलझाता है—

कल्पना कीजिये-एक सोने का कुण्डल है। हम देखते हैं कि जिस सुवर्ण से वह बना है, उसी से और भी कटक आदि कई प्रकार के आभूषण बन सकते हैं। यदि उस कुण्डल को तोड़ कर हम उसी कुण्डल के सुवर्ण से कोई दूसरा भूषण तैयार करलें तो उसे कदापि कुण्डल नहीं कहा जा सकेगा। उसी सुवर्ण के होते हुए भी उस को

कुण्डल न कहने का कारण ? उत्तर स्पष्ट है, उस में अब कुण्डल का आकार नहीं रहा।

इस से यह स्वतः सिद्ध है कि कुण्डल कोई स्वतन्त्र द्रव्य नहीं है, बल्कि सुवर्ण का एक आकार विशेष है। और यह आकार विशेष सुवर्ण से सर्वथा भिन्न नहीं है, उसी का एक रूप है। क्योंकि भिन्न २ आकारों में परिवर्तित सुवर्ण जब कुण्डल कटक आदि भिन्न नामों से सम्बोधित होता है, तो उस स्थिति में आकार सुवर्ण से सर्वथा भिन्न कैसे हो सकता है ? अब देखना है कि इन दोनों स्वरूपों में विनाशी-स्वरूप कौनसा है ? और नित्य कौनसा ? यह प्रत्यक्ष है कि कुण्डल का आकार स्वरूप विनाशी है। क्योंकि वह बनता है और बिगड़ता है, पहले नहीं था बाद में भी नहीं रहेगा। और कुण्डल का जो दूसरा स्वरूप सुवर्ण है, वह अविनाशी है,क्योंकि उस का कभी नाश नहीं होता,कुण्डल की निर्मिति से पूर्व भी वह था, और उसके बनने पर भी वह मौजूद है, जब कुण्डल नष्ट हो जायगा तब भी वह मौजूद रहेगा। प्रत्येक दशा में सुवर्ण सुवर्ण ही रहेगा। सुवर्ण अपने आप में स्थायी तत्व है, उसे बनना बिगड़ना नहीं, इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि कुण्डल का एक स्वरूप विनाशी है,और दूसरा अविनाशी। एक बनता है और नष्ट होता है, परन्तु दूसरा हमेशा बना रहता है, नित्य रहता है। अतः अनेकान्त-वाद की दृष्टि से—कुण्डल अपने आकार की दृष्टि से विनष्ट होने के कारण अनित्य है, और मूल सुवर्ण के रूप में अविनाशी रूप से नित्य। इस प्रकार एक ही पदार्थ में परस्पर विरोधी जैसे दीखने वाले नित्यता और अनित्यता रूप धर्मों को सिद्ध करने वाला सिद्धान्त अनेकान्तवाद ही है।

संसार में जितने भी एकान्त-वादी विचारक हैं वे पदार्थ के एक २ अंश-धर्म को ही पूरा पदार्थ समझते हैं। इसी लिये उन का दूसरे धर्म-वालों से विवाद होता है, और कभी कभी तो वे इतने आग्रही होकर लड़ते-झगड़ते दिखाई पड़ते हैं कि मनुष्यता से भी हाथ धो बैठते हैं।

जिस समय राजगृहनगर के चौराहों पर पण्डितों के दल के दल घूमा करते थे, धर्म और सत्य के नाम पर कदाग्रह की पूजा हो रही थी, सभ्यता को मुंह छिपाने के लिये भी जगह नहीं मिल रही थी, असभ्यता विद्वत्ता के सिंहासन पर बैठी हुई थी, पण्डितों के दलों में जो आपस में अनेक तरह से भिड़ पड़ते थे, बोलाचाली के साथ २ हाथापाई मुक्कामुक्की तक की नौबत भी आजाती थी, ये पण्डित बड़ी तेजी से धर्म-रक्षा के लिये प्राण देने और लेने के लिये प्रतिक्षण तैयार रहते थे, कहीं नित्यवादी अनित्यवादी का मस्तक पत्थर मार कर इसलिये फोड़ देता कि जब पदार्थ अनित्य (स्थायी न रहने वाले) हैं तो मस्तक के फूटने से तुम्हारा क्या बिगड़ा !, कहीं अनित्यवादी नित्यवादी के मस्तक को इसलिये फोड़ता कि तुम तो कहते हो पदार्थ नित्य (स्थायी ही रहने वाला) है तो फिर रोते क्यों हो !, इस तरह से एक दूसरे को पछाड़ता, वह दर्शनों का युग था, जहां जिस की टक्कर होती वहीं युद्ध का श्रीगणेश हो जाता. पण्डितों के इन भीषण धर्म्म-द्वन्द्वों से नगर में सर्वतोमुखी आतंक छाया हुआ था. जनता धर्मतत्व से ऊब चुकी थी उस से घृणा करने लग गई थी। अब तो वहां किसी शान्ति के पथप्रदर्शक की प्रतीक्षा हो रही थी।

अहिंसा और सत्य के देवता भगवान महावीर स्वामी इसी युग में संसार में अवतरित हुए थे, जो कि एक विशिष्ट वैद्य के रूप में आधि, व्याधि और उपाधिरूप त्रिताप से संतप्त संसार को शान्ति का अमर सन्देश देने के लिये पधारे थे, उन्हों ने देश के रोग के निदान-मूलकारण को टटोला और अनेकान्तवाद के दिव्य औषध से उस का उपचार कर उसे शान्त किया।

भगवान महावीर ने संसार को अनेकान्त-वाद का अमर सन्देश दिया। प्रभु महावीर ने सिंह-गर्जना से कहा हे आर्यो! परस्पर में लड़ने से कभी शान्ति नहीं होगी। पारस्परिक द्वन्द्वों से कभी किसी की उन्नति नहीं हो पाई है अतः परस्पर स्नेह स्थापित करो और परस्पर में भ्रातृभाव का पोषण करो। विवाद का मूल तुम्हारा एकान्तवादी होना है उसे छोड़ो और अनेकान्त-वादी बनो। किसी भी पदार्थ को एकदृष्टि से मत देखो, उस में स्थित सभी अंशों पर गंभीरता से विचार करो।

जो कहता है कि आत्मा नित्य ही है, वह भूलता है और जो कहता है कि आत्मा अनित्य ही है, वह भी भूल करता है। वास्तव में आत्मा नित्यानित्य है— नित्य भी है, अनित्य भी है। संसारी आत्मा कभी मनुष्यपर्याय (अवस्था) में तथा कभी पशु आदि पर्यायों में यातायात करती रहती है, एक अवस्था में स्थिर नहीं रहती है, नट की भांति अनेकविध नेपथ्य धारण करती है, इस दृष्टि से यह आत्मा अनित्य है। तथा आत्मा किसी भी मनुष्य आदि पर्याय में रहे किन्तु वह रहती आत्मा ही है, अनात्मा नहीं बन जाती, ज्ञान दर्शन की अनन्तता से शून्य नहीं हो पाती है, इस दृष्टि से आत्मा नित्य है। आत्मा को नित्यानित्य मानने पर

ही लोक व्यवहार सधता है, और पारस्परिक शांति स्थायी रह सकती है अस्तु। पृथिवी, अप्, तेजस्, वायु और आकाश किसीभी पदार्थ के सभी अंशों पर किये गये विचार को ही स्याद्-वाद या अनेकान्तवाद कहा जाता है, इसी स्याद्-वाद की दिव्य औषधी ने उस समय राष्ट्र के अन्तर-स्वास्थ्य को सुरक्षित रखा।

स्याद्-वाद एक अमर विभूति है, जो अमरत्व की सन्देश-वाहिका है, तथा प्रेम और शान्ति की जनिका है। स्याद्-वादी कभी किसी दर्शन से घृणा नहीं करेगा. यदि संसार के समस्त दार्शनिक अपने एकान्त आग्रह को त्यागकर अनेकान्त से काम लेने लगें तो दर्शन-जीवन के सभी प्रश्न सहज में ही निपट सकते हैं। स्याद्-वाद की समन्वय-दृष्टि बड़ी विलक्षण है। जिस प्रकार जन्म के अन्धे कई मनुष्य किसी हाथी के भिन्न २ अवयवों को ही पूर्ण हाथी समझ कर परस्पर लड़ते हैं। पूंछ पकड़ने वाला कहता है—हाथी तो मोटे रस्से जैसा होता है। सूण्ड पकड़ने वाला कहता है झूठ कहते हो, हाथी तो मूसल जैसा होता है। कान पकड़ने वाला कहता है अरे भाई! यदि आंखें नहीं, हाथ तो हैं ही. हाथी तो छाज जैसा होता है। पेट को छूने वाले अन्ध-देवता बोले—तुम सब झूठे हो, बकवादी हो, व्यर्थ की गप्पे हांकने वाले हो, हाथी को तो मैंने समझा है हाथी तो अनाज भरने वाली कोठी जैसा होता है। मतलब यह है प्रत्येक अन्धा अपने २ पकड़े हुए हाथी के एक २ अंग को हाथी समझता है, एक दूसरे को झूठा कहता है, तथा एक दूसरे से लड़ने मरने के लिये तैयार हो जाता है।

सद् भाग्य से वहां कोई शांतिप्रिय, आंखों वाला अज्जन

आगया, उन जन्मान्धों की तू तू मैं मैं को सुन तथा सारी स्थिति समझ कर, उन पर करुणा करता हुआ बोल उठता है—बन्धुओ! क्यों लड़ २ कर मर रहे हो? क्यों चर्म-चक्षु खो लेने पर भी आन्तरिक दिव्य चक्षुओं को विनष्ट करने में उद्यत हो रहे हो सुनो, मेरी बात सुनो! मैं तुम्हारा विवाद निपटाए देता हूँ, तुम सच्चे होकर भी झूठे हो। तुम ने हाथी को समझा ही नहीं। हाथी के एक २ अवयव को ही तुम हाथी समझ रहे हो। एक दूसरे को झुठलाने की कोशिश मत करो। तुम अपनी २ दृष्टि का आग्रह छोड़ कर हाथी के समस्त अंगों को मिला डालो बस हाथी बन गया। यह ठीक है कि हाथी की पूंछ रस्से जैसी मोटी होती है एवं हाथी के कान छाज जैसे होते हैं परन्तु केवल कान को या पूंछ आदि को हाथी समझना या कहना भूल है। सभी अंगों के समुदाय का नाम हाथी है, और यही सत्य है। अपना २ आग्रह छोड़ो और देखो झगड़ा अभी निपटा पड़ा है।

ठीक इसी प्रकार स्याद्-वाद भी परस्पर एक दूसरे पर आक्रमण करने वाले दर्शनों को सापेक्ष सत्य मान कर समन्वय कर देता है। उपाध्याय यशोविजय जी ने कितने सुन्दर शब्दों में स्याद्-वाद का रहस्य प्रकट किया है—* सच्चा अनेकान्त वादी किसी भी दर्शन से द्वेष नहीं करता। वह सम्पूर्ण नयरूप दर्शनों को इस प्रकार वात्सल्य-दृष्टि से देखता है, जैसे कोई पिता अपने

---

* यस्य सर्वत्र समता नयेषु तनयेष्विव।
तस्यानेकान्तवादस्य क्व न्यूनाधिकशेमुषी॥

पुत्रों को देखता हो। क्योंकि अनेकान्त-वादी की न्यूनाधिक बुद्धि नहीं हो सकती। वास्तव में सच्चा शास्त्रज्ञ कहे जाने का अधिकारी वही है जो अनेकान्त-वाद का अवलम्बन लेकर सम्पूर्ण दर्शनों में समान भाव रखता है। माध्यस्थभाव ही शास्त्रों का गूढ़ रहस्य है। यही धर्म-वाद है। माध्यस्थभाव रहने पर शास्त्रों के एक पद का ज्ञान भी सफल है। अन्यथा क्रोड़ों शास्त्रों के पढ़ जाने से भी कोई लाभ नहीं।

स्याद्-वाद की अव्याबाध गति है। कहीं पर भी उस की गति स्तंभित नहीं होती। जहां देखो वहीं स्याद्-वाद आसन जमाए बैठा है। आचार्य-प्रवर श्री हेमचन्द्र सूरि तो यहां तक बोल उठे हैं–कि वैयाकरणों के जो विकल्प, बाहुलक आदि हैं वे सब के सब स्याद्-वाद के ही आश्रित हैं। उन का कहना है कि *व्याकरण की सिद्धि ही स्याद्-वाद से होती है। स्याद्-वाद के बिना व्याकरण का कोई महत्त्व नहीं रहता।

तेन स्याद्वादमालंब्य, सर्वदर्शनतुल्यतां।
मोक्षोद्देशाविशेषेण यः पश्यति स शास्त्रवित्॥

माध्यस्थमेव शस्त्रार्थो येन तच्चारु सिध्यति।
स एव धर्मवादः स्यादन्यद्बालिशवल्गनम्॥

माध्यस्थसहितं त्वेकपद-ज्ञानमपि प्रमा।
शास्त्रकोटिः वृथैवान्या, तथा चोक्तं महात्मना॥

(अध्यात्मसार)

* सिद्धिः स्याद्वादात्। १।१।२॥

(हैमसूत्रम्)

स्याद्-वाद के इस अमर सिद्धान्त को दार्शनिक संसार ने बड़ा मान दिया है, महात्मा गांधी जैसे संसार के महान पुरुषों ने भी इस की महान प्रशंसा की है। पाश्चात्य विद्वान डा० थामस आदि ने भी कहा है कि "स्याद्-वाद का सिद्धान्त बड़ा ही गंभीर है। यह वस्तु की भिन्न २ स्थितियों पर अच्छा प्रकाश डालता है।"

आज चारों ओर, जो पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा धार्मिक विरोध दृष्टिगोचर हो रहे हैं तथा कलह, ईर्ष्या, अनुदारता, साम्प्रदायिकता और संकीर्णता आदि दोषों ने मानव-समाज को खोखला बना डाला है, इन सब को शान्त करने का एकमात्र यदि कोई उपाय है तो वह बस स्याद्-वाद ही है। विश्व में जब भी कभी शान्ति होगी तो वह स्याद्-वाद से ही होगी यह बात निःसंदेह सत्य है।

जिस स्याद्-वाद के सम्बन्ध में ऊपर कुछ कहा गया है। उस का उद्गम स्थान है--जैनागम। जैनागमों में स्याद्-वाद का बड़ी सुन्दरता से विवेचन मिलता है। विवेचन का ढंग भी बड़ा निराला है। साधारण बुद्धि का धनी भी उसे पढ़ कर गद्गद हो उठता है। जानकारी के लिये एक उदाहरण देता हूँ--

भगवती सूत्र में लिखा है—भगवान महावीर राजगृह नगरी में विराजमान थे। भगवान के प्रधान शिष्य अनगार गौतम भगवान से एक प्रश्न पूछते हैं। अनगार गौतम बोले—

भदन्त ! जीव शाश्वत (नित्य) हैं या अशाश्वत (अनित्य) हैं, भगवान बोले—गौतम ! जीव कथञ्चित् शाश्वत हैं, कथञ्चित अशाश्वत।

गौतम,—भदन्त ! जीव कथञ्चित शाश्वत है, तथा कथञ्चित् अशाश्वत हैं, यह कहने से अभिप्रेत क्या है ?

भगवान,—गौतम ! प्रत्येक पदार्थ को अनेक दृष्टियों से देखा जाता है। यदि जीव को द्रव्यत्वेव (द्रव्य की अपेक्षा से) देखते हैं तो वे शाश्वत हैं, क्योंकि वे किसी भी अवस्था में रहें, किन्तु रहेंगे द्रव्यत्व-विशिष्ट ही; द्रव्यत्व से च्युत नहीं होंगे। यदि अवस्था-परिवर्तन की दृष्टि से विचार करते हैं तो वे अशाश्वत हैं। क्योंकि कभी तो वे मनुष्य शरीर को त्याग कर पशु-देहधारी बन जाते हैं और कभी पशुदेह को छोड़ कर देवताओं के संसार में जा उत्पन्न होते हैं—उन में अवस्थाओं का परिवर्तन होता रहता है, वे एक अवस्था में नहीं रह पाते। इस प्रकार अनेक दृष्टियों से विचार करने पर जीव शाश्वत भी हैं तथा अशाश्वत भी हैं *।

इस प्रकार के अनेकों उदाहरण हैं जिन से श्री भगवती सूत्र, श्री सूत्रकृताङ्ग और श्री जीवाभिगम आदिक ✱सूत्र भरे पड़े हैं। जोकि स्वतन्त्र अध्ययन से सम्बन्ध रखते हैं।

* प्र०—जीवा णं भंते ! किं सासया असासया।

उ०—गोयमा ! सिय सासया, सिय असासया।

प्र०—से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ,—जीवा सिया सासया सिय असासया !

उ०—गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया, भावट्ठयाए असासया से तेणट्ठे णं गोयमा ! एवं वुच्चइ—जाव सिय सासया, सिय असासया। (भगवती सूत्र)

✱ प्रस्तुत "जैनागमों में स्याद्-वाद" नामक पुस्तक में श्री प्रज्ञापना सूत्र का पांचवां पद तथा श्री सूत्र कृताङ्ग जी के द्वितीय श्रुतस्कन्ध का ५वां अध्याय भी सम्पूर्ण प्रकाशित है ताकि पाठक सुविधापूर्वक स्याद्-वाद के स्वरूप को अवगत कर सकें।

स्याद्-वाद प्रेमियों की यह चिरकाल से भावना तथा कामना चली आरही थी कि जैनागमों में जहां कहीं भी लोकोपयोगी स्याद्-वाद प्रदर्शन करने वाले पाठ हैं उन का तथा साथ में उन पाठों पर की गई प्राचीन आचार्यों की संस्कृत टीकायों का भी संग्रह हो जाय। ताकि प्रत्येक जिज्ञासु अपनी जिज्ञासा को एक ही स्थान पर पूर्ण कर सके। पर यह काम कोई साधारण काम नहीं था, इस काम के लिये आगमों के मन्थन करने वाले किसी आगमों के मार्मिक विद्वान की आवश्यकता थी। मैं यह बड़े गौरव से लिखने लगा हूं कि मेरे गुरुदेव, जैनधर्म-दिवाकर, साहित्य-रत्न, जैनागमरत्नाकर, श्रीमज्जैनाचार्य परमपूज्य, परमश्रद्धेय, श्री **आत्मारामजी** महाराज के आगमसम्बन्धी विशिष्ट अध्ययन, तथा तद्विषयक सततचिन्तन ने उस आवश्यकता को पूरा कर डाला है। पूज्य श्री जी म० ने अपने आगम-स्वाध्याय के बल से जहां कहीं भी स्याद्-वाद सम्बन्धी आगमों में पाठ थे उन को एक स्थान पर संकलित कर दिया और साथ में उन पाठों पर की गई प्राचीन आचार्यों की संस्कृत व्याख्याभी संगृहीतकर दी है। वही संकलन आज "जैनागमों में स्याद्-वाद" के रूप से पाठकों के कर कमलों में शोभा पा रहा है।

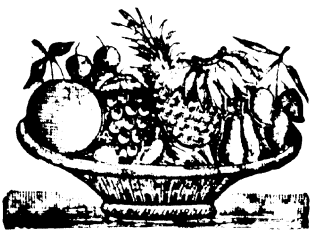
इस ग्रन्थरत्न में प्रायः आवश्यक सभी स्याद्-वाद सम्बन्धी आगम पाठों का संग्रह है जो कि स्याद्-वाद प्रेमी पाठकों की कामना को पूर्ण करने में कल्प वृक्ष के समान पर्याप्त है। ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

अन्त में मैं आशा करता हूं कि विद्वद्वृन्द इस संग्रह से आवश्य लाभ उठाने का यत्न करेंगे। यह अनमोल संग्रह है । एक पाठ टटोलने के लिये ग्रन्थ के सैंकड़ों पृष्ठों को इधर उधर उलटाना पड़ता है। यहां तो आप को प्रायः सभी पाठ विना परिश्रम के एक स्थान पर ही मिल सकेंगे, इसलिये इस संग्रह से अधिक से अधिक लाभ लेने का उद्योग करें ताकि जैनागमों के मार्मिक वेत्ता और प्राकृत भाषा के अद्वितीय विद्वान संग्राहक पूज्य श्री जी म० का कृत परिश्रम सफल हो सके।

ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ।

श्रावण कृष्णा ८,
जैन स्थानक,
लुधियाना

प्रार्थी—
ज्ञान मुनि



धन्य-वाद

जैनागमों में स्याद्-वाद के प्रकाशन में जिन दानी महानुभावों ने सहयोग दिया है उन का मैं समाज की ओर से सादर धन्यवाद करता हूँ, और अन्य धनिकों से भी जैन सिद्धान्तों के प्रचार में यथाशक्ति यत्नपूर्वक सहयोग देकर पुण्योपार्जन कर लेने की कामना करता हूं।

दानी महानुभावों के नाम ये हैं—

१. श्रीमान लाला ताराचन्द जी जैन जालन्धर छावनी ४००)
२. श्रीमान लाला बली राम जी मालेरकोटला २००)
३. श्रीमान चौधरी लक्ष्मीचन्द जी अम्बाला शहर १००)
४. श्रीमान लाला दिवान चन्द जी जगाधरी १००)
५. श्रीमान् लाला बालमुकुन्द जी रावलपिण्डी वाले देहली १००)
६. श्रीमान लाला राम चन्द जी लुधियाना १५०)
७. श्रीमान लाला कस्तूरी लाल मिल्खी राम जैन मलेरकोटला १०१)
८. श्रीमती भाग्यवन्ती देवी जैन जालन्धर छावनी १०१)
९. श्रीमान लाला मोहन लाल जुगलकिशोर जैन लुधियाना १०१)
१०. श्रीमान लाला प्रसन्ना मल वृषभान जैन दनौदा ५०)
११. श्रीमान लाला सोहन लाल जैन हकीम लुधियाना ५०)

प्रार्थी—

मन्त्री—

जैन-शास्त्रमाला कार्यालय,

लुधियाना

यस्य सर्वत्र समता नयेषु तनयेष्विव ।
तस्यानेकान्तवादस्य क्व न्यूनाधिकशेमुषी ॥
तेन स्याद्वादमालम्ब्य, सर्वदर्शनतुल्यतां ।
मोक्षोद्देशाविशेषेण, यः पश्यति सः शास्त्रवित ॥

नमोऽत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

जैनागमों में स्याद्वाद

श्री सूयगडाङ्ग सूत्र

एवमेयाणि जंपंता, बाला पंडिअमाणिणो ।
नियया नियय संतं अयाणंता अबुद्धिया ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥१।१।२।४॥

टीका — एवं श्लोकद्वयेन नियतिवादिमतमुपन्यस्यास्योत्तरदानायाह। एवमित्यनन्तरोक्तस्योपप्रदर्शने। एतानि पूर्वोक्तानि नियतिवादाश्रितानि वचनानि जल्पन्तोऽभिदधतो बाला इव बाला अज्ञाः सदसद्विवेक-विकला अपि सन्तः पण्डितमानिन आत्मानं पण्डितं मन्तुं शीलं येषां ते तथा किमिति त एवमुच्यन्ते ? इति तदाह यतो 'नियया नियय संतमिति' सुखादिकं किञ्चिन्नियतिकृतम्—अवश्यंभाव्युदयप्रापितं तथा च नियतम्-आत्मपुरुषकारेश्वरादिप्रापितं सत् नियतिकृतमेवै-कान्तेनाश्रयन्ति, अतोऽजानानाः सुखदुःखादिकारणमबुद्धिकाः बुद्धि-रहिता भवन्तीति तथाहि—आर्हतानां किंचित्सुखदुःखादि नियतित एव भवति, तत्कारणस्य कर्मणः कस्मिंश्चिदवसरेऽवश्यंभाव्युदयसद्भावा-न्नियतिकृतमित्युच्यते, तथा किंचिदनियतिकृतञ्च—पुरुषकारकालेश्वर-

स्वभावकर्मादिकृतं, तत्र कथञ्चित् सुखदुःखादेः पुरुषकारसाध्यत्वमप्याश्रीयते, यतः क्रियातः फलं भवति क्रिया च पुरुषकारायत्ता प्रवर्तते, तथा चोक्तम्—

"न दैवमिति सञ्चिन्त्य त्यजेदुद्यममात्मनः।

अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेभ्यः प्राप्तुमर्हति" ? ॥ १ ॥

यत्तु समाने पुरुषव्यापारे फलवैचित्र्यं दूषणत्वेनोपन्यस्तं तददूषणमेव, यतस्तत्राऽपि पुरुषकारवैचित्र्यमपि फलवैचित्र्ये कारणं भवति, समाने वा पुरुषकारे यः फलाभावः कस्यचिद्भवति सोऽदृष्टकृतः तदपि चाऽस्माभिः कारणत्वेनाश्रितमेव। तथा कालोऽपि कर्त्ता, यतो बकुलचम्पकाशोकपुन्नागनागसहकारादीनां विशिष्ट एव काले पुष्पफलाद्युद्भवो न सर्वदेति, यच्चोक्तं—'कालस्यैकरूपत्वाज्जगद्वैचित्र्यं न घटत' इति, तदस्मान् प्रति न दूषणं यतोऽस्माभिर्न काल एवैकः कर्तृत्वेनाऽभ्युपगम्यतेऽपितु कर्माऽपि, ततो जगद्वैचित्र्यमित्यदोषः। तथेश्वरोऽपि कर्त्ता, आत्मैव हि तत्र तत्रोत्पत्तिद्वारेण सकलजगद्व्यापनादीश्वरः, तस्य सुखदुःखोत्पत्तिकर्तृत्वं सर्ववादिनामविगानेन सिद्धमेव। यच्चात्र मूर्त्तामूर्त्तादिकं दूषणमुपन्यस्तं तदेवं-भूतेश्वरसमाश्रयणे दूरोत्सादितमेवेति। स्वभावस्याऽपि कथञ्चित् कर्तृत्वमेव, तथाहि आत्मन उपयोगलक्षणत्वमसंख्येयप्रदेशत्वं पुद्गलानां च मूर्त्तत्वं धर्माधर्मास्तिकाययोर्गतिस्थित्युपष्टम्भकारित्वममूर्त्तत्वञ्चेत्येवमादि स्वभावापादितम्। यदपि चात्रात्मव्यतिरेकाव्यतिरेकरूपं दूषणमुपन्यस्तं तददूषणमेव, यतः स्वभाव आत्मनोऽव्यतिरिक्तः,

आत्मनोऽपि च कर्तृत्वमभ्युपगतमेतदपि स्वभावापादितमेवेति । तथा कर्माऽपि कर्तृभवत्येव, तद्धि जीवप्रदेशैः सहाऽन्योऽन्यानुवेध-रूपतया व्यवस्थितं कथञ्चिदात्मनोऽभिन्नं, तद्वशाच्चात्मा नारकतिर्य्यङ्मनुष्यामरभवेषु पर्यटन् सुखदुःखादिकमनुभवतीति । तदेवं नियत्यनियत्योः कर्तृत्वे युक्त्युपपन्ने सति नियतिरेव कर्तृत्व-मभ्युपगच्छन्तो निर्बुद्धिकाः भवन्तीत्यवसेयम् ॥४॥

मूलम्—उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु,
तसा य जे थावर जे य पाणा।
से णिच्चणिच्चेहि समिक्ख पन्ने,
दीवे व धम्मं समियं उदाहु ॥
—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥ १ । ६ । ४॥

टीका—ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्षु सर्वत्रैव चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके ये केचन त्रस्यन्तीति त्रसास्तेजोवायुरूपविकलेन्द्रियपञ्चेन्द्रियभेदात् त्रिधा, तथा ये च 'स्थावराः' पृथिव्यम्बुवनस्पतिभेदात् त्रिविधा एते उच्छ्वासादयः प्राणाः विद्यन्ते येषां ते प्राणिन इति, अनेन च शाक्यादिमतनिरासेन पृथिव्याद्येकेन्द्रियाणामपि जीवत्वमावेदितं भवति, स भगवांस्तान् प्राणिनः प्रकर्षेण केवलज्ञानित्वात् जाना-तीति प्रज्ञः स एव प्राज्ञो, नित्यानित्याभ्यां द्रव्यार्थपर्यायार्थाश्रयणात् 'समीक्ष्य' केवलज्ञानेनार्थान् परिज्ञाय प्रज्ञापनायोग्यानाहेत्युत्तरेण सम्बन्धः, तथा स प्राणिनां पदार्थाविर्भावनेन दीपवत् दीपः यदिवा—संसारार्णवपतितानां सदुपदेशप्रदानत आश्वासहेतुत्वात् द्वीप इव द्वीपः स एवम्भूतः संसारोत्तारणसमर्थं 'धर्मं' श्रुतचारित्राख्यं

सम्यक् इतं-गतं सदनुष्ठानतया रागद्वेषरहितत्वेन समतया वा. तथा चोक्तम्—*"जहा पुण्णस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ" इत्यादि, समं वा-धर्मम् उत-प्राबल्येन आह-उक्तवान प्राणिनामनुग्रहार्थं न पूजासत्कारार्थमिति ॥४॥

मूलम्-संकेज्ज याऽसंकितभाव भिक्खू,
विभज्जवायं च वियागरेज्जा ।
भासादुयं धम्मसमुट्ठितेहिं,
वियागरेज्जा समया सुपन्ने ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥१।१४।२२॥

टीका—साम्प्रतं व्याख्यानविधिमधिकृत्याह-'भिक्षुः' साधुर्व्याख्यानं कुर्वन्नर्वाग्दर्शित्वादर्थनिर्णयं प्रति अशंकितभावोऽपि 'शंकेत' औद्धत्यं परिहरन्नहमेवार्थस्य वेत्ता नापरः कश्चिदित्येवं गर्वं न कुर्वीत किन्तु विषममर्थं प्रत्ययन साशङ्कमेव कथयेत्, यदिवा परिस्फुटमप्यशङ्कितभावमप्यर्थं न तथा कथयेत् यथा परः शंकेत, तथा विभज्यवादं-पृथगर्थनिर्णयवादं व्यागृणीयात् यदिवा विभज्यवादः—स्याद्वादस्तं सर्वत्रास्खलितं लोकव्यवहाराविसंवादितया सर्वव्यापिनं स्वानुभवसिद्धं वदेत्, अथवा सम्यगर्थान विभज्य-पृथक्कृत्वा तद्वादं वदेत्, तद्यथा—नित्यवादं द्रव्यार्थतया पर्यायार्थतया त्वनित्यवादं वदेत्, तथा स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैः सर्वेऽपि पदार्थाः सन्ति, परद्रव्यादिभिस्तु न सन्ति, तथा चोक्तम्—"सदेव सर्वं को नेच्छेत्स्वरूपादि-

---

*यथा पूर्णस्य कथ्यते तथा तुच्छस्य कथ्यते ।

चतुष्टयात् ? असद्वेत्र विपर्यासान्नचेन्न व्यवतिष्ठते !!१॥"
इत्यादिकं विभज्यवादं वदेदिति । विभज्यवादमपि भाषाद्वितयेनैव ब्रूयादित्याह-भाषयोः-आद्य चरमयोः सत्यामत्यामृषयोर्द्विकं भाषाद्विकं तद्भाषाद्वयं क्वचित्प्रश्ने वा धर्मकथावसरेऽन्यदा वा सदा वा 'व्यागृणीयात्' भाषेत. किंभूतः सन ? सम्यक्-सत्संयमानुष्ठानेनोत्थिताः समुत्थिताः सत्साधव उद्युक्तविहारिणो न पुनरुदायिनृपमारकवत्कृत्रिमास्तैः सम्यगुत्थितैः सह विहरन चक्रवर्तिद्रमकयोः समतया रागद्वेषरहितो वा शोभनप्रज्ञो भाषाद्वयोपेतः सम्यग्धर्मं व्यागृणीयादिति ॥२२॥

मूलम्-अणादीयं परिन्नाय, अणवदग्गेति वा पुणो।
मासयमसासए वा, इति दिट्ठिं न धारये ॥
एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो न विज्जई।
एएहिं दोहिं ठाणेहिं अणायारं तु जाणए ॥
—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥२।५।२,३॥

टीका-नास्य चतुर्दशरज्ज्वात्मकस्य लोकस्य धर्माधर्मादिकस्य वा द्रव्यस्यादिः—प्रथमोत्पत्तिर्विद्यत इत्यनादिकस्तमेवंभूतं 'परिज्ञाय' प्रमाणतः परिच्छिद्य तथा 'अनवदग्रम्' अपर्यवसानं च परिज्ञायोभयनयात्मकव्युदासेनैकनयदृष्टयाऽवधारणात्मकप्रत्ययमनाचारं दर्शयति-शश्वद्भवतीति शाश्वतं—नित्यं सांख्याभिप्रायेणाप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावं स्वदर्शने चानुयायिनं सामान्यांशमवलम्ब्य धर्माधर्माकाशादिष्वनादित्वमपर्यवसानत्वं चोपलभ्य सर्वमिदं शा-

श्वतमित्येवंभूतां दृष्टिं 'न धारयेदिति' एवं पक्षं न समाश्रयेत्। तथा विशेषपक्षमाश्रित्य 'वर्त्तमाननारकाः समुच्छेत्स्यन्ती' त्येतच्च सूत्रमंगीकृत्य यत्सत्तत्सर्वमनित्यमित्येवंभूतबौद्धदर्शनाभिप्रायेण च सर्वमशाश्वतम्—अनित्यमित्येवंभूतां च दृष्टिं न धारयेदिति ॥२॥ किमित्येकान्तेन शाश्वतमशाश्वतं वा वस्त्वित्येवंभूतां दृष्टिं न धारयेदित्याह—सर्वं नित्यमेवानित्यमेव वै ताभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यामभ्युपगम्यमानाभ्यामनयोर्वा पक्षयोर्व्यवहरणं व्यवहारो-लोकस्यैहिकामुष्मिकयोः कार्ययोः प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणो न विद्यते, तथाहि—अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावं सर्वं नित्यमित्येवं न व्यवह्रियते, प्रत्यक्षेणैव नवपुराणादिभावेन प्रध्वंसाभावेन वा दर्शनात्, तथैव च लोकस्य प्रवृत्तेः, आमुष्मिकेऽपि नित्यत्वादात्मनो बन्धमोक्षाद्यभावेन दीक्षायमनियमादिकमनर्थकमिति न व्यवह्रियते। तथैकान्तानित्यत्वेऽपि लोको धनधान्यघटपटादिकमनागतभोगार्थं न संगृह्णीयात्, तथाऽऽमुष्मिकेऽपि क्षणिकत्वादात्मनः प्रवृत्तिर्न स्यात्, तथा च दीक्षाविहारादिकमनर्थकं, तस्मान्नित्यात्मके एव स्याद्वादे सर्वव्यवहारप्रवृत्तिः, अतएव तयोर्नित्यानित्ययोः स्थानयोरेकान्तत्वेन समाश्रीयमाणयोरैहिकामुष्मिकार्यविध्वंसरूपमनाचारं मौनीन्द्रागमबाह्यरूपं विजानीयात्, तु-शब्दो विशेषणार्थः, कथञ्चिन्नित्यानित्ये वस्तुनि सति व्यवहारो युज्यत इत्येतद्विशिनष्टि, तथाहि—सामान्यमन्वयिनमंशमाश्रित्य स्यान्नित्यमिति भवति, विशेषांशं प्रतिक्षणमन्यथा च अन्यथा च नवपुराणादिदर्शनतः स्यादनित्य इति भवति, तथोत्पादव्ययध्रौव्याणि चार्हद्दर्शनाश्रितानि व्यवहाराङ्गं भवति तथा चोक्तम्— घटमौलिसुवर्णा-

र्थी, नाशोत्पादस्थितिष्वयम् । शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं, जनो याति सहेतुकम् ॥ १ ॥' इत्यादि । तदेवं नित्यानित्यपक्षयोर्व्यवहारो न विद्यते, तथाऽनयोरं वानाचारं विजानीयादिति स्थितम् ॥ ३ ॥ तथा-ऽन्यमप्यनाचारं प्रतिपेद्यकाम आह—

मूलम्—समुच्छिहिंति सत्थारो, सव्वे पाणा अणेलिसा ।
गंठिगा वा भविस्संति सासयन्ति व णो वए ॥
एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जइ ।
एएहिं दोहिं ठाणेहिं अणायारं तु जाणए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥२।५।४,५।

टीका—सम्यक् निरवशेषतया 'उच्छेत्स्यन्ति' उच्छेदं यास्यन्ति-क्षयं प्राप्स्यन्ति सामस्त्येनोत् – प्राबल्येन सेत्स्यन्ति वा सिद्धं यास्य-न्ति, के ते ? शास्तारः–तीर्थकृतः सर्वज्ञास्तच्छासनप्रतिपन्ना वा 'सर्वे' निरवशेषाः सिद्धिगमनयोग्या भव्याः, ततश्चोच्छिन्नभव्यं जगत्स्यादिति, शुष्कतर्काभिमानग्रहगृहीता युक्तिं चाभिदधति—जीवसद्भावे सत्यप्यपूर्वोत्पादाभावादभव्यस्य च सिद्धिगमना-संभवात्कालस्य चाऽऽनन्त्यादनारतं सिद्धिगमनसंभवेन तदन्ययो-पपत्तेरपूर्वायाभावाद्भव्योच्छेद इत्येवं नो वदेत्, तथा सर्वेऽपि 'प्रा-णिनो' जन्तवः 'अनीदृशा' विसदृशाः सदा परस्परविलक्षणा एव, न कथञ्चित्तेषां सादृश्यमस्तीत्येवमप्येकान्तेन नो वदेत्, यदिवा सर्वे-षां भव्यानां सिद्धिसद्भावेऽवशिष्टाः संसारे 'अनीदृशा' अभव्या एव भवेयुरित्येवं च नो वदेत्, युक्तिं चोत्तरत्र वक्ष्यति । तथा कर्मा-

त्मको ग्रन्थो येषां विद्यते ते ग्रन्थिकाः, सर्वेऽपि प्राणिनः कर्मग्रन्थोपेता एव भविष्यन्तीत्येवमपि नो वदेत्, इदमुक्तं भवति—सर्वेऽपि प्राणिनः सेत्स्यन्त्येव कर्मावृता वा सर्वे भविष्यन्तीत्येवमेकमपि पक्षमेकान्तिकं नो वदेत्। यदि वा—'ग्रन्थिका' इति ग्रन्थिकसत्त्वा भविष्यन्तीति, ग्रन्थिभेदं कर्तुमसमर्था भविष्यन्तीत्येवं च नो वदेत्, तथा 'शाश्वता' इति शास्तारः 'सदा' सर्वकालं स्थायिनस्तीर्थकरा भविष्यन्ति 'न समुच्छेत्स्यन्ति' नोच्छेदं यास्यन्तीयेत्वं नो वदेदिति ॥ ४ ॥ तदेवं दर्शनाचारवादनिषेधं वाङ्मात्रेण प्रदर्श्याधुना युक्तिं दर्शयितुकाम आह 'एतयोः' अनन्तरोक्तयोः स्थानयोः तद्यथा शास्तारः क्षयं यास्यन्तीति शाश्वता वा भविष्यन्तीति, यदि वा सर्वे शास्तारस्तद्दर्शनप्रतिपन्ना वा सेत्स्यन्ति शाश्वता वा भविष्यन्ति, यदि वा सर्वे प्राणिनो ह्यनीदृशाः—विसदृशा सदृशा वा तथा ग्रन्थिकसत्त्वास्तद्रहिता भविष्यन्तीत्येवमनयोः स्थानयोर्व्यवहरणं व्यवहारस्तदस्तित्वे युक्तेरभावान्न विद्यते, तथाहि - यत्तावदुक्तं 'सर्वे शास्तारः क्षयं यास्यन्ती' त्येतदयुक्तं, क्षयनिबंधनस्य कर्मणोऽभावात्सिद्धानां क्षयाभावः, अथ भवस्थकेवल्यपेक्षयेदमभिधीयते, तदप्यनुपपन्नं यतोऽनाद्यनन्तानां केवलिनां सद्भावात् प्रवाहापेक्षया तदभावाभावः। यदप्युक्तम्-'अपूर्वस्याभावे सिद्धिगमनसद्भावेन च व्ययसद्भावाद्भव्यशून्यं जगत् स्या'-दित्येतदपि सिद्धान्तपरमार्थावेदिनो वचनं, यतो भव्यराशे राद्धान्ते भविष्यत्कालस्येवानन्त्यमुक्तम्, तच्चैवमुपपद्यते यदि क्षयो न भवति, सति च तस्मिन् आनन्त्यं न स्यात्, नापि चावश्यं सर्व-

स्यापि भव्यस्य सिद्धिगमनेन भाव्यमित्यानन्त्याद्भव्यानां तदुच्छेदाभावाद्योग्यदलिकप्रतिभावत्तदनुपपत्तिरिति। तथा नापि शाश्वता एव भवस्थकेवलिनां शास्तृणां सिद्धिगमनसद्भावात्प्रवाहापेक्षया च शाश्वतत्वमतः कथञ्चिच्छाश्वता कथञ्चिदशाश्वता इति। तथा सर्वेऽपि प्राणिनो विचित्रकर्मसद्भावान्नानागतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गादिसमन्वितत्वादनीदृशाः— विसदृशास्तथोपयोगासंख्येयप्रदेशत्वामूर्तत्वादिभिर्धर्मैः कथञ्चित्सदृशा इति, तथोल्लसितसद्वीर्यतया केचिद्भिन्नग्रन्थयोऽपरे च तथाविधपरिणामाभावाद् ग्रन्थिकसत्त्वा एव भवन्तीत्येवं च व्यवस्थिते नैकान्तेनैकान्तपक्षो भवतीति प्रतिषिद्धः, तदेवमेनयोरेव द्वयोः स्थानयोरुक्तनीत्याऽनाचारं विजानीयादिति स्थितम्। अपि च—आगमे अनन्तानन्तास्वप्युत्सर्पिण्यवसर्पिणीषु भव्यानामनन्तभाग एव सिद्ध्यतीत्ययमर्थः प्रतिपाद्यते, यदा चैवम्भूतं तदानन्त्यं तत्कथं तेषां क्षयः ! युक्तिरप्यत्र—सम्बन्धिशब्दावेतौ, मुक्तिः संसारं विना न भवति, संसारोऽपि न मुक्तिमन्तरेण, ततश्च भव्योच्छेदे संसारस्याप्यभावः स्यादतोऽभिधीयते नानयोर्व्यवहारो युज्यत इति ॥ ५ ॥ अधुना चारित्राचारमङ्गीकृत्याह—

मूलम्—जे केइ खुद्दगा पाणा, अदुवा सन्ति महालया ।
सरिसं तेहिं वेरंति, असरिसन्ती य णो वदे ॥
एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो न विज्जई ।
एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥२।५।६,७॥

टीका—ये केचन क्षुद्रकाः सत्त्वाः-प्राणिन एकेन्द्रियद्वीन्द्रियादयो-

ऽल्पकाया वा पञ्चेन्द्रिया अथवा 'महालया' महाकायाः 'सन्ति' विद्यन्ते तेषां च क्षुद्रकाणामल्पकायानां कुन्थ्वादीनां महानालयः— शरीरं येषां ते महालया—हस्त्यादयस्तेषां च व्यापादने सदृशं 'वैर' मिति वज्रं कर्म विरोधलक्षणं वा वैरं तत् 'सदृशं' समानं तुल्य-प्रदेशत्वात्सर्वजन्तूनामित्येवमेकान्तेन नो वदेत् तथा 'विसदृशम्'-असदृशं तद्व्यापत्तौ वैरं कर्मबन्धो विरोधो वा इन्द्रियविज्ञानका-यानां विसदृशत्वात् सत्यपि प्रदेशतुल्यत्वे न सदृशं वैरमित्येवम-पि नो वदेत्, यदि हि वध्यापेक्ष एव कर्मबन्धः स्यात्तदा तत्सदृशा-त्कर्मणोऽपि सादृश्यमसादृश्यं वा वक्तुं युज्येत न च तद्वशादेव बन्धः अपि त्वध्यवसायवशादपि, ततश्च तीव्राध्यवसायिनोऽल्प-कायसत्त्वव्यापादनेऽपि महद्वैरम्, अकामस्य तु महाकायसत्त्व-व्यापादनेऽपि स्वल्पमिति ॥ ६ ॥ एतदेव सूत्रेणैव दर्शयितुमाह— आभ्यामनन्तरोक्ताभ्यां स्थानाभ्यामनयोर्वा स्थानयोरल्पकायमहा-कायव्यापादनापादितकर्मबन्धसदृशत्वासदृशत्वयोर्व्यवहरणं व्यव-हारो नियुक्तिकत्वान्न युज्यते, तथाहि—न वध्यस्य सदृशत्वम-सदृशत्वं चकमेव कर्मबन्धस्य कारणम्, अपितु वधकस्य तीव्रभावो मन्दभावो ज्ञानभावोऽज्ञानभावो महावीर्यत्वमल्पवीर्यत्वं चेत्येतदपि। तदेवं वध्यवधकयोर्विशेषात्कर्मबन्धविशेष इत्येव व्यवस्थिते वध्यमेवाश्रित्य सदृशत्वासदृशत्वव्यवहारो न विद्यत इति। तथाऽनयोरेव स्थानयोः प्रवृत्तस्यानाचारं विजानीयादिति, तथाहि—यज्जीवसाम्यात्कर्मबन्धसदृशत्वमुच्यते, तदयुक्तं, यतो न हि जीवव्यापत्त्या हिंसोच्यते, तस्य शाश्वतत्वेन व्यापादयितुमश-

क्यत्वाद्, अपि त्विन्द्रियादिव्यापत्त्या, तथा चोक्तम्—"पंचेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वासनिःश्वासमथान्यदायुः। प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्तास्तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा ॥१॥" इत्यादि। अपि च भावसव्यपेक्षस्यैव कर्मबन्धोऽभ्युपेतुं युक्तः तथाहि-वैद्यस्यागमसव्यपेक्षस्य सम्यक् क्रियां कुर्वतो यद्यप्यातुरविपत्तिर्भवति तथापि न वैरानुषङ्गो भावदोषाभावाद्, अपरस्य तु सर्पबुद्ध्या रज्जुमपि घ्नतो भावदोषात्कर्मबन्धः, तद्रहितस्य तु न बन्ध इति, उक्तं चागमे 'उच्चालियंमि पाए', इत्यादि तण्डुलमत्स्याख्यानकं तु सुप्रसिद्धमेव तदेवंविधवध्यवधकभावापेक्षया स्यात सदृशत्वं स्यादसदृशत्वमिति अन्यथाऽनाचार इति ॥७॥

पुनरपि चारित्रमधिकृत्याहारविषयानाचाराचारौ प्रतिपादयितुकाम आह—

सूत्रम् अहा कम्माणि भुंजंति, अण्णमण्णे सकम्मुणा।
उवलित्ते ति जाणिज्जा अणुवलित्तेति वा पुणो ॥
एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जई।
एएहिं दोहिं ठाणेहिं अणायारं तु जाणए ॥

— श्री सूयगडांग सूत्र ॥२।५।८,९॥

टीका—साधुं प्रधानकारणमाधाय—आश्रित्य कर्माण्याधाकर्माणि, तानि च वस्त्रभोजनवसत्यादीन्युच्यन्ते, एतान्याधाकर्माणि ये भुञ्जन्ते—एतदुपभोगं ये कुर्वन्ति 'अन्योऽन्यं' परस्परं तान् स्वकीयेन कर्मणोपलिप्तान् विजानीयादित्येवं नो वदेत् तथाऽनुपलिप्तानिति वा नो वदेत्, एतदुक्तं भवति—आधाकर्मापि श्रुतोपदेशेन शुद्धमितिकृत्वा भुञ्जानः

कर्मणा नोपलिप्यते तदाधाकर्मोपभोगेनावश्यतया कर्मबन्धो भवतीत्येवं नो वदेत्, तथा श्रुतोपदेशमन्तरेणाहारगृद्ध्याऽऽधाकर्म भुञ्जानस्य तन्निमित्तकर्मबन्धसद्भावात् अतोऽनुलिप्तानपि नो वदेत्, यथावस्थितमौनीन्द्रागमज्ञस्य त्वेवं युज्यते वक्तुम्—आधाकर्मोपभोगेन स्यात्कर्मबन्धः स्यान्नेति. यत उक्तम्—"किंचिच्छुद्धं कल्प्यमकल्प्यं वा, स्यादकल्प्यमपि कल्प्यम्। पिण्डः शय्या वस्त्रं पात्रं वा भेषजाद्यं वा ॥१॥" तथान्यैरप्यभिहितम्—"उत्पद्येत हि साऽवस्था, देशकालामयान्प्रति। यस्यामकार्यं कार्यं स्यात्कर्म कार्यं च वर्जयेत् ॥१॥" इत्यादि ॥८॥ किमित्येवं स्याद्वादः प्रतिपाद्यत इत्याह—आभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यामाश्रिताभ्यामनयोर्वा स्थानयोराधाकर्मोपभोगेन कर्मबन्धभावाभावभूतयोर्व्यवहारो न विद्यते. तथाहि—यद्यवश्यमाधाकर्मोपभोगेनैकान्तेन कर्मबन्धोऽभ्युपगम्येत एवं चाहाराभावेनाऽपि क्वचित्सुतरामनर्थोदयः स्यात्, तथाहि क्षुत्प्रपीडितो न सम्यगीर्यापथं शोधयेत् ततश्च व्रजन् प्राण्युपमर्दमपि कुर्यात् मूर्च्छादिसद्भावतया च देहपाते सत्यवश्यंभावी त्रसादिव्याघातोऽकालमरणे चाविरतिरङ्गीकृता भवत्यार्तध्यानापत्तौ च तिर्यग्गतिरिति. आगमश्च—"सव्वत्थ संजमं संजमाओ अप्पाणमेव रक्खेज्जा" इत्यादिनाऽपि तदुपभोगे कर्मबन्धाभाव इति तथाहि—आधाकर्मण्यपि निष्पाद्यमाने षड्जीवनिकायवधस्तद्वधे च प्रतीतः कर्मबन्ध इत्यतोऽनयोः स्थानयोरेकान्तेनाश्रीयमाणयोर्व्यवहरणं व्यवहारो न युज्यते, तथाऽऽभ्यामेव स्थानाभ्यां समाश्रिताभ्यां सर्वमनाचारं विजानी-

यादिति स्थितम् ॥६॥

पुनरप्यन्यथा दर्शनं प्रति वागनाचारं दर्शयितुमाह--

मूलम्–जमिदं ओरालमाहारं, कम्मगं च तहेव य (तमेवतं)
सव्वत्थ वीरियं अत्थि, णत्थि सव्वत्थ वीरियं ॥
एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जई ।
एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥२।५।१०,११॥

टीका–यदि वा योऽयमनन्तरमाहारः प्रदर्शितः स सति शरीरे भवति शरीरं च पञ्चधा तस्य चौदारिकादेः शरीरस्य भेदाभेदं प्रतिपादयितुकामः पूर्वसूत्रद्वारेणाह--'जमिदं' मित्यादि, यदिदं—सर्वजनप्रत्यक्षमुदारैः पुद्गलैर्निर्वृत्तमौदारिकमेतदेवोरालं विस्सारत्वाद् एतच्च तिर्यङ्मनुष्याणां भवति, तथा चतुर्दशपूर्वविदा क्वचित्संशया-द्याह्रियत इत्याहारम्, एतद्ग्रहणाच्च वैक्रियापादानमपि द्रष्टव्यं, तथा कर्मणा निर्वृत्तं कार्मणम्, एतत्सहचरितं तैजसमपि ग्राह्यम् । औदारिकवैक्रियाहारकाणां प्रत्येकं तैजसकार्मणाभ्यां सह युगपदु-पलब्धेः कस्यचिदेकत्वाऽऽशङ्का स्यादतस्तदपनोदार्थं तदभिप्राय-माह 'तदेवतद्' यदेवौदारिकं शरीरं त एव तैजसकार्मणे शरीरे, एवं वैक्रियाहारकयोरपि वाच्यं, तदेवंभूतां संज्ञां नो निवेशयेदित्युत्त-रश्लोके क्रिया, तथैतेषामात्यन्तिको भेद इत्येवंभूतामपि संज्ञां नो निवेशयेत । युक्तिश्चात्र--यत्रकान्तेनाभेद एव तत इदमौदारिक-मुदारपुद्गलनिष्पन्नं तथैतत्कर्मणा निर्वर्तितं कार्मणं सदस्यैतस्य

संसारचक्रवालभ्रमणस्य कारणभूतं तेजोद्रव्यनिष्पन्नं तेज एव तैजसं आहारपक्तिनिमित्तं तैजसलब्धिनिमित्तं चेत्येवं भेदेन संज्ञानिरुक्तं कार्यं च न स्यात् अथात्यन्तिका भेद एव ततो घटपद्भिन्नयोर्देशकालयोरप्युपलब्धिः स्यात्, न नियता युगपदुलब्धि-रिति एवं च व्यवस्थिते कथञ्चिदेकोपलब्धेरभेदः कथञ्चिच्च संज्ञा-भेदाद्भेद इति स्थितं । तदेवमौदारिकादीनां शरीराणां भेदाभेदौ प्रदर्श्याधुना सर्वस्यैव द्रव्यस्य भेदाभेदौ प्रदर्शयितुकामः पूर्वपक्षं श्लोकपश्चार्द्धेन दर्शयितुमाह--'सव्वत्थवीरियमित्यादि, 'सर्व सर्वत्र विद्यते' इतिकृत्वा सांख्याभिप्रायेण सत्त्वरजस्त-मोरूपस्य प्रधानस्यैकत्वात्तस्य च सर्वस्यैव कारणत्वात् अतः सर्वं सर्वात्मकमित्येवं व्यवस्थिते 'सर्वत्र' घटपटादौ अपरस्य—व्यक्तस्य 'वीर्यं' शक्तिर्विद्यते, सर्वस्यैव हि व्यक्तस्य प्रधानकार्यत्वात्कार्यकारणयोश्चैकत्वाद् अतः सर्वस्य सर्वत्र वीर्यमस्तीत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्, तथा 'सर्वे भावा स्वभावेन स्वस्वभावव्यवस्थिता' इति प्रतिनियतशक्तित्वान्न सर्वत्र सर्वस्य 'वीर्यं' शक्तिरित्येवमपि संज्ञां नो निवेशयेत् । युक्तिश्चात्र—यत्ताव-दुच्यते 'सांख्याभिप्रायेण सर्वं सर्वात्मकं देशकालाकारप्रतिबंधात्त न समानकालोपलब्धि' रिति, तदयुक्तं, यतो भेदेन सुखदुःखजीवित-मरणदूरासन्नसूक्ष्मबादरकुरूपादिकं संसारवैचित्र्यमध्यक्षेणानु-भूयते, न च दृष्टेऽनुपपन्नं नाम, न च सर्वं मिथ्येत्यभ्युपपत्तुं युज्यते, यतो दृष्टहानिरदृष्टकल्पना च पापीयसी । किंच—सर्व-

र्थेत्रयेऽभ्युपगम्यमाने संसारमोक्षाभावतया कृतनाशोऽकृताभ्यागमश्च बलादापतति. यच्चैतत् सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रधानमित्येतत्सर्वस्यास्य जगतः कारणं तन्निरन्तराः सुहृदः प्रत्येष्यन्ति, निर्युक्तिकत्वात्, अपिच सर्वथा सर्वस्य वस्तुन एकत्वेऽभ्युपगम्यमाने सत्त्वरजस्तमसामप्येकत्वं स्यात्, तद्भेदे च सर्वस्य तद्वदेव भेद इति । तथा यदप्युच्यते 'सर्वस्य व्यक्तस्य प्रधानकार्यत्वात्सत्कार्यवादाच्च मयूराण्डकरणे चञ्चूपिच्छादीनां सतामेवोत्पादाभ्युपगमात् असदुत्पादे चाम्रफलादीनामप्युत्पत्ति-प्रसङ्गा' दित्येतद्वाङ्मात्रं, तथाहि—यदि सर्वथा कारणे कार्यमस्ति न तर्हुत्पादो निष्पन्नघटस्येव, अपि च मृत्पिण्डावस्था-यामेव घटगताः कर्मगुणव्यपदेशा भवेयुः, न च भवन्ति, ततो नास्ति कारणे कार्यम्, अथानभिव्यक्तमस्तीति चेन्न तर्हि सर्वात्मना विद्यते, नाप्येकान्तेनासत्कार्यवाद एव, तद्भावे हि व्योमारविन्दानामप्येकान्तेनासतां मृत्पिण्डादेर्घटादेरिवोत्पत्तिः स्यात न चैतद्दृष्टमिष्टं वा, अपि च एवं सर्वस्य सर्वस्मादुत्पत्तेः कार्य-कारणभावानियमः स्यात्, एवं च न शाल्यङ्कुरार्थी शालीबीजमे-वादद्यात् अपितु यत्किंचिदेवेति, नियमेन च प्रेक्षापूर्वकारिणामुपा-दानकारणादौ प्रवृत्तिः, अतो नासत्कार्यवाद इति । तदेवं सर्वपदार्थानां सत्त्वज्ञेयत्वप्रमेयत्वादिभिर्धर्मैः कथञ्चिदेकत्वं तथा प्रतिनियतार्थ-कार्यतया यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थतः सदितिकृत्वा कथञ्चि-द्भेद इति सामान्यविशेषात्मकं वस्त्विति स्थितम् । अनेन च स्यादस्ति स्यान्नास्तीतिभङ्गकद्वयेन शेषभङ्गका अपि द्रष्टव्याः

ततश्च सर्वं वस्तु सप्तभङ्गीस्वभावं, तं चामी—स्वद्रव्यक्षेत्रकाल-भावापेक्षया स्यादस्ति, परद्रव्याद्यपेक्षया स्यान्नास्ति, अनयोरेव धर्मयोर्यौगपद्येनाभिधातुमशक्यत्वात्स्यादवक्तव्यं, तथा कस्यचिदंशस्य स्वद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्कस्यचिच्चांशस्य परद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात् स्यादस्ति च स्यान्नास्ति चेति, तथैकस्यांशस्य स्वद्रव्याद्यपेक्षया परस्य तु सामस्त्येन स्वपरद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्स्यादस्ति चावक्तव्यं चेति, तथैकस्यांशस्य परद्रव्याद्यपेक्षया परस्य तु सामस्त्येन स्वपरद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात् स्यान्नास्ति चावक्तव्यं चेति, तथैकस्यांशस्य स्वद्रव्याद्यपेक्षया परस्य तु परद्रव्याद्यपेक्षयाऽन्यस्य तु यौगपद्येन स्वपरद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यं चेति. इयं च सप्तभङ्गी यथा-योगमुत्तरत्रापि योजनीयेति ॥१०॥११॥

तदेवं सामान्येन सर्वस्यैव वस्तुनो भेदाभेदौ प्रतिपाद्याधुना सर्वशून्यवादिमतनिरासेन लोका-लोकयोः प्रविभागेनास्तित्वं प्रतिपादयितुकाम आह यदिवा सर्वत्र 'वीर्य' मित्यनेन सामान्येन वस्त्वस्तित्वमुक्तं, तथाहि—सर्वत्र वस्तुनो 'वीर्य' शक्तिरर्थक्रियासामर्थ्यमन्तशः स्वविषयज्ञानोत्पादनं, तच्चैकान्तेनात्यन्ताभावाच्छशविषाणादेरप्यस्तीत्येवं संज्ञां न निवेशयेत्, सर्वत्र वीर्यं नास्तीति नो एवं संज्ञां निवेशयेदिति, अनेनाविशिष्टं वस्त्वस्तित्वं प्रसाधितम्, इदानीं तस्यैव वस्तुन ईषद्विशेषितत्वेन लोकालोकरूपतयाऽस्तित्वं प्रसाधयन्नाह—

मूलम्—णत्थि लोए अलोए वा, णेवं सन्नं निवेसए ।

अत्थिलोए अलोए वा, एवं सन्नं निवेसए ॥

णत्थि जीवा अजीवा वा, णेवं सन्नं निवेसए।
अत्थि जीवा अजीवा वा, एवं सन्नं निवेसए॥

श्री सूयगडाङ्ग सूत्र २।५।१२, १३॥

टीका—लोकः चतुर्दशरज्ज्वात्मको धर्माधर्माकाशादिपञ्चास्तिकायात्मको वा स नास्तीत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्। तथा ऽऽकाशास्तिकायमात्रकश्चालोकः स च न विद्यते एवेत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्, तदभावप्रतिपादकनिर्वचनं चेदं, तद्यथा—प्रतिभासमानं वस्त्ववयवद्वारेण वा प्रतिभासेतावयविद्वारेण वा ?, तत्र न तावदवयवद्वारेण प्रतिभासनमुपपद्यते, निरंशपरमाणूनां प्रतिभासनासंभवात्, सर्वार्वाग्भागस्य च परमाण्वात्मकत्वात्तेषां च छद्मस्थविज्ञानेन द्रष्टुमशक्यत्वात्, तथा चोक्तम्—"यावद्दृश्यं परस्तावद्भागः स च न दृश्यते। निरंशस्य च भागस्य, नास्ति छद्मस्थदर्शनम्॥१॥" इत्यादि नाप्यवयविद्वारेण, विकल्पमानस्यावयविन एवाभावात्, तथाहि—असौ स्वावयवेषु प्रत्येकं सामस्त्येन वा वर्तेत ? अंशांशिभावेन वा ? न सामस्त्येनावयविबहुत्वप्रसङ्गात्, नाप्यंशेन पूर्वविकल्पानतिक्रमणादनवस्थाप्रसङ्गात्, तस्माद्विचार्यमाणं न कथञ्चिद्वस्त्वात्मभावं लभते, ततः सर्वमेवैतन्मायास्वप्नेन्द्रजालमरुमरीचिकाविज्ञानसदृशं, तथा चोक्तं—"यथा यथाऽर्थाश्चिन्त्यन्ते, विविच्यन्ते तथा तथा। यदेतत् (तत्) स्वयमर्थेभ्यो, रोचन्ते (ते) तत्र के वयम् ?॥१॥" इत्यादि तदेवं वस्त्वभावे तद्विशेषलोकालोकाभावः सिद्ध एवेत्येवं नो संज्ञां

निवेशयेत्। किन्त्वस्ति लोक ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्रूपो वैशाखस्थानस्थितकटिन्यस्तकरयुग्म पुरुषसदृशः पंचास्तिकायात्मको वा, तद्व्यतिरिक्तश्चालोको ऽप्यस्ति, सर्वनिषेधशक्यत्वात्, लोकव्यवस्थाऽन्यथाऽनुपपत्तेरिति भावः। युक्तिश्चात्र—यदि सर्वं नास्ति तत् सर्वान्तःपातित्वात्प्रतिषेधकोऽपि नास्तीत्यतस्तदभावात्प्रतिषेधाभावः। अपि च सति परमार्थभूते वस्तुनि मायास्वप्नेन्द्रजालादिव्यवस्थाः अन्यथा किमाश्रित्य को वा मायादिकं व्यवस्थापयेदिति? अपि च—"सर्वाभावो यदा लोके तत्त्वं सत्त्वमपार्थकम्। प्रत्यक्षेण न सिद्ध्यति। साऽस्ति चेत्सैव नस्तत्त्वं तत्सिद्धौ सर्वमस्तु सत्॥१॥" इत्यादि। यदप्यवयवावयविविचारणकल्पनया दूषणमभिधीयते तदप्यार्हतमतानभिज्ञेन, तन्मतं तैव भूतं, तथाहि नैकान्तेनावयवा एव नाप्यवयव्येव चेष्यतः स्याद्वादाश्रयणात्पूर्वोक्तविकल्पदोषानुपपत्तिरिति ततः कश्चिल्लोकोऽस्त्येवमलोकोऽपीति स्थितम्॥१२॥ तदेवं लोकालोकास्तित्वं प्रतिपाद्याधुना तद्विशेषभूतयोर्जीवाजीवयोरस्तित्वप्रतिपादनायाह—'णत्थि जीवा अजीवे'त्यादि, जीवा उपयोगलक्षणाः संसारिणो, मुक्ता वा ते न विद्यन्ते, तथा अजीवाश्च धर्माधर्माकाशपुद्गलकालात्मका गतिस्थित्यवगाहदानच्छायातपोद्योतादिवर्त्तनालक्षणा न विद्यन्त इत्येवं संज्ञां—परिज्ञानं नो निवेशयेत्, नास्तित्वनिबन्धनं त्विदं—प्रत्यक्षेणानुपलभ्यमानत्वाज्जीवा न विद्यन्ते, कायाकारपरिणतानि भूतान्येव धावनवल्गनादिकां क्रियां कुर्वन्तीति। तथाऽऽत्माद्वैतवादमताभि-

प्रायेण 'पुरुष एवेदं ग्नि सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्य' मित्यागमात् तथा अजीवा न विद्यन्ते सर्वस्यैव चेतनाचेतनरूपस्यात्ममात्र- विवर्त्तित्वात् नो एवं संज्ञां निवेशयेत्, किन्त्वस्ति जीवः सर्वस्या- स्य सुखदुःखादिविचिन्तनभूतः स्वसंवित्तिसिद्धोऽहंप्रत्ययग्राह्यः, तथा तदन्यतरिका धर्माकाशपुद्गलादयश्च विद्यन्ते, सकलप्राण्यन्तेन प्रत्यक्षानुभूयमानत्वात्तद्गुणानां, भूतचैतन्यवादी च वाच्यः— किं तानि भवदभिमतानि भूतानि नित्यान्युतानित्यानि ? यदि नित्यानि ततोऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावत्वान्न कायाकारपरिणतिः, नापि प्रागविद्यमानस्य चैतन्यस्य सद्भावो, नित्यत्वहानेः । अथा- नित्यानि किं तेष्वविद्यमानमेव चैतन्यमुत्पद्यते आहोस्विद्विद्यमानं ? न तावदविद्यमानमतिप्रसङ्गात्, अभ्युपेतागमलोपाच्च, अथ विद्यमानमेव सिद्धं तर्हि जीवत्वम् । तथाऽऽत्माद्वैतवाद्यपि वाच्यः— यदि पुरुषमात्रमेवेदं सर्वं कथं घटपटादिषु चैतन्यं नोपलभ्यते ?, तथा तदैक्येऽभेदनिबन्धनानां पक्षहेतुदृष्टान्तानाम- भावात्साध्यसाधनाभावः, तस्मान्नैकान्तेन जीवाजीवयोरभावः, अपितु सर्वपदार्थानां स्याद्वादाश्रयणाज्जीवः स्याज्जीवः स्यादजीवः, अजीवोऽपि च स्यादजीवः स्याज्जीव इति, एतच्च स्याद्वादाश्रयणं जीवपुद्गलयोरन्योऽन्यानुगतयोः शरीरप्रत्यक्षतयाऽध्यक्षेणैवोपलम्भा- द्द्रष्टव्यमिति ॥ १३ ॥

जीवास्तित्वे च सिद्धे तन्निबन्धनयोः सदसत्क्रियाद्वारायात- योर्धर्माधर्मयोरस्तित्वप्रतिपादनायाह:—

मूलम्—णत्थि धम्मे अधम्मे वा, णेवं सन्नं निवेसए।
अत्थि धम्मे अधम्मे व, एवं सन्नं निवेसए॥
णत्थि बंधे व मोक्खे वा, णेवं सन्नं निवेसए।
अत्थि बन्धे व मोक्खे वा, एवं सन्नं निवेसए॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र २।५।१४,१५॥

टीका—धर्मः श्रुतचारित्रात्मको जीवस्यात्मपरिणामः कर्मक्षयकारणम् एवमधर्मोऽपि मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगरूपः कर्मबन्धकारणमात्मपरिणाम एव, तावेवंभूतौ धर्माधर्मौ कालस्वभावनियतीश्वरादिमतेन न विद्येते इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्—कालादय एवास्य सर्वस्य जगद्वैचित्र्यस्य धर्माधर्मव्यतिरेकेणैकान्ततः कारणमित्येवमभिप्रायं न कुर्यात्, यतस्त एवैकका न कारणमपि तु समुदिता एवेति, तथा चोक्तम्—"न हि कालादीहिंतो केवलएहिंतो जायए किंचि। इह मुग्गरंधणाइवि ता सव्वे समुदिया हेऊ ॥१॥" इत्यादि। यतो धर्माधर्मान्तरेण संसारवैचित्र्यं न घटामियर्त्यतोऽस्ति धर्मः—सम्यग्दर्शनादिकोऽधर्मश्च मिथ्यात्वादिक इत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १४ ॥ सतोश्च धर्माधर्मयोर्बन्धमोक्षसद्भाव इत्येतद्दर्शयितुमाह—बन्धः——प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशात्मकतया कर्मपुद्गलानां जीवेन स्वव्यापारतः स्वीकरणं स चामूर्तस्यात्मनो गगनस्येव न विद्यत इत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत्, तथा तदभावाच्च मोक्षस्याप्यभाव इत्येवमपि संज्ञां नो निवेशयेत्। कथं तर्हि संज्ञां निवेशयेदित्युत्तरार्द्धेन दर्शयति—अस्ति बन्धः कर्मपुद्गलैर्जीवस्येवं संज्ञां

निवेशयेदिति—यत्तूच्यते—अमूर्त्तस्य मूर्तिमता सम्बन्धो न युज्यत इति तदयुक्तम्, आकाशस्य सर्वव्यापितया पुद्गलैरपि सम्बन्धो दुर्निवार्यः, तद्भावे तद्व्यापित्वमेव न स्याद् अन्यच्च अस्य विज्ञानस्य हृत्पूरमदिरादिना विकारः समुपलभ्यते न चासौ सम्बन्धमृते अतो यत्किंचिदेतत्। अपि च—संसारिणामसुमतां सदा तैजसकार्मणशरीरसद्भावादात्यन्तिकममूर्त्तत्वं न भवतीति। तथा तत्प्रतिपक्षभूता मोक्षोऽप्यस्ति, तदभावे बन्धस्याप्यभावः स्यादित्यतोऽशेषबन्धनापगमस्वभावो मोक्षोऽस्तीत्येवं च संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १५ ॥

बन्धसद्भावे चावश्यं भावीपुण्यपापसद्भाव इत्यतस्तदभावं निषेधद्वारेणाह—

मूलम्—णत्थि पुण्णे व पावे वा, णेवं सन्नं निवेसए।
अत्थि पुण्णे व पावे वा, एव सन्नं निवेसए ॥
णत्थि आसवे संवरे वा, णेवं सन्नं निवेसए।
अत्थि आसवे संवरे वा, एवं सन्नं निवेसए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥२।५।१६,१७॥

टीका—'नास्ति' न विद्यते पुण्यं, शुभकर्मप्रकृतिलक्षणं तथा 'पापं' तद्विपर्ययलक्षणं 'नास्ति' न विद्यते इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्। तदभावप्रतिपत्तिनिबन्धनं त्विदं—तत्र केषांचिन्नास्ति पुण्यं, पापमेव ह्युत्कर्षावस्थं सत्सुखदुःखनिबन्धनं, तथा परेषां पापं नास्ति, पुण्यमेव ह्यपचीयमानं पापकार्यं कुर्यादिति, अन्येषां तूभयमपि नास्ति, संसारवैचित्र्यं तु नियतिस्वभावादिकृत

तदेतदयुक्तं, यतः पुण्यपापशब्दौ सम्बन्धिशब्दौ सर्वंधिशब्दानामे-
कांशस्य सत्ताऽपरसत्तानान्तरीयका अतो नैकतरस्य सत्तेति, नाप्यु-
भयाभावः शक्यते वक्तुं, निर्निबन्धनस्य जगद्वैचित्र्यस्याभावात्,
न हि कारणमन्तरेण कर्वाचित्कार्यस्योत्पत्तिर्दृष्टा, नियतिस्वभावादि-
वादस्तु नष्टोत्तराणां पादप्रसारिकाप्रायः, अपि च—तद्वादेऽभ्युप-
गम्यमाने सकलक्रियावैयर्थ्यं तत एव सकलकार्योत्पत्तेरित्यतो
ऽस्ति पुण्यं पापं चेत्येवं संज्ञां निवेशयेत । पुण्यपापे चैवमुक्ते,
तद्यथा—"पुद्गलकर्म शुभं यत्तत्पुण्यमिति जिनशासने दृष्टम ।
यदशुभमथ तत्पापमिति भवति सर्वज्ञनिर्दिष्टम ॥१॥" इति ॥१६॥
न कारणमन्तरेण कार्यस्योत्पत्तिरतः पुण्यपापयोः प्रागुक्तयोः कारण-
भूतावाश्रवसंवरौ तत्प्रतिषेधनिषेधद्वारेण दर्शयितुकाम आह—
आश्रवति—प्रविशति कर्म येन स प्राणातिपातादिरूप आश्रवः—
कर्मोपादानकारणं, तथा तन्निरोधः संवरः एतौ द्वावपि न स्त इत्येवं
संज्ञां नो निवेशयेत, तदभावप्रतिपत्त्याशङ्काकारणं त्विदं—काय-
वाङ्मनः कर्मयोगः स आश्रव इति, यथेदमुक्तं तथेदमप्युक्तमेव—
'उच्चालियम्मि पाए' इत्यादि, ततश्च कायादिव्यापारेण कर्मबन्धो न
भवतीति, युक्तिरपि—किमयमाश्रव आत्मनो भिन्न उताभिन्नः ?
यदि भिन्नो नासावाश्रवो घटादिवत्, अभेदेऽपि नाश्रवत्वम्,
सिद्धात्मनामपि आश्रव प्रसङ्गात्, तदभावे च तन्निरोधलक्षणस्य
संवरस्याप्यभावः सिद्ध एवेत्येवमात्मकमध्यवसायं न कुर्यात् । यतो
यत्तदनैकान्तिकत्वं कायव्यापारस्य 'उच्चालियम्मि पाए' इत्यादि-

नोक्तं तदस्माकमपि संगतमेव, यतो नह्यस्माभिरप्युपयुक्तस्य कर्मबन्धोऽभ्युपगम्यते, निरुपयुक्तस्य त्वस्त्येव कर्मबन्धः, तथाभेदाभेदोभयपक्षसमाश्रयणात्तदेकपक्षाश्रितदोषाभाव इत्यस्त्याश्रवसद्भावः, तन्निरोधश्च संवर इति, उक्तं च—"योगः शुद्धः पुण्याश्रवस्तु-पापस्य तद्विपर्यासः । वाक्कायमनो गुप्तिर्निराश्रवः संवरस्तूक्तः ॥१॥" इत्यतोऽस्त्याश्रवस्तथा संवरश्चेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १७ ॥

आश्रवसंवरसद्भावे चावश्यंभावी वेदनानिर्जरासद्भावः इत्यतस्तं (तत) प्रतिषेधनिषेधद्वारेणाह—

मूलम्—णत्थि वेयणा णिज्जरा वा, णेव सन्नं निवेसए ।
अत्थि वेयणा णिज्जरा वा, एवं सन्नं निवेसए ॥
णत्थि किरिया अकिरिया वा, णेवं सन्नं निवेसए ।
अत्थि किरिया अकिरिया वा, एवं सन्नं निवेसए ॥
—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥२।५।१८, १९ ॥

टीका—वेदना—कर्मानुभवलक्षणा तथा निर्जरा—कर्म पुद्गलशाटनलक्षणा एते द्वे अपि न विद्येते इत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत । तदभावे प्रत्याशंकाकारणमिदं, तद्यथा—पल्योपमसागरोपमशतानुभवनीयं कर्मान्तर्मुहूर्तेनैव क्षयमुपयातीत्यभ्युपगमात् , तदुक्तम्—"जं अण्णाणी कम्मं खवेइ बहुयाहिं वासकोडीहिं । तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेइ ऊसासमित्तेणं ॥ १ ॥" इत्यादि । तथा क्षपकश्रेण्यां च झटित्येवं कर्मणो भस्मीकरणाद्यथाक्रमबद्धस्य चानुभवनाभावे वेदनाया अभावः तदभावाच्च निर्जराया अपी-

त्येवं नो संज्ञां निवेशयेत्। किमिति? यतः कथंचिदेव कर्मण एवमनन्तरोक्तया नीत्या क्षपणात्तपसा प्रदेशानुभवेन च अपरस्य तूदयोदीरणाभ्यामनुभवनमित्यतोऽस्ति वेदना, यत आगमोऽप्येवंभूत एव, तद्यथा—"पुव्विं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिकंताणं कम्माणं वेइत्ता मोक्खो, णत्थि अवेइत्ता" इत्यादि, वेदना सिद्धा च निर्जराऽपि सिद्धैवेत्यतोऽस्ति वेदना निर्जरा चेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १८ ॥

वेदनानिर्जरे च क्रियाऽक्रियायत्ते, ततस्तत्सद्भावं प्रतिषेधनिषेधपूर्वकं दर्शयितुमाह—क्रियापरिस्पन्दलक्षणा तद्विपर्यस्ता त्वक्रिया, ते द्वे अपि 'न स्तो', न विद्येते,—तथाहि—सांख्यानां सर्वव्यापित्वादात्मन आकाशस्येव परिस्पन्दात्मिका क्रिया न विद्यते, शाक्यानां तु क्षणिकत्वात्सर्वपदार्थानां प्रतिसमयमन्यथा चान्यथा चोत्पत्तेः पदार्थसत्तैव, न तद्व्यतिरिक्ता काचित्क्रियाऽस्ति, तथा चोक्तम्—"भूतिर्येषां क्रिया सैव, कारकं सैव चोच्यते" इत्यादि, तथा सर्वपदार्थानां प्रतिक्षणमवस्थान्तरगमनात्सक्रियत्वमतोऽक्रिया न विद्यते, इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्, किं तर्हि, अस्ति क्रिया अक्रिया चेत्येवं संज्ञां निवेशयेत्, तथाहि—शरीरात्मनोर्देशाद्देशान्तरावाप्तिनिमित्ता, परिस्पन्दात्मिका क्रिया प्रत्यक्षेणैवोपलभ्यते, सर्वथा निष्क्रियत्वे चात्मनोऽभ्युपगम्यमाने गगनस्येव बन्धमोक्षाद्यभावः, स च दृष्टेष्टबाधितः, तथा शाक्यानामपि प्रतिक्षणोत्पत्तिरेव क्रियेत्यतः कथं क्रियाया अभावः? अपि च—एकान्तेन क्रियाऽभावे संसारमोक्षा-

भाव स्यादित्यतोऽस्ति क्रिया, तद्विपक्षभूता चाक्रियेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १६ ॥

तदेवं सक्रियात्मनि सति क्रोधादिसद्भाव इत्येतद्दर्शयितुमाह—

मूलम्—णत्थि कोहे व माणे वा, णेवं सन्नं निवेसए ।
अत्थि कोहे व माणे वा एवं सन्नं निवेसए ॥
णत्थि माया व लोभे वा, णेवं सन्नं निवेसए ।
अत्थि माया व लोभे वा, एवं सन्नं निवेसए ॥
णत्थि पेज्जे व दोसे वा, णेवं सन्नं निवेसए ।
अत्थि पेज्जे व दोसे वा, एवं सन्नं निवेसए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥ २।५।२०,२१,२२॥

टीका——स्वपरात्मनोरप्रतीतिलक्षणः क्रोधः, स चानन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनभेदेन चतुर्धाऽऽगमे पठ्यते, तथैतावद्भेद एव मानो गर्वः, एतौ द्वावपि 'न स्तो' न विद्येते तथाहि—क्रोधः कपाञ्चिन्मतेन मानांश एव अभिमानग्रहगृहीतस्य तत्कृतावत्यन्तक्रोधोदयदर्शनात्, क्षपकश्रेण्यां च भेदेन क्षपणानभ्युपगमात्, तथा किमयमात्मधर्म आहोस्वित्कर्मण उतान्यस्येति ? तत्रात्मधर्मत्वे सिद्धानामपि क्रोधोदयप्रसङ्गः, अथ कर्मणस्ततस्तदन्यकषायोदयेऽपि तदुदयप्रसङ्गात् मूर्तत्वाच्च कर्मणो घटस्येव तदाकारोपलब्धिः स्यात् अन्यधर्मत्वे त्वकिञ्चित्करत्वमतो नास्ति क्रोध इत्येवं मानाभावोऽपि वाच्य इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत, यतः कषायकर्मोदयवर्ती दष्टोष्ठः कृतभ्रुकुटी-

भङ्गो रक्तवदनो गलत्स्वेदबिन्दुसमाकुलः क्रोधाध्मातः समुपलभ्यते, न चासौ मानांशः, तत्कार्याकरणात् यथा परनिमित्तोत्थापितत्वाच्चेति, तथा जीवकर्मणोरुभयोरप्ययं धर्मः, तद्भसत्वे च प्रत्येकविकल्पदोषानुपपत्तिः, अनभ्युपगमात्, संसार्यात्मनो कर्मणा सार्द्धं पृथग्भवनाभावात्तदुभयस्य च नरसिंहवद्वस्त्वन्तरत्वादित्यतोऽस्ति क्रोधो मानश्चेत्येवं संज्ञां निवेशयेत् ॥ २० ॥ साम्प्रतं मायालोभयोरस्तित्वं दर्शयितुमाह—अत्रापि प्राग्वन्मायालोभयोरभाववादिनं निराकृत्यास्तित्वं प्रतिपादनीयमिति ॥ २१ ॥

साम्प्रतमेषामेव क्रोधादीनां समासेनास्तित्वं प्रतिपादयन्नाह—प्रीतिलक्षणं प्रेम—पुत्रकलत्रधनधान्यादिषु रागस्तद्विपरीतस्त्वात्मोपघातकारिणि द्वेषः, तावेतौ द्वावपि न विद्येते, तथाहि—केषाञ्चिदभिप्रायो यदुत—मायालोभावेवावयवौ विद्येते, न तत्समुदायरूपो रागोऽवयव्यस्ति, तथा क्रोधमानावेव स्तः, न तत्समुदायरूपोऽवयवी द्वेष इति, तथाहि—अवयवेभ्यो यद्यभिन्नोऽवयवी तर्हि तदभेदात्त एव नासौ अथ भिन्नः पृथगुपलम्भः स्याद् घटपटवदित्येवमसद्विकल्पमूढतया नो संज्ञां निवेशयेत्, यतोऽवयवावयविनोः कथञ्चिद्भेद इत्येवं भेदाभेदाख्यतृतीयपक्षसमाश्रयणात्प्रत्येकपक्षाश्रितदोषानुपपत्तिरिति, एवं चास्ति प्रीतिलक्षणं प्रेमाप्रीतिलक्षणश्च द्वेष इत्येवं संज्ञां निवेशयेत् ॥ २२ ॥

साम्प्रतं कषायसद्भावे सिद्धे सति तत्कार्यभूतोऽवश्यंभावी संसारसद्भाव इत्येतत्प्रतिषेधनिषेधद्वारेण प्रतिपादयितुमाह—

मूलम्-णत्थि चाउरंते संसारे, णेवं सन्नं निवेसए ।
अत्थि चाउरंते संसारे, एवं सन्नं निवेसए ॥
णत्थि देवो व देवी वा, णेवं सन्नं निवेसए ।
अत्थि देवो व देवी वा एवं सन्नं निवेसए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥ २।५।२३, २४ ॥

टीका—चत्वारोऽन्ता—गतिभेदा नरकतिर्यङ्नरामर-लक्षणा यस्य संसारस्यासौ चतुरन्तः संसार एव कान्तारो भयैकहेतुत्वात्, स च चतुर्विधोऽपि न विद्यते, अपितु सर्वेषां संसृतिरूपत्वात्कर्मबन्धात्मकतया च दुःखैकहेतुत्वादेकविध एव, अथवा नारकदेवयोरनुपलभ्यमानत्वात्तिर्यङ्मनुष्ययोरेव सुखदुःखोत्कर्षतया तद्व्यवस्थानाद् द्विविधः संसारः पर्यायनयाश्रयणात्त्वनेकविधः अतश्चातुर्विध्यं न कथंचित् घटत इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्, अपितु अस्ति चतुरन्तः संसार इत्येवं संज्ञां निवेशयेत । यदुक्तम्—एकविधः संसारः तन्नोपपद्यते यतोऽध्यक्षेण तिर्यङ्मनुष्ययोर्भेदः समुपलभ्यते, न चासावेकविधत्वे संसारस्य घटते, तथा संभवानुमानेन नारकदेवानामप्यस्तित्वाभ्युपगमाद् द्वैविध्यमपि न विद्यते, संभवानुमानं तु—सन्ति पुण्यपापयोः प्रकृष्टफलभुजः, तन्मध्यफलभुजां तिर्यङ्मनुष्याणां दर्शनात्, अतः सम्भाव्यन्ते प्रकृष्टफलभुजो, ज्योतिषां प्रत्यक्षेणैव दर्शनात्, अथ तद्विमानाना-मुपलम्भः, एवमपि तदधिष्ठातृभिः कैश्चिद्भवितव्यमित्यनुमानेन

गम्यन्ते, ग्रहगृहीतवरप्रदानादिना च तदस्तित्वानुमितिः, तदस्तित्वे तु प्रकृष्टपुण्यफलभुज इव प्रकृष्टपापफलभुग्भिरपि भाव्यमित्यतोऽस्ति चातुर्विध्यं संसारस्य पर्यायनयाश्रयणे तु यदनेकविधत्वमुच्यते तदयुक्तं, यतः सप्तपृथिव्याश्रिता अपि नारकाः समानजातीयाश्रयणादेकप्रकारा एव, तथा तिर्यञ्चोऽपि पृथिव्यादयः स्थावरास्तथा द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियाश्च द्विपत्रियोनिलक्षप्रमाणाः सर्वेऽप्येकविधा एव, तथा मनुष्या अपि कर्मभूमिजाकर्मभूमिजान्तरद्वीपकसंमूर्च्छनजात्मकभेदमनादृत्यैकविधत्वेनैवाश्रिताः तथा देवा अपि भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकभेदेन भिन्ना एकविधत्वेनैव गृहीताः, तदेवं सामान्यविशेषाश्रयणाच्चातुर्विध्यं संसारस्य व्यवस्थितं नैकविधत्वं, संसारवैचित्र्यदर्शनात् , नाप्यनेकविधत्वं सर्वेषां नारकादीनां स्वजात्यनतिक्रमादिति ॥ २३ ॥ २४ ॥

सर्वभावनां सप्रतिपक्षत्वात्संसारसद्भावे सति अवश्यं तद्विमुक्तिलक्षणया सिद्धयापि भवितव्यमित्यतोऽधुना सप्रतिपक्षां सिद्धिं दर्शयितुमाह—

मूलम्–णत्थि सिद्धि असिद्धि वा, णेवं सन्नं निवेसए ।
अत्थि सिद्धि असिद्धि वा, एवं सन्नं निवेसए ॥
णत्थि सिद्धि नियं ठाणं, णेवं सन्नं निवेसए ।
अत्थि सिद्धि नियं ठाणं, एवं सन्नं निवेसए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र २।५।२५,२६ ॥

टीका—सिद्धिः अशेषकर्मच्युतिलक्षणा तद्विपर्यस्ता चासिद्धिर्नास्तीत्येवं नो संज्ञां निवेशयेद्, अपि त्वसिद्धेः—संसारलक्षणायाश्चातुर्विध्येनानन्तरमेव प्रसाधिताया अविगानेनास्तित्वं प्रसिद्धं, तद्विपर्ययेण सिद्धेरप्यस्तित्वमनिवारितमित्यतोऽस्ति सिद्धिरसिद्धिर्वेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति स्थितम्, इदमुक्तं भवति—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकस्य मोक्षमार्गस्य सद्भावात्कर्मक्षयस्य च पीडोपशमादिनाऽध्यक्षेण दर्शनादतः कस्यचिदात्यन्तिककर्महानिसिद्धेरस्ति सिद्धिरिति, तथा चोक्तम्—"दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषाऽस्यतिशायिनी। क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो, बहिरन्तर्मलक्षयः ॥ १ ॥" इत्यादि, एवं सर्वज्ञसद्भावोऽपि संभवानुमानाद्द्रष्टव्यः, तथाहि—अभ्यस्यमानायाः प्रज्ञायाः व्याकरणादि[ना]शास्त्रसंस्कारेणोत्तरोत्तरवृद्धया प्रज्ञातिशयो दृष्टः, तत्र कस्यचिदत्यन्तातिशयप्राप्तेः सर्वज्ञत्वं स्यादिति संभवानुमानं, न चैतदाशङ्कनीयम्, तद्यथा—ताप्यमानमुदकमत्यन्तोष्णतामियान्नाग्निसाद्भवेत, तथा "दशहस्तान्तरं व्योम्नि यो नामोत्प्लुत्य गच्छति। न योजनमसौ गन्तुं शक्तोऽभ्यासशतैरपि ॥ १ ॥" इति, दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोरसाम्यात्, तथाहि—ताप्यमानं जलं प्रतिक्षणं क्षयं गच्छेत् प्रज्ञा तु विवर्धते, यदिवा पश्चोपेत्य तत्ववेदनव्याहतमग्नित्वं, तथा प्लवनविषयेऽपि पूर्वमर्यादाया अनतिक्रमाद्योजनोत्प्लवनाभावः, तत्परित्यागे चोत्तरोत्तरां वृद्धया

प्रज्ञाप्रकर्षगमनवत्योजनशतमपि गच्छेदित्यतो दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोरसाम्यादेतन्नाशंकनीयमिति स्थितम्, प्रज्ञावृद्धेश्च बाधकप्रमाणाभावादस्ति सर्वज्ञत्वप्राप्तिरिति। यदिवा अञ्जनभृतसमुद्गकदृष्टान्तेन जीवकुलत्वाज्जगतो हिंसाया दुर्निवारत्वात्सिद्ध्यभावः, तथा चोक्तम्—

"जले जीवाः स्थले जीवा, आकाशे जीवमालिनि।
जीवमालाकुले लोके, कथं भिक्षुरहिंसकः? ॥ १ ॥"

इत्यादि, तदेवं सर्वस्यैव हिंसकत्वात्सिद्ध्यभाव इति, तदेतदयुक्तं, तथा हि—सदोपयुक्तस्य पिहिताश्रवद्वारस्य पंचसमितिसमितस्य त्रिगुप्तिगुप्तस्य सर्वथा निरवद्यानुष्ठायिनो द्विचत्वारिंशद्दोषरहितभिक्षाभुज ईर्यासमितस्य कदाचिद्द्रव्यतः प्राणिव्यपरोपणेऽपि तत्कृतबन्धाभावः, सर्वथा तस्यानवद्यत्वात, तथा चोक्तम्—"उच्चालियंमि पाए" इत्यादि प्रतीतं, तदेवं कर्माभावात्सिद्धेः सद्भावोऽव्याहतः, सामग्र्यभावादसिद्धिसद्भावोऽपीति ॥ २४ ॥ साम्प्रतं सिद्धानां स्थाननिरूपणायाह—'णत्थि सिद्धी' इत्यादि सिद्धेः अशेषकर्मच्युतिलक्षणाया निजं स्थानं—ईषत्प्राग्भाराख्यं व्यवहारतो, निश्चयस्तु तदुपरि योजनक्रोशषड्भागः, तत्प्रतिपादकप्रमाणाभावात्स नास्तीत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत, यतो बाधकप्रमाणाभावात् साधकस्य चागमस्य सद्भावात्तत्सत्ता दुर्निवारेति। अपिच—अपगताशेषकर्मणां सिद्धानां केनचिद्विशिष्टेन स्थानेन भाव्यम्, तच्चतुर्दशरज्ज्वात्मकस्य लोकस्याग्रभूतं

द्रष्टव्यं, न च शक्यते वक्तुमाकाशवत्सर्वव्यापिनः सिद्धा इति, यतो लोकालोकव्याप्याकाशं, न चालोकेऽपरद्रव्यस्य संभवः, तस्याकाशमात्ररूपत्वात् लोकमात्रव्यापित्वमपि नास्ति, विकल्पानुपपत्तेः, तथाहि—सिद्धावस्थायां तेषां व्यापित्वमभ्युपगतमुत प्रागपि ?, न तावत्सिद्धावस्थायां, तद्व्यापित्वभवने निमित्ताभावात्, नापि प्रागवस्थायां, तद्भावे सर्वसंसारिणां प्रतिनियतसुखदुःखानुभवो न स्यात्, न च शरीराद्बहिरवस्थितमवस्थानमस्ति, तत्सत्तानिबन्धनस्य प्रमाणस्याभावात्, अतः सर्वव्यापित्वं विचार्यमाणं न कथञ्चिद् घटते, तदभावे च लोकाग्रमेव सिद्धानां स्थानं, तद्गतिश्च 'कर्मविमुक्तस्योर्ध्वं गति' रितिकृत्वा भवति तथा चोक्तम्—

"लाउ एरंडफले अग्गी धूमे य उसू धणुविमुक्के ।
गइ पुव्वपओगेणं एवं सिद्धाणवि गईओ ॥ १ ॥"

इत्यादि । तदेवमस्ति सिद्धिस्तस्याश्च निजं स्थानमित्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ २६ ॥

साम्प्रतं सिद्धेः साधकानां साधूनां तत्प्रतिपक्षभूतानामसाधूनां चास्तित्वं प्रतिपादयिषुः पूर्वपक्षमाह—

मूलम्—णत्थि साहू असाहू वा, णेवं सन्नं निवेसए ।
अत्थि साहू असाहू वा, एवं सन्नं निवेसए ॥

णत्थि कल्लाण पावे वा, णेवं सन्नं निवेसए ।
अत्थि कल्लाण पावे वा, एवं सन्नं निवेसए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र २।५।२७,२८ ॥

टीका—'नास्ति' न विद्यते ज्ञानदर्शनचारित्रक्रियोपेतो मोक्षमार्गव्यवस्थितः साधुः, सम्पूर्णस्य रत्नत्रयानुष्ठानस्याभावात्, तदभावश्च तत्प्रतिपक्षत्वादेतद्व्यवस्थानस्यैकतराभावे द्वितीयस्याप्यभाव इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत, अपि तु अस्ति साधुः, सिद्धः प्राक्साधितत्वात्, सिद्धिसत्ता च न साधुमन्तरेण, अतः साधुः सिद्धिः तत्प्रतिपक्षभूतस्य चासाधोरिति । यश्च सम्पूर्णरत्नत्रयानुष्ठानाभावः प्रागाशंकितः स सिद्धान्ताभिप्रायमबुद्ध्यैव, तथाहि—सम्यग्दृष्टेरुपयुक्तस्य सतासंयमवतः श्रुतानुसारेणाऽऽहारादिकं शुद्धबुद्ध्या गृह्णतः कश्चिदज्ञानादनेषणीयग्रहणसम्भवेऽपि सततोपयुक्ततया सम्पूर्णमेव रत्नत्रयानुष्ठानमिति, यश्च भक्ष्यमिदमिदं चाभक्ष्यं गम्यमिदमिदं चागम्यं प्रासुकमेषणीयमिदमिदं च विपरीतमित्येवं रागद्वेषसंभवेन समभावरूपस्य सामायिकस्याभावः कैश्चिच्चोद्यते तत्तेषां चोदनमज्ञानविजृम्भणात्, तथाहि—न तेषां सामायिकवतां साधूनां रागद्वेषतया भक्ष्याभक्ष्यादिविवेकः अपितु प्रधानमोक्षाङ्गस्य सच्चारित्रस्य साधनार्थम्, अपि च—उपकारापकारयोः समभावतया सामायिकं न पुनर्भक्ष्याभक्ष्ययोः समप्रवृत्त्येति ॥ २७ ॥ तदेवं मुक्ति-

मार्गप्रवृत्तस्य साधुत्वमितरस्य चासाधुत्वं प्रदर्श्याधुना च सामान्येन कल्याणपापवतोः सद्भावं प्रतिषेधनिषेधद्वारेणाह—'णत्थि कल्लाण पावे वा' इत्यादि, यथेप्सितार्थफलसम्प्राप्तिः कल्याणं तन्न विद्यते, सर्वाशुचितया निरात्मकत्वाच्च सर्वपदार्थानां बौद्धाभिप्रायेण, तथा तदभावे कल्याणवांश्च न कश्चिद्विद्यते, तथाऽऽत्माद्वैतवाद्यभिप्रायेण 'पुरुष एवेदं सर्व' मिति कृत्वा पापं पापवान वा न कश्चिद् विद्यते तदेवमभयोरप्यभावः, तथा चोक्तम्—

"विद्याविनयसम्पन्ने, ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च, पण्डिताः समदर्शिनः ॥ १ ॥"

इत्येवमेव कल्याणपापकाभावरूपां संज्ञां नो निवेशयेद, अपि त्वस्ति कल्याणं कल्याणवांश्च विद्यते, तद्विपर्यस्तं पापं तद्वांश्च विद्यते, इत्येवं संज्ञां निवेशयेत्, तथाहि—नैकान्तेन कल्याणाभावो यो बौद्धैरभिहितः, सर्वपदार्थानामशुचित्वासम्भवात, सर्वाशुचित्वे च बुद्धस्याप्यशुचित्वप्राप्तेः, नापि निरात्मानः स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया सर्वपदार्थानां विद्यमानत्वात् परद्रव्यादिभिस्तु न विद्यन्ते, सदसदात्मकत्वाद्वस्तुनः तदुक्तम्—"स्वपरसत्ताव्युदासोपादानापाद्यं हि वस्तुनो वस्तुत्व" मिति तथाऽऽत्माद्वैतभावाभावात्पापाभावोऽपि नास्ति, अद्वैतभावे हि सुखी दुःखी सरोगो नीरोगः सुरूपः कुरूपो दुर्भगः सुभगोऽर्थवान दरिद्रस्तथाऽयमन्तिकोऽयं तु दवीयान इत्येवमादिको जगद्वैचित्र्यभावोऽध्यक्षसिद्धो-

ऽपि न स्यात्। यच्च समदर्शित्वमुच्यते ब्राह्मणचाण्डालादिषु तदपि समानपीडोत्पादनतो द्रष्टव्यं न पुनः कर्मापादितवैचित्र्य-भावोऽपि तेषां ब्राह्मणचाण्डालादीनां नास्तीति, तदेवं कथंचित्कल्याणमस्ति तद्विपर्यस्तं तु पापकमिति। न चैकान्तेन कल्याणं कल्याणमेव, यतः केवलिनां प्रक्षीणघनघातिकर्मचतुष्टयानां सातासातोदयसद्भावात्तथा नारकाणामपि पंचेन्द्रियत्वविशिष्ट-ज्ञानादिसद्भावान्नैकान्तेन तेऽपि पापवन्त इति तस्मात्कश्चित्कल्याणं कश्चित्पापमिति स्थितम् ॥ २८ ॥

तदेवं कल्याणपापयोरनेकान्तरूपत्वं प्रसाध्यैकान्तं दूषयितुमाह—

मूलम्—कल्लाणे पावए वावि, ववहारो ण विज्जइ।
जं वेरं तं न जाणन्ति, समणा बाल पंडिया॥
असेसं अक्खयं वावि, सव्वदुक्खेति वा पुणो।
वज्झा पाणा न वज्झत्ति, इति वायं न नीसरे॥
दीसंति समियायारा, भिक्खुणो साहुजीविणो।
एए मिच्छोवजीवंति, इति दिट्ठिं न धारए॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र २।५।२९,३०,३१॥

टीका—कल्यं—सुखमारोग्यं शोभनत्वं वा तदणतीति कल्याणं तदस्यास्तीति कल्याणो मत्वर्थीयाच्प्रत्ययान्तोऽर्शआदिभ्योऽजित्यनेन, कल्याणवानिति यावत्। एवं पापकशब्दोऽपि मत्वर्थीयाच्प्रत्ययान्तो द्रष्टव्यः। तदेवं सर्वथा कल्याणवानेवायं तथा पापवानेवायमित्येवंभूतो

व्यवहारो न विद्यते, तदेकान्तभूतस्यैवाभावात्, तदभावस्य च सर्ववस्तूनामनेकान्ताश्रयेण प्राक्प्रसाधितत्वादिति । एतच्च व्यवहाराभावाश्रयणं सर्वत्र प्रागपि योजनीयम्, तद्यथा—सर्वत्र वीर्यमस्ति नास्ति वा सर्वत्रवीर्यमित्येवंभूत एकान्तिको व्यवहारो न विद्यते, तथा नास्ति लोकोऽलोको वा तथा न सन्ति जीवा अजीवा इति चेत्येवंभूतो व्यवहारो न विद्यत इति सर्वत्र सम्बन्धनीयम्। तथा वैरं—वज्रं तद्वत्कर्म वैरं विरोधो वा वैरं तद्येन परोपघातादिनैकान्तपक्षसमाश्रयणेन वा भवति तत्ते 'श्रमणाः' तीर्थिका बाला इव रागद्वेषकलिताः 'पण्डिताः' पण्डिताभिमानिनः शुष्कतर्कदर्पाध्माता न जानन्ति, परमार्थभूतस्याहिंसालक्षणस्य धर्मस्यानेकान्तपक्षस्य वाऽनाश्रयणादिति । यदिवा यद्वैरं तत्ते श्रमणा बालाः पण्डिता वा न जानन्तीत्येवं वाचं न निसृजेदित्युत्तरेण सम्बन्धः, किमिति न निसृजेत ? यतस्तेऽपि किञ्चिज्जानन्त्येव। अपि च तेषां तन्निमित्तकोपोत्पत्तेः, यच्चैवंभूतं वचस्तन्न वाच्यं, यत उक्तम्—"अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पिज्ज वा परो। सव्वसो तं ण भासेज्जा, भासं अहियगामिणिं ॥ १ ॥" इत्यादि ॥ २६ ॥

अपरमपि वाकसंयममधिकृत्याह "असेस" मित्यादि, अशेषं कृत्स्नं तत्सांख्याभिप्रायेण अक्षतं नित्यमित्येवं न ब्रूयात्, प्रत्यर्थं प्रतिसमयं चान्यथाऽन्यथाभावदर्शनात स एवायमित्येवंभूतस्यैकत्वसाधकस्य प्रत्यभिज्ञानस्य लूनपुनर्जातेषु केशनखादि-

प्यपि प्रदर्शनात्, तथा अपिशब्दादेकान्तेन क्षणिकमित्येवमपि वाचं न निसृजेत्, सर्वथा क्षणिकत्वे पूर्वस्य सर्वथा विनष्टत्वादुत्तरस्य निर्हेतुक उत्पादः स्यात्, तथा च सति 'नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वाऽहेतोरन्यानपेक्षणा' दिति। तथा सर्वं जगद् दुःखात्मकमित्येवमपि न ब्रूयात् सुखात्मकस्यापि सम्यग्दर्शनादिभावेन दर्शनात् तथा चोक्तम्— तणसंथारनिसण्णोऽवि मुणिवरो भट्ठरागमयमोहो। जं पावइ मुत्तिसुहं कत्तो तं चक्कवट्टीवि ? ॥ १॥ " इत्यादि तथा वध्याश्चौरपारदारिकादयोऽवध्या वा तत्कर्मानुमतिप्रसङ्गादित्येवंभूतां वाचं स्वानुष्ठानपरायणः साधुः परव्यापारनिरपेक्षो न निसृजेत्, तथाहि सिंहव्याघ्रमार्जारादीन्परसत्त्वव्यापादनपरायणान् दृष्ट्वा माध्यस्थ्यमवलम्बयेत, तथा चोक्तम् "मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनेयेषु भवति," (त०वा० अ०७, सू०६) एवमन्योऽपि वाक्संयमो द्रष्टव्यः तद्यथा— अमी गवादयो वाह्या न वाह्या वा तथाऽमी वृक्षादयश्छेद्या न छेद्या वेत्यादिकं वचो न वाच्यं साधुनेति ॥ ३०॥ अयमपरो वाक्संयमप्रकारोऽन्तःकरणशुद्धिसमाश्रितः प्रदर्श्यते— 'दीसन्ती' त्यादि, 'दृश्यन्ते' समुपलभ्यन्ते स्वशास्त्रोक्तेन विधिना निभृतः संयत आत्मा येषां ते निभृतात्मानः क्वचित्पाठः 'समियाचार' त्ति सम्यक्—स्वशास्त्रविहितानुष्ठानादविपरीत आचारः—अनुष्ठानं येषां ते सम्यगाचाराः, सम्यग्वा इतो व्यवस्थित आचारो येषां ते समिताचाराः, के ते ? भिक्षणशीला भिक्षवो भिक्षामात्रवृत्तयः, तथा साधुना विधिना जीवितुं शीलं येषां ते साधुजीविनः, तथा हि—ते न कस्यचिदुपरोधविधानेन जीवन्ति तथा क्षान्ता दान्ता

जितक्रोधाः सत्यसंधा दृढव्रता युगान्तरमात्रदृष्टयः परिमितोदक-पायिनो मौनिनः सदा तायिनो विविक्तैकान्तध्यानाध्यायिनः अकौकुच्यास्तानेवंभूतानवधार्यापि 'सरागा अपि वीतरागा इव चेष्टन्ते' इति मत्वैते मिथ्यात्वोपजीविन इत्येवं दृष्टिं न धारयेत् — नैवंभूतमध्यवसायं कुर्यान्नाप्येवंभूतां वाचं निसृजेत्, यथैते मिथ्योपचारप्रवृत्ता मायाविन इति, छद्मस्थेन ह्यर्वाग्दर्शिनैवंभूतस्य निश्चयश्च कर्तुमशक्यत्वादित्यभिप्रायः, ते च स्वयूथ्या वा भवेयुर्न्तीर्थान्तरीया वा तावुभावपि न वक्तव्यौ साधुना यत उक्तम् — "यावत्परगुणपरदोषकीर्तने व्यापृतं मनो भवति। तावद्वरं विशुद्धे ध्याने व्यग्रं मनः कर्तुम् ॥१॥" इत्यादि ॥ ३१ ॥

किञ्चान्यत् —

मूलम्-दक्खिणाए पडिलंभो अत्थि वा णत्थि वा पुणो।
न वियागरेज्ज मेधावी संतिमग्गं च वूहए।।
इच्चेएहिं ठाणेहिं, जिणदिट्ठेहिं संजए।
धारयन्ते उ अप्पाणं, आमोक्खाए परिवएज्जासि ।।
त्ति बेमि ॥

— श्री सूयगडाङ्ग सूत्र २।५।३२,३३ ॥

टीका—दानं दक्षिणा तस्याः प्रतिलम्भः प्राप्तिः स दान-लाभोऽस्माद्गृहस्थादेः सकाशादस्ति नास्ति वेत्येवं न व्यागृणीयात् मेधावी—मर्यादाव्यवस्थितः। यदिवा स्वयूथ्यस्य तीर्थान्तरीयस्य वा दानं ग्रहणं वा प्रति यो लाभः स किमस्ति नास्ति संभवति

नास्ति वेत्येवं न ब्रूयादेकान्तेन. तद्दानग्रहणनिषेधे दोषोत्पत्तिसम्भवात्, तथाहि तद्दाननिषेधेऽन्तरायसंभवस्तद्वैचित्र्यं च, तद्दानानुमतावप्यधिकरणोद्भव इत्यतोऽस्य दानं नास्ति वेत्येवमेकान्तेन न ब्रूयात् । कथं तर्हि ब्रूयादिति दर्शयति—शान्तिः—मोक्षस्तस्य मार्गः—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकस्तमुपबृंहयेद् वर्धयेत्, यथा मोक्षमार्गाभिवृद्धिर्भवति तथा ब्रूयादित्यर्थः, एतदुक्तं भवति पृष्टः केनचिद्विधिप्रतिषेधमन्तरेण देयप्रतिग्राहकविषयं निरवद्यमेव ब्रूयादित्येवमादिकमन्यदपि विविधधर्मदेशनावसरे वाच्यं तथा चोक्तम्—'सावज्जणवज्जाणं वयणाणं जो न जाणइ विसेसं' इत्यादि मार्गनमध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुराह—'इच्चेएहिं' मित्यादि, इत्येतैरेकान्तनिषेधद्वारेणानेकान्तविधायिभिः स्थानैर्वाक्संयमप्रधानैः समस्ताध्ययनोक्तैः रागद्वेषरहितैर्जिनैर्दृष्टैः—उपलब्धैर्न स्वमतिविकल्पोत्थापितैः संयतः—सत्संयमवानात्मानं धारयन् एभिः स्थानैरात्मानं वर्तयन्नामोक्षाय अशेषकर्मक्षयाख्यं मोक्षं यावत्परि—समन्तात्संयमानुष्ठाने व्रजेः गच्छेस्त्वमिति विधेयस्योपदेशः । इति परिसमाप्त्यर्थे, ब्रवीमीति पूर्ववत् । नया अभिहिताः अभिधास्यमानलक्षणाश्चेति ॥ ३३ ॥

श्री ठाणांग सूत्र

मूलम्–जदत्थि णं लोगे तं सव्वं दुपओआरं तंजहा—

जीवच्चेव अजीवच्चेव। तसे चेव थावरे चेव १, सजोणियच्चेव अजोणियच्चेव २, साउयच्चेव अणाउयच्चेव ३, सइंदियच्चेव, अणिंदिएच्चेव ४, सवेयगा चेव, अवेयगा चेव ५, सरूवि चेव अरूवि चेव ६, सपोगला चेव अपोगला चेव ७, संसारसमावन्नगा चेव असंसारसमावन्नगा चेव ८, सासया चेव असासया चेव ९ ॥

—श्री स्थानाङ्ग सूत्र स्थान २ उद्देश १ सूत्र ५७ ॥

टीका अस्य च पूर्वसूत्रेण सहायं सम्बन्धः—पूर्वं ह्युक्तम् 'एक गुणरूक्षाः पुद्गलाः अनन्ताः' तत्र किमनेकगुणरूक्षा अपि पुद्गलाः भवन्ति येन ते एकगुणा रूक्षतया विशिष्यन्त इति ? उच्यते, भवन्त्येव, यतो 'जदत्थी' त्यादि, परम्परसूत्रसम्बन्धस्तु 'श्रुतं मयाऽऽयुष्मता भगवतैवमाख्यातमेक आत्मे' त्यादि, तथे-दमपरमाख्यानं 'जदत्थी' त्यादि, संहितादिचर्चः पूर्ववत्, 'यद्' जीवादिकं वस्तु 'अस्ति' विद्यते, णमितिवाक्यालंकारे, क्व-चित्पाठो जदत्थि चणंति, तत्रानुस्वार आगमिकश्चशब्दः पुनरर्थः

एवं चास्य प्रयोगः—अस्त्यात्मादिवस्तु, पूर्वाध्ययनप्ररूपितत्वात् , यच्चास्मि 'लोके' पञ्चास्तिकायात्मके लोक्यते—प्रमीयत इति लोक इति व्युत्पत्त्या लोकालोकरूपे वा तत् 'सर्वं' निरवशेषं द्वयोः पदयोः—स्थानयोः पर्यायविवक्षितराश्यनुगतद्वित्वयोस्तयोरवतारो यस्य तत् द्विपदावतारमिति, 'दुपडोयारं' ति क्वचित् पठ्यते, तत्र द्वयोः प्रत्यवतारो यस्य तत् द्विप्रत्यवतारमिति, स्वरूपवत् प्रतिपक्षवच्चेत्यर्थः, 'तद्यथे' त्युदाहरणोपन्यासे. जीवच्चेव अजीवच्चेति, जीवाश्चैवाजीवाश्चैव, प्राकृतत्वात् संयुक्तपरत्वेन ह्रस्वः, चकारौ समुच्चयार्थौ, एवकारावव्धारणे तेन च राश्यन्तरापोह-माह, नो जीवाख्यं राश्यन्तरमस्तीति चेत् , नैवम् , सर्वनिषेधकत्वे नोशब्दस्य नोजीवशब्देनाजीव एव प्रतीयते, देशनिषेधकत्वे तु जीवदेश एव प्रतीयते, न च देशो देशिनोऽत्यन्तव्यतिरिक्त इति जीव एवासाविति, 'चेय' इति वा एवकारार्थः 'चिय च्चेय एवार्थ' इति वचनात् , ततश्च जीवा एवेति विवक्षितवस्तु अजीवा एवेति च तत्प्रतिपक्ष इति, एवं सर्वत्र, अथवा 'यदस्ति' अस्तीति यत् सन्मात्रं यदित्यर्थः तद् द्विपदावतारं—द्विविधं, जीवाजीवभेदा-दिति, शेषं तथैव। अथ त्रसेत्यादिकया नवसूत्र्या जीवतत्त्वस्यैव भेदान् सप्रतिपक्षानुपदर्शयति—'तसे चेवे' त्यादि, तत्र त्रस-नामकर्मोदयात्त्रस्यन्तीति त्रसाः—द्वीन्द्रियादयः स्थावरनामकर्मो-दयात् तिष्ठन्तीत्येवंशीलाः स्थावराः पृथिव्यादयः, सह योन्या-उत्पत्तिस्थानेन सयोनिकाः संसारिणस्तद्विपर्यासभूताः अयोनि-का—सिद्धाः, सहायुषा वर्तन्ते इति सायुषस्तदन्येऽनायुषः—सिद्धाः, एवं सेन्द्रियाः—संसारिणः, अनिन्द्रियाः—सिद्धादयः,

सवेदकाः—स्त्रीवेदाद्युदयवन्तः, अवेदकाः सिद्धादयः, सहरूपेण—मूर्त्या वर्तन्त इति समासान्ते इन्प्रत्यये सति सरूपिणः संस्थान-वर्णादिमन्तः सशरीरा इत्यर्थः न रूपिणो अरूपिणो—मुक्ताः सपुद्गलाः कर्मादिपुद्गलवन्तो जीवाः अपुद्गलाः—सिद्धाः संसारं भवं समापन्नकाः—आश्रिताः संसारसमापन्नकाः—संसारिणः, तदितरे सिद्धाः शाश्वताः—सिद्धा जन्ममरणादिरहितत्वात्, अशाश्वताः—संसारिणस्तद्युक्तत्वादिति ॥

एवं जीवतत्त्वस्य द्विपदावतारं निरूप्याजीवतत्त्वस्य तं निरूपयन्नाह—

मूलम्- आगासा चेव, नो अगासा चेव ।
धम्मे चेव अधम्मे चेव ॥ (सूत्र ५८)
बंधे चेव, मोक्खे चेव १ पुन्ने चेव पावे चेव ॥२॥
आसवे चेव संवरे चेव ॥ ३ ॥
वेयणा चेव निज्जरा चेव ॥ ४ ॥ (सूत्र ५९)

—श्री स्थानाङ्ग सूत्र स्थान २ उद्देश १ ॥

टीका—आकाशं व्योम नोआकाशं—तदन्यद्धर्मास्तिकायादि, धर्मः - धर्मास्तिकायो गत्युपष्टम्भगुणः तदन्योऽधर्म—अधर्मास्ति-कायः स्थित्युपष्टम्भगुणः । सविपक्षबन्धादितत्त्वसूत्राणि चत्वारि प्राग्वर्दित ।

मूलम्-सत्त मूलनया प० तं०—नेगमे संगहे ववहारे
उज्जुसुते सद्दे समभिरूढे एवंभूते ॥

—श्री स्थानांग सूत्र स्थान ७, उद्देश ३, सूत्र ५५२ ॥

टीका—'सत्त मूल'त्यादि, मूलभूता नया मूलनयाः, ते च सप्त, उत्तरनया हि सप्तशतानि, यदाह—"एक्केक्को य सयविहो सत्तनयसया हवंति एवं तु। अन्नोऽवि य आएसो पंचेव सया नयाणं तु ॥१॥" [एकैकः शतविधः एवं सप्तनयशतानि भवन्ति अन्योऽपि चादेशो नयानां पंचैव शतानि ॥१॥] तथा—' जावइया वयणपहा तावइया चेव हुंति नयवाया। जावइया नयवाया तावइया चेव परसमय ॥२॥" त्ति, [यावन्तो वचनपन्थानः तावन्तश्चैव भवन्ति नयवादाः यावन्तो नयवादास्तावन्तश्चैव परसमया इति ॥ १ ॥] तत्रानन्तधर्माध्यासिते वस्तुन्येकधर्मसमर्थनप्रवणो बोधविशेषो नय इति, तत्र 'णेगमे' त्ति नैकैर्मानैर्महासत्तासामान्य-विशेषविशेषज्ञानैर्मिमीते मिनोति वा नैकमः, आह च—"णेगाइं माणाइं सामन्नोभयविसेसनाणाइं। जं तेहिं मिणइ तो णेगमो णयो णेगमाणोत्ति ॥ १ ॥" [नैकानि मानानि सामान्योभय-विशेषज्ञानानि यत्तैर्मिनोति ततो नैगमो नयो नैकमान इति ॥१॥] इति निगमेषु वा—अर्थबोधेषु कुशलो भवो वा नैगमः, अथवा नैके गमाः—पन्थानो यस्य स नैकगमः, आह च—'लोगत्थ-निबोहा वा निगमा तेसु कुसलो भवो वाऽयं। अहवा जं णेगगमो णेगपहा णेगमो तेणं॥ १ ॥" इति ॥ [लोकार्थनिबोधा वा निग-मास्तेषु कुशलो भवो वाऽयं। अथवा यत नैकगमोऽनेकपथो नैगमस्तेन ॥ १ ॥] तत्रायं सर्वत्र सदित्येवमनुगताकारावबोधहेतु-भूतां महासत्तामिच्छति अनुवृत्तव्यावृत्तावबोधहेतुभूतं च सामान्य-

विशेषं द्रव्यत्वादि व्यावृत्तावबोधहेतुभूतं च नित्यद्रव्यवृत्तिमन्त्यं विशेषमिति, आह—इत्थं तर्ह्ययं नैगमः सम्यग्दृष्टिरेवास्तु सामान्यविशेषाभ्युपगमपरत्वात् साधुवदिति. नैतदेवं, सामान्यविशेषवस्तूनामत्यन्तभेदाभ्युपगमपरत्वात्तस्येति, आह च भाष्यकारः—"जं सामन्नविसेसे परोप्परं वत्थुओ य सो भिन्ने। मन्नइ अच्चंतमओ मिच्छादिट्ठी कणादोव्व ॥ १ ॥ दोहिवि नएहिं नीयं सत्थमुलूएण तहवि मिच्छत्तं। जं सविसयपहाणत्तणेण अन्नोन्ननिरवेक्खा ॥ २ ॥" इति [यत्परस्परं वस्तुनश्च सामान्यविशेषौ भिन्नौ अत्यन्तं मनुतेऽतो मिथ्यादृष्टिः कणाद इव ॥ १ ॥ उलूकेन शास्त्रं द्वाभ्यां नयाभ्यां नीतमपि मिथ्यात्वं यत्स्वविषयप्रधानत्वेनान्योऽन्यनिरपेक्षौ (अङ्गीकृतौ) ॥२॥] इति १, तथा संग्रहणं भेदानां संगृह्णाति वा भेदान् संगृह्यन्ते वा भेदा येन स संग्रहः, उक्तञ्च — संगहणं संगण्हइ संगिज्झंते व तेण जं भेया। तो संगहोत्ति [संग्रहणं संगृह्णाति संगृह्यन्ते वा तेन यस्माद्भेदास्ततः संग्रहः ॥] एतदुक्तं भवति—सामान्यप्रतिपादनपरः खल्वयं सदित्युक्ते सामान्यमेव प्रतिपद्यते न विशेष, तथा च मन्यते—विशेषाः सामान्यतोऽर्थान्तरभूताः स्युरनर्थान्तरभूता वा ?, यद्यर्थान्तरभूता न सन्ति ते, सामान्यादर्थान्तरत्वात् खपुष्पवत्, अथानर्थान्तरभूताः सामान्यमात्रं ते, तदव्यतिरिक्तत्वात्, तत्स्वरूपवदिति, आह च—"सदिति भणियंमि जम्हा सव्वत्थाणुप्पवत्तए बुद्धी। तो सव्वं तम्मत्तं नत्थि तदत्थंतरं किंचि ॥ १ ॥ कुम्भो भावाऽणन्नो जइ तो भावो अहऽन्नहाऽभावो। एवं पडादओऽवि हु भावाऽनन्नत्ति तम्मत्तं ॥ २ ॥" इति, [सदिति भणिते यस्मात्सर्वत्रानुप्रवर्तते बुद्धिः ततः सर्वं तन्मात्रं नास्ति

तदर्थान्तरं किंचित् ॥ १ ॥ कुम्भो भावादनन्यो यदि ततो भावो-ऽथान्यथाऽभावः एवं पटादयोऽपि भावादनन्या इति तन्मात्रं (सर्वं) ।२॥] इति २ तथा व्यवहरणं व्यवहरन्तीति वा व्यवह्रियते वा—अपलप्यते सामान्यमनेन विशेषान् वाऽऽश्रित्य व्यवहारपरो व्यवहारः आह च—'ववहरणं ववहरए स तेण ववहीरए व सामन्नं । ववहारपरो य जओ विसेसओ तेण ववहारो ॥ १ ॥" इति, [व्यवहरणं व्यवहरति व्यवहरति वा सामान्यं व्यवहारपरो यतश्च विशेषतस्तेन व्यवहारः ॥ १ ॥] अयं हि विशेषप्रतिपादन-परः सदित्युक्ते विशेषानेव घटादीन् प्रतिपद्यते, तेषामेव व्यवहार-हेतुत्वात्, न तद्व्यतिरिक्तं सामान्यं, तस्य व्यवहारापेतत्वात्, तथा च—सामान्यं विशेषेभ्यो भिन्नमभिन्नं वा स्यात् ?, यदि भिन्नं विशेषव्यतिरेकेणोपलभ्येत, न चोपलभ्यते, अथाभिन्नं विशेषमात्रं तत्तद्व्यतिरिक्तत्वात्तत्स्वरूपवदिति, आह च— 'उवलंभव्ववहारा-भावाओ त(नि)व्विसेसभावाओ । तं नत्थि खपुष्फमिव सन्ति विसेसा सपच्चक्खं ॥ १ ॥" इति, [उपलम्भव्यवहाराभावात्तद्वि-(न्निर्वि)शेषभावात् तन्नास्ति खपुष्पमिव विशेषाः सन्ति स्वप्रत्यक्षं ॥ १ ॥] तथा लोकसंव्यवहारपरो व्यवहारः, तथाहि—असौ पञ्चवर्णोऽपि भ्रमरादिवस्तुनि बहुतरत्वात् कृष्णत्वमेव मन्यते, आह च—"बहुतरओत्तिय तं चिय गमेइ संतेवि सेसए मुयइ । संववहारपरतया ववहारो लोगमिच्छन्तो ॥१॥" [संव्यवहार-परतया लोकमिच्छन् व्यवहारो बहुतरत्वादेव तं गमयति सतोऽपि

शेषकान्मुञ्चत्येव ॥ १ ॥] इति ३, तथा ऋजु—वक्रविपर्ययादभिमुखं श्रुतं-ज्ञानं यस्यासौ ऋजुश्रुतः, ऋजु वा—वर्त्तमानमतीतानागतवक्रपरित्यागाद्वस्तु सूत्रयति—गमयतीति ऋजुसूत्रः, उक्तं च—"उज्जुं रिउं सुयं नाणमुज्जुसुयमस्स सोऽयमुज्जुसुओ। सुत्तयइ वा जमुज्जुं वत्थुं तेणुज्जुसुत्तोत्ति ॥ १ ॥" [ऋजु प्रवक्रं श्रुतं—ज्ञानं ऋजुश्रुतमस्य सोऽयमृजुश्रुतः सूत्रयति वा यदृजु वस्तु तेन ऋजुसूत्र इति ॥ १ ॥] अयं हि वर्त्तमानं निजकं लिंगवचननामादिभिन्नमप्येकं वस्तु प्रतिपद्यते, शेषमवस्त्विति, तथाहि—अतीतमप्यद्वा न भावो, विनष्टानुत्पन्नत्वादृश्यत्वात्खपुष्पवत्, तथा परकीयमप्यवस्तु निष्फलत्वात् खकुसुमवत्, तस्माद्वर्त्तमानं स्वं वस्तु, तच्च न लिङ्गादिभिन्नमपि स्वरूपमुज्झति, लिङ्गभिन्नं तटस्तटी तटमिति वचनभिन्नमापो जलं नामादिभिन्नं नामस्थापनाद्रव्यभावभिन्नं, आह च—"तम्हा निजगं संपयकालीयं लिंगवयणभिन्नंपि। नामादिभेयविहियं पडिवज्जइ वत्थुमुज्जुसुय ॥ १ ॥" ति [तस्मान्निजकं साम्प्रतकालीनं लिंगवचनभिन्नमपि नामादिभेदवदपि प्रतिपद्यते ऋजुसूत्रो वस्तु ॥ १ ॥] इति ४, तथा शपनं शपति वा असौ शप्यते वा तेन वस्त्विति शब्दस्तस्यार्थपरिग्रहादभेदोपचारान्नयोऽपि शब्द एव, यथा कृतकत्वादिलक्षणहेत्वर्थप्रतिपादकं पदं हेतुरेवाच्यत इति, आह च—"सवणं सवइ स तेणं व सप्पए वत्थु जं तओ सद्दो। तस्सत्थपरिग्गहओ नओवि सद्दोत्ति हेतुव्व ॥ १ ॥" इति, [शपनं

शपति स तेन वा शप्यते वस्तु यततः शब्दः। तस्यार्थपरिग्रहात् नयोऽपि शब्द इति हेतुरिव हेत्वर्थप्रतिपादकः ॥ १ ॥] अयं च नामस्थापनाद्रव्यकुम्भा न सन्त्येवेति मन्यते, तत्कार्याकरणात् खपुष्पवत्, न च भिन्नलिंगवचनमेकं, लिंग-वचनभेदादेव, स्त्रीपुरुषवत् कुटः वृक्ष इत्यादिवत्, अतो घटः कुटः कुम्भ इति स्वपर्यायध्वनिवाच्यमेकमेवेति, आह च—"तं चिय रिउसुत्तमयं पच्चुप्पन्नं विसेसियतरं सो। इच्छइ भावघडं चिय जं न उ नामादओ तिन्नि ॥ १ ॥" [तदेव ऋजुसूत्रमतं प्रत्युत्पन्नं विशेषिततरं स इच्छति भावघटमेव (मनुते) नैव नामादींस्त्रीन् यत ॥१॥] इति ५, तथा नानार्थेषु नानासंज्ञासम-भिरोहणात् समभिरूढः, उक्तं च—"जं जं सन्नं भासइ तं तं चिय समभिरोहए जम्हा। सन्नंतरत्थविमुहो तओ क(न)ओ समभिरूढोत्ति ॥ १ ॥" [यां यां संज्ञां भाषते तां तां (?)समभिरोह-त्येव यस्मात् संज्ञान्तरार्थविमुखस्ततो नयः समभिरूढ इति ॥ १ ॥] अयं हि मन्यते—घटकुटादयः शब्दा भिन्नप्रवृत्ति-निमित्तत्वाद्भिन्नार्थगोचराः, घटपटादिशब्दवत्, तथा च घटनात् घटो विशिष्टचेष्टावानर्थो घट इति तथा 'कुट कौटिल्ये' कुटनात् कुटः, कौटिल्ययोगात् कुट इति, घटोऽन्यः कुटोऽप्यन्य एवेति ६, तथा यथा शब्दार्थ एवं पदार्थो भूत सन्नितरथाऽन्यथा-भूतोऽसन्निति प्रतिपत्तिपर एवंभूतो नयः, आह च—"एवं जहसद्दत्थो संतो भूओ तदन्नहाऽभूओ। तेणेवंभूयनओ सद्दत्थपरो

विसेसेणं ॥ १ ॥" इति. [एवं यथाशब्दार्थस्तथा भूतः सन्नन्यथाऽभूतः ततः (असन) तेनैवंभूतनयः विशेषेण शब्दार्थपरः ॥१॥] अयं हि योषिन्मस्तकारूढस्थितं चेष्टावन्तमेवार्थं घटशब्दवाच्यं मन्यते, न स्थानभरणादिक्रियान्तरापन्नमिति, भवन्ति चात्र श्लोकाः "शुद्धं द्रव्यं समाश्रित्य, संग्रहस्तदशुद्धितः । नैगमव्यवहारौ स्तः, शेषाः पर्यायमाश्रिताः ॥ १ ॥ अन्यदेव हि सामान्यमभिन्नज्ञानकारणम् । विशेषोऽप्यन्यमेवेति, मन्यते नैगमो नयः ॥ २ ॥ सद्रूपतानतिक्रान्तस्वस्वभावमिदं जगत् । सत्तारूपतया सर्वं संगृह्णन् संग्रहो मतः ॥ ३ ॥ व्यवहारस्तु तामेव, प्रतिवस्तु व्यवस्थिताम् । तथैव दृश्यमानत्वात् ,व्यवहारयति देहिनः ॥ ४ ॥ तत्रर्जुसूत्रनीतिः स्यात् , शुद्धपर्यायसंस्थिता । नश्वरस्यैव भावस्य भावात् स्थितिवियोगतः ॥ ५ ॥ अतीतानागताकारकालसंस्पर्शवर्जितम् । वर्त्तमानतया सर्वमृजुसूत्रेण सूत्र्यते ॥ ६ ॥ विरोधिलिङ्गसंख्यादिभेदाद्भिन्नस्वभावताम् । तस्यैव मन्यमानोऽयं, शब्दः प्रत्यवतिष्ठते ॥ ७ ॥ तथाविधस्य तस्यापि, वस्तुनः क्षणवृत्तिनः ब्रूते समभिरूढस्तु, संज्ञाभेदेन भिन्नताम् ॥ ८ ॥ एकस्यापि ध्वनेर्वाच्यं, सदा तन्नोपपद्यते । क्रियाभेदेन भिन्नत्वादेवंभूतोऽभिमन्यते ॥ ९ ॥"

श्री भगवती सूत्र

मूलम्–रायगिहे नगरे समोसरणं, परिसा निग्गया जाव एवं वयासी––जीवे णं भन्ते ! सयंकडं दुक्खं वेदेइ ?, गोयमा ! अत्थेगइयं वेएइ अत्थेगइयं नो वेएइ, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ––अत्थेगइयं वेदेइ अत्थेगइयं नो वेएइ ?, गोयमा ! उदिन्नं वेएइ अनुदिन्नं नो वेएइ, से तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ–अत्थेगइयं वेएइ अत्थेगतियं नो वेएइ, एवं चउव्वीसदंडएणं जाव वेमाणिए ॥ जीवा णं भंते। सयंकडं दुक्खं वेएन्ति ?, गोयमा ! अत्थेगइयं वेयंति अत्थेगइयं णो वेयंति, से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! उदिन्नं वेयन्ति नो अणुदिन्नं वेयन्ति, से तेणट्ठेणं, एवं जाव वेमाणिया ॥ जीवे णं भंते ! सयंकडं आउयं वेएइ ? गोयमा ! अत्थेगइयं वेएइ अत्थेगइयं नो वेएइ जहा दुक्खेणं दो दंडगा तहा आउएणवि दो दंडगा एगत्तपुहुत्तिया, एगत्तेणं जाव वेमाणि-या पुहुत्तेणवि तहेव ॥

—श्री भगवती सूत्र शतक १, उद्देश २, सूत्र ६० ॥

टीका--'रायगिहे' इत्यादि पूर्ववत्, 'जीवे णं' मित्यादि-तत्र 'सयंकडं दुक्खं'ति यत्परकृतं तन्न वेदयतीति प्रतीतमेवातः स्वयंकृतमिति पृच्छति स्म 'दुक्खं'ति सांसारिकं सुखमपि वस्तुतो दुःखमिति दुःखहेतुत्वाद् 'दुःखं' कर्म वेदयतीति. काकुपाठात् प्रश्नः, निर्वचनं तु यदुदीर्णं तद्वेदयति, अनुदीर्णस्य हि कर्मणो वेदनमेव नास्ति तस्मादुदीर्णं वेदयति, नानुदीर्णं, न च बन्धानन्तरमेवोदेति अतोऽवश्यं वेद्यमप्येकं न वेदयति इत्येवं व्यपदिश्यते, अवश्यं वेद्यमेव च कर्म "कडाण कम्माण ण मोक्खो अत्थि" इति वचनादिति। एवं 'जाव वेमाणिए' इत्यनेन चतुर्विंशतिदण्डकः सूचितः, स चैवम्--'नेरइए णं भन्ते! सयंकडं' मित्यादि। एवमेकत्वेन दण्डकः, तथा बहुत्वेनान्यः, स चैवम्—'जीवा णं भंते! सयंकडं दुक्खं वेदेंती'त्यादि तथा 'नेरइयाणं भंते! सयंकडं दुक्ख'मित्यादि, नन्वेकार्थे योऽर्थो बहुत्वेऽपि स एवेति किं बहुत्वप्रश्नेन? इति, अत्रोच्यते, क्वचिद्वस्तुनि एकत्वबहुत्वयोरर्थविशेषो दृष्टो यथा सम्यक्त्वादेः एकं जीवमाश्रित्य षट्षष्टिसागरोपमाणि साधिकानि स्थितिकाल उक्तो नानाजीवानाश्रित्य पुनः सर्वाद्धा इति, एवमत्रापि संभवेदिति शङ्कायां बहुत्वप्रश्नो न दुष्टः अव्युत्पन्नमतिशिष्यव्युत्पादनार्थत्वाद्वेति॥ अथायुःप्रधानत्वान्नारकादिव्यपदेशस्यायुराश्रित्य दण्डकद्वयम्—एतस्य चेयं वृद्धोक्तभावना—यदा सप्तमक्षितावायुर्बद्धं पुनश्च

कालान्तरं परिणामविशेषात्तृतीयधरणीप्रायोग्यं निर्वर्त्तितं वासुदेवेनेव तत्तादृशमङ्गीकृत्योच्यते—पूर्वबद्धं कश्चिन्न वेदयति, अनुदीर्णत्वात्तस्य, यदा पुनर्यत्रैव बद्धं तत्रैवोत्पद्यते तदा वेदयतीत्युच्यते, तथैव तस्योदितत्वादिति ॥

मूलम्–से नूणं भंते! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ?, हंता गोयमा! जाव परिणमइ ॥ जण्णं भंते! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ तं किं पयोगसा वीससा?, गोयमा! पयोगसावि तं, वीससावि तं। जहा ते भंते! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ तहा ते नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ? जहा ते नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ, तहा ते अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ?, हंता गोयमा! जहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ तहा मे नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ, जहा मे नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ तहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ ॥ से णूणं भंते! अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं?, जहा परिणमइ दो आलावगा तहा ते इह गमणिज्जेणवि दो आलावगा भाणियव्वा जाव जहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं ॥

—व्याख्या प्र० शत० १, उ० ३ सूत्र ३२ ॥

टीका—'से णूणमि'त्यादि 'अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ' त्ति, अस्तित्वं——अंगुल्यादेः अङ्गुल्यादिभावेन सत्त्वम्, उक्तञ्च—"सर्वमस्ति स्वरूपेण, पररूपेण नास्ति च। अन्यथा सर्वभावानामेकत्वं सम्प्रसज्यते ॥ १ ॥" तच्चेह ऋजुत्वादिपर्याय-रूपमवसेयम्, अङ्गुल्यादिद्रव्यास्तित्वस्य कथञ्चिदृजुत्वादिपर्यायाव्यतिरिक्तत्वात् अस्तित्वे—अङ्गुल्यादेरेवांगुल्यादिभावेन सत्त्वे वक्रत्वादिपर्याय इत्यर्थः 'परिणमति' तथा भवति, इदमुक्तं भवति द्रव्यस्य प्रकारान्तरेण सत्ता प्रकारान्तरसत्तायां वर्त्तते यथा मृद्द्रव्यस्य पिण्डप्रकारेण सत्ता घटप्रकारसत्तायामिति। 'नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ'त्ति नास्तित्वं—अंगुल्यादेरंगुष्ठादि-भावेनासत्त्वं तच्चांगुष्ठादिभाव एव, ततश्चांगुल्यादेर्नास्तित्वमंगुष्ठा-द्यस्तित्वरूपमंगुल्यादेर्नास्तित्वे अंगुष्ठादेः पर्यायान्तरेणास्तित्वरूपे परिणमति, यथा मृदो नास्तित्वं तन्त्वादिरूपं मृन्नास्तित्वरूपे पटे इति, अथवाऽस्तित्वमिति—धर्मधर्मिणोरभेदात सद्वस्तु अस्तित्वे—सत्त्वे परिणमति, तत्सदेव भवति, नात्यन्तं विनाशि स्याद् विना-शस्य पर्यायान्तरगमनमात्ररूपत्वात्, दीपादिविनाशस्यापि तमि-स्रादिरूपतया परिणामात्, तथा 'नास्तित्वं' अत्यन्ताभावरूपं यत् खरविषाणादि तत् 'नास्तित्वे' अत्यन्ताभाव एव वर्त्तते, नात्यन्त-मसतः सत्त्वमस्ति, खरविषाणस्येवेति, उक्तं च—"नासतो जायते भावो, नाभावो जायते सतः।" अथवाऽस्तित्वमिति

धर्मभेदात् सद् 'अस्तित्वे' सत्त्वे वर्त्तते, यथा पटः पटत्व एव नास्तित्वं चासत् 'नास्तित्वे वर्त्तते, यथा अपटोऽपटत्व एवेति ॥ अथ परिणामहेतुदर्शनायाह—'जं ण'मित्यादि अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ' त्ति पर्यायः पर्यायान्तरतां यातीत्यर्थः 'नत्थित्तं नत्थि ते परिणमइ' त्ति वस्त्वन्तरस्य पर्यायस्तत्पर्यायान्तरतां यातीत्यर्थः, 'पओगसा' त्ति सकारस्यागमिकत्वात् 'प्रयोगेण' जीवव्यापारेण 'वीससा' त्ति यद्यपि लोके विश्रसाशब्दो जरापर्यायतया रूढस्तथाऽपीह स्वभावार्थो दृश्यः, इह प्राकृतत्वाद् 'वीससाए'त्ति वाच्ये 'वीससा' इत्युक्तमिति, अत्रोदाहरणम्—'पयोगसावि तं'ति, यथा शुभ्राभ्रमशुभ्राभ्रतया, नास्तित्वस्यापि नास्तित्वपरिणामे प्रयोगविश्रसयोरेतान्येवोदाहरणानि, वस्त्वन्तरापेक्षया मृत्पिण्डादेरस्तित्वस्य नास्तित्वात्, सत्सदेव स्यादिति व्याख्यानान्तरेऽप्येनान्येवोदाहरणानि पूर्वोत्तरावस्थयोः सद्रूपत्वादिति, यदपि—'अभावोऽभाव एव स्याद्' इति व्याख्यानं तत्रापि प्रयोगेणापि तथा विस्रसयाऽपि अभावोऽभाव एव स्यात् न प्रयोगादेः साफल्यमिति व्याख्येयमिति ॥ अथोक्तहेत्वोरुभयत्र समतां भगवदभिमततां च दर्शयन्नाह—'जहा ते' इत्यादि, 'यथा' प्रयोगविश्रसाभ्यामित्यर्थः 'ते' इति तव मतेन अथवा सामान्येनास्तित्वपरिणामः प्रयोग वस्रसाजन्य उक्तः सामान्यश्च विधिः क्वचिदतिशयवति वस्तुन्यन्यथाऽपि स्याद् अतिशयवांश्च भगवानिति तमाश्रित्य परिणामान्यथात्वमाशंकमान आह—'जहा ते' इत्यादि 'ते' इति तव

सम्बन्धि अस्तित्वं, शेषं तथैवेति ॥ अथोक्तस्वरूपस्यैवास्य सत्यत्वेन प्रज्ञापनीयतां दर्शयितुमाह—'से णूण'मित्यादि, अस्तित्वमस्तित्वे गमनीयं सद्वस्तु सत्यत्वेनैव प्रज्ञापनीयमित्यर्थः, 'दो आलावग' त्ति' 'से णूणं भंते! अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्ज'मित्यादि 'पओगसा वि तं वीससावि तं' इत्येतदन्त एकः, परिणामभेदाभिधानात्, 'जहा ते भंते! अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्ज'मित्यादि 'तहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्ज'मित्येतदन्तस्तु द्वितीयोऽस्तित्वनास्तित्वपरिणामयोः समताऽभिधायीति ॥

मूलम् जीवे णं भन्ते गब्भं वक्कममाणे किं सइंदिए वक्कमइ अणिंदिए वक्कमइ? गोयमा! सिय सइंदिए वक्कमइ, सिय अणिंदिए वक्कमइ, से केणट्ठेणं० ?, गोयमा! दव्विंदियाइं पडुच्च अणिंदिए वक्कमइ, भाविंदियाइं पडुच्च सइंदिए वक्कमइ, से तेणट्ठेणं०। जीवे णं भन्ते! गब्भं वक्कममाणे किं ससरीरी वक्कमइ असरीरी वक्कमइ? गोयमा! सिय ससरीरी व० सिय असरीरी वक्कमइ, से केणट्ठेणं? गोयमा! ओरालियवेउव्वियआहारयाइं पडुच्च असरीरी व० तेयाकम्माइं प० सस० वक्क० से तेणट्ठेणं गोयमा!०।

—व्याख्या प्रज्ञप्ति प्रथम शतक, उद्देश्य ७, सूत्र ६१ ॥

टीका—'गब्भं वक्कममाणे' त्ति गर्भं व्युत्क्रामन गर्भं उत्पद्यमान इत्यर्थः 'दव्विंदियाइं' ति निर्वृत्त्युपकरणलक्षणानि, तानि हीन्द्रियपर्याप्तौ सत्यां भविष्यन्तीत्यनिन्द्रियः उत्पद्यते. 'भाविंदियाइं' न लब्ध्युपयोगलक्षणानि. तानि च संसारिणः सर्वावस्थ भावीनीति। 'ससरीरि'त्ति सह शरीरेणेति सशरीरी इनसमासान्तभावात. 'असरीरि'त्ति शरीरवान शरीरी. तन्निषेधादशरीरी 'वक्कमइ' त्ति व्युत्क्रामति उत्पद्यत इत्यर्थः।

मूलम्—पुरिसे णं भंते! कच्छंसि वा १ दहंसिवा २ उदगंसि वा ३ दवियंसि वा ४ वलयंसि वा ५ नूमंसि वा ६ गहणंसि वा ७ गहणविदुग्गंसि वा ८ पव्वयंसि वा ९ पव्वयविदुग्गंसि वा १० वणंसि वा ११ वणविदुग्गंसि वा १२ मियवित्तीए मियसंकप्पे मियपणिहाणे मियवहाए गंता एए मिएत्तिकाउं अन्नयरस्स मियस्स वहाए कूडपासं उद्दाइ, ततो णं भंते! से पुरिसे कतिकिरिए पण्णत्ते?, गोयमा! जाव च णं से पुरिसे कच्छंसि वा १२ जाव कूडपासं उद्दाइ ताव च णं से पुरिसे सिय तिकि० सिय चउ० सिय पंच०। से केणट्ठे णं सिय ति० सिय च० सिय प०?, गोयमा! जे भविए उद्दवणयाए णो बंधणयाए णो मारणयाए तावं च णं से पुरिसे काइयाए अहिगरणियाए पाउसियाए तिहिं किरियाहिं पुट्ठे, जे भविए उद्दवणयाएवि बंधणयाएवि णो मार-

णयाए ताव च णं से पुरिसे काइयाए अहिगरणि-याए पाउसियाए परियावणियाए चउहिं किरि-याहिं पुट्ठे, जे भविए उद्दवणयाए वि बंधणयाए वि मारणयाए वि तावं च णं से पुरिसे काइयाए अहिगरणियाए पाउसियाए जाव पंचहिं पुट्ठे, से तेणट्ठेणं जाव पंचकिरिए. (सू० ६५ पुरिसे णं भंते! कच्छंसि वा जाव वणविदुग्गंसि वा तणाइं ऊसविय २ अगणिकाय निस्सरइ तावं च णं से भंते! से पुरिसे कति किरिए ?, गोयमा! सिय ति किरिए, सिय चउ कि० सिय पंच०, से केणट्ठेणं ? गोयमा! जे भविए उस्सवणयाए तिहिं, उस्सवणयाए विनिस्सरणयाए वि नो दहणयाए चउहिं, जे भविए उस्सवणयाए वि निस्सरणयाए वि दहणयाए वि तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, से तेण० गोयमा!० ॥ ६६ ।

पुरिसेणं भंते, कच्छंसि वा जाव वणविदुग्गंसि वा मियवित्तीए मिएसंकप्पे मियपणिहाणे मियवहाय गंता एए मिएत्तिकाउं अन्नयरस्स मियस्स वहाय उसुं निसिरइ, ततो णं भंते! से

पुरिसे कइ किरिए ?, गोयमा ! सिय ति किरिए, सिय चउ किरिए सिय पंच किरिए, से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! जे भविए निस्सिरणयाए नो विद्धंसणयाए वि नो मारणयाए तिहिं, जे भविए निस्सिरणयाए वि विद्धंसणयाए वि नो मारणयाए चउहिं, जे भविए निस्सिरणयाए वि विद्धंसणयाए वि मारणयाए वि तावं च णं से पुरिसे जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, से तेणं० गोयमा ! सिय ति किरिए सिय चउ किरिए सिय पंच किरिए ॥६७॥ पुरिसेणं भंते ! कच्छंसि वा जाव अन्नयरस्स मियस्स वहाए आययकन्नाययं उसु आयामेत्ता चिट्ठिज्जा, अन्नयरे पुरिसे मग्गओ आगम्म सयपाणिणा असिणा सीसं छिन्देज्जा से य उसुं ताए चेव पुव्वायामणयाए तं विंधेज्जा सेणं भंते ! पुरिसे किं मियवेरेणं पुट्ठे पुरिसवेरेणं पुट्ठे ? गोयमा ! जे मियं मारेइ से मियवेरेणं पुट्ठे, जे पुरिसं मारेइ से पुरिसवेरेणं पुट्ठे, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जाव से पुरिसे वेरेणं पुट्ठे ? से नूणं गोयमा ! कज्जमाणे कडे संधिज्जमाणे संधिए निव्वत्तिज्जमाणे निव्वत्तिए निसिरिज्ज-

माणे निसिट्ठे त्ति वत्तव्वं सिया ?, हंता भगवं कज्ज-माणे कडे जाव निसिट्ठत्ति वत्तव्वं सिया, से तेणट्ठेणं गोयमा ! जे मियं मारेइ से मियवेरेणं पुट्ठे, जे पुरिसं मारेइ से पुरिसवेरेणं पुट्ठे, । अंतो छण्हं मासाणं मरइ काइयाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, बाहिं छण्हं मासाणं मरइ काइयाए जाव पारियावणियाए चउहिं किरियाहिं पुट्ठे ॥

—श्री भगवती सूत्र, शतक प्रथम, उद्देश ८ सूत्र ६८ ॥

टीका—'कच्छंसि वत्ति 'कच्छे' नदीजलपरिवेष्टिते वृक्षादिमति प्रदेशे 'दहंसि वत्ति ह्रदे प्रतीते 'उदगंसि वत्ति उदके—जलाश्रयमात्रे 'दवियंसि वत्ति 'द्रविके' तृणादिद्रव्यसमुदाये वलयंसि वत्ति 'वलये' वृत्ताकारनद्याद्युदककुटिलगतियुक्तप्रदेशे 'नूमंसि व' त्ति 'नूमे' अवनमसे 'गहणंसि वत्ति 'गहने' वृक्षवल्लीलतावितानवीरुत्समुदाये 'गहण विदुग्गंसि वत्ति गहनविदुर्गे, पर्वतैकदेशावस्थितवृक्षवल्ल्यादिसमुदाये 'पव्वयंसि व' त्ति पर्वते 'पव्वय विदुग्गंसि वत्ति पर्वतसमुदाये 'वणंसि वत्ति 'वने' एकजातीयवृक्षसमुदाये 'वणविदुग्गंसि वत्ति नानाविधवृक्षसमूहे 'मिगवित्तीए'त्ति मृगैः—हरिणैर्वृत्तिः—जीविका यस्य स मृगवृत्तिकः, स च मृगरक्षकोऽपि स्यादिति अत आह—'मियसंकप्पे'त्ति मृगेषु संकल्पो—वधाध्यवसायः छेदनं वा

यस्यामसौ मृगसंकल्पः, स च चलचित्ततयाऽपि भवतीत्यत आह—'मियपणिहाणे'त्ति मृगवधैकाग्रचित्तः 'मिगवहाए' त्ति मृगवधाय 'गंतं'त्ति गत्वा कच्छादाविति योगः 'कूडपासं' त्ति कूटं च—मृगग्रहणकारणं गर्त्तादि पाशश्च तद्बन्धनमिति कूटपाशम् 'उद्दाइ'त्ति मृगवधायोद्दाति, रचयतीत्यर्थः, 'तओ णं' ति ततः कूटपाशकरणात् 'कइकिरिए'त्ति कति क्रियः ?, क्रियाश्च कायिक्यादिकाः, 'जे भविए'त्ति यो भव्यो योग्यः करोति यावत् 'जावं च णं'मि त शेषः, यावन्तं कालमित्यर्थः कस्या करो इत्याह—'उद्दवणयाए'त्ति कूटपाशधारणतायाः. तापत्ययश्चेह स्वार्थिकः, 'तावं च णं'ति तावन्तं कालं 'काइयाए'त्ति गमनादिकायचेष्टारूपया 'अहिगरणियाए'त्ति, अधिकरणेन—कूटपाशरूपेण निर्वृता या सा तथा तया पाउसियाए'त्ति प्रद्वेषो—मगेषु दुष्टभावस्तेन निर्वृत्ता प्राद्वेषिकी तथा 'तिहिं किरियाहिं'ति क्रियन्त इति क्रियाः—चेष्टाविशेषाः, 'पारितावणियाए'त्ति परितापनप्रयोजना पारितापनिकी, सा च बद्धे सति मृगे भवति प्राणातिपातक्रिया च घातिते इति १॥ 'ऊसविइ'त्ति उत्सर्यः ऊर्ध्वीकरोत्यर्थः ऊर्द्धीकृत्येति वा 'निसिरइ'त्ति निसृजति—क्षिपति यावदिति शेषः २। 'उसुं'ति बाणम् 'आययकण्णाययं'ति कर्णं यावदायतः—आकृष्टः कर्णायतः आयतं प्रयत्नवद् यथा भवतीत्येवं कर्णायत आयतकर्णायतस्तम् 'आयामेत्ता'त्ति 'आयम्य'

आकृष्य 'मग्गओ'त्ति पृष्ठतः 'सयपाणिणा'त्ति 'स्वकपाणिना' स्वकहस्तेन 'पुव्वायामणयाए'त्ति पूर्वाकर्षणेन, 'से णं भंते! पुरिसे'त्ति 'सः' शिरच्छेत्ता पुरुषः 'मियवेरेणं'त्ति इह वैरं वैरहेतुत्वाद् वधः पापं वा वैरं वैरहेतुत्वादिति, अथ शिरच्छेतृ-पुरुषहेतुकत्वादिषु निपातस्य कथं धनुर्द्धरपुरुषो मृगवधेन स्पृष्ट इत्याकृतवतो गौतमस्य तदभ्युपगतमेवार्थमुत्तरतया प्राह—क्रियमाणं धनुःकाण्डादि कृतमिति व्यपदिश्यते ?, युक्तिस्तु प्रागुक्ता, तथा सन्धीयमानं—प्रत्यञ्चायामारोप्यमाणं काण्डं धनुर्वाऽऽरोप्य-मानप्रत्यञ्चं 'सन्धितं' कृतसन्धानं भवति ?, तथा 'निर्वृत्यमानं' नितरां वर्त्तुलीक्रियमाणं प्रत्यञ्चाकर्षणेन निर्वृत्तितं—वृत्तीकृतं मण्ड-लाकारं कृतं भवति ?, तथा 'निसृज्यमाणं' निक्षिप्यमाणं काण्डं निसृष्टं भवति ?, यदा च निसृष्टं तदा निसृज्यमानताया धनुर्द्धरेण कृतत्वात् तेन काण्डं निसृष्टं भवति, काण्डनिसर्गाश्च मृगस्तेनैव मारितः ततश्चोच्यते—'जे मियं मारेइ' इत्यादीति ॥ ३ ॥ इह च क्रियाः प्रक्रान्ता, ताश्चानन्तरोक्ते मृगादिवधे यावत्यो यत्र काल-विभागे भवन्ति तावतीस्तत्र दर्शयन्नाह—'अन्तो छण्ह'मित्यादि, षण्मासान् यावत् प्रहारहेतुकं मरणं परतस्तु परिणामान्तरापादित-मितिकृत्वा षण्मासादूर्ध्वं प्राणातिपातक्रिया न स्यादिति हृदयम्, एतच्च व्यवहारनयापेक्षया प्राणातिपातक्रियाव्यपदेशमात्रोप-दर्शनार्थमुक्तम्, अन्यथा यदा कदाऽप्यधिकृतं प्रहारहेतुकं मरणं भवति तदैव प्राणातिपातक्रिया, इति ४ ॥

मूलम्-दो भंते ! पुरिसा सरिसया सरित्तया सरिव्वया सरिसभंडमत्तोवगरणा अन्नमन्नेणं सद्धिं संगामं संगामेन्ति, तत्थ णं एगे पुरिसे पराइणइ एगे पुरिसे पराइज्जइ, से कहमयं भंते ! एवं ?, गोयमा सवीरिए पराइणइ अवीरिए पराइज्जइ, से केणट्ठेणं जाव पराइज्जइ ?, गोयमा ! जस्स णं वीरियवज्झाइं कम्माइं णो बद्धाइं णो पुट्ठाइं जाव नो अभिसमन्नागयाइं नो उदिन्नाइं उवसंताइं भवन्ति से णं पराइणइ, जस्स णं वीरियवज्झाइं कम्माइं बद्धाइं जाव उदिन्नाइं नो उवसंताइं भवन्ति से णं पुरिसे पराइज्जइ से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ सवीरिए पराइणइ अवीरिए पराइज्जइ ॥

—श्री भगवती सूत्र १।८।७०॥

टीका-'सरिसय'त्ति सदृशकौ कौशलप्रमाणादिना 'सरित्तय'त्ति 'सदृक्त्वचौ, सदृशच्छवी 'सरिव्वय' त्ति सदृग्वयसौ समानयौवनाद्यवस्थौ 'सरिसभंडमत्तोवगरण'त्ति भाण्डं-भाजनं मृन्मयादि मात्रो—मात्रया युक्त उपधिः स च कांस्यभाजनादि-भोजनभण्डिका भाण्डमात्रा वा—गणिमादिद्रव्यरूपः परिच्छेदः उपकरणानि—अनेकधाऽऽवरणप्रहरणादीनि ततः सदृशानि भाण्डमात्रोपकरणानि ययोस्तौ तथा, अनेन च समानविभूतिकत्वं

तयोरभिहितं, 'सवीरिणस्त्ति सवीर्याः' 'वीरियवज्झाइ'ति वीर्य वर्ज्यं येषां तानि तथा ॥

मूलम्–जीवा णं भंते ! किं सवीरिया अवीरिया ?, गोयमा ! सवीरियावि अवीरियावि, से केणट्ठेणं? गोयमा ! जीवा दुविहा पन्नत्ता, तंजहा–संसार समावन्नगा य असंसारसमावन्नगा य, तत्थ णं जे ते असंसारसमावन्नगा ते णं सिद्धा, सिद्धा णं अवीरिया, तत्थ णं जे ते संसारसमावन्नगा ते दुविहा पन्नत्ता, तंजहा––सेलेसिपडिवन्नगा य असेलेसिपडिवन्नगा य, तत्थ णं जे ते सेलेसिपडिवन्नगा ते णं लद्धिवीरिएणं सवीरिया करणवीरिएणं अवीरिया, तत्थ णं जे ते असेलेसिपडिवन्नगा ते णं लद्धिवीरिएणं सवीरिया करणवीरिएणं सवीरियावि अवीरियावि, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ –जीवा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सवीरियावि अवीरियावि । नेरइया णं भंते ! किं सवीरिया अवीरिया ? गोयमा ! नेरइया लद्धिवीरिएणवि सवीरिया करणवीरिएणं सवीरियावि अवीरियावि! से केणट्ठेणं ?, गोयमा ! जेसि णं नेरइयाणं अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे ते णं नेरइया लद्धिवीरिएणवि

सवीरिया करणवीरिएणवि सवीरियावि. जेसि णं नेरइया णं नत्थि उट्ठाणे जाव परक्कमे ते णं नेरइया लद्धिवीरिएणं सवीरिया करणवीरिएणं अवीरिया, से तेणट्ठेणं०. जहा नेरइया एवं जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिया. मणुस्सा जहा ओहिया जीवा, नवरं सिद्धवज्जा भाणियव्वा. वाणमंतरजोइसवेमाणिया जहा नेरइया, सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ॥

—श्री भगवती सूत्र १।८।७२॥

टीका—सिद्धाणं 'अवीरिय'त्ति सकरणवीर्याभावादवीर्याः सिद्धाः 'सेलेसिपडिवन्नगा य'त्ति शैलेशः—सर्वसंवररूपचरण-प्रभुस्तस्येयमवस्था, शैलेशो वा—मेरुस्तस्येव याऽवस्था स्थिरतासा-धर्म्यात्सा शैलेशी, सा च सर्वथा योगनिरोधे पंचह्रस्वाक्षरो-च्चारकालमाना तां प्रतिपन्नका ये ते तथा, 'लद्धिवीरिएणं सवीरिय' त्ति वीर्यान्तरायक्षयक्षयोपशमतो या वीर्यस्य लब्धिः सैव तद्धे-तुत्वाद्वीर्यं लब्धिवीर्यंतेन सवीर्याः, एतेषां च क्षायिकमेव लब्धि-वीर्यं 'करणवीरिएणं' ति लब्धिवीर्यकार्यभूता क्रिया करणं तद्रूपं करणवीर्यम्, 'करणवीरिएणं सवीरियावि अवीरियावि' त्ति तत्र 'सवीर्याः' उत्थानादिक्रियावन्तः अवीर्यास्तूत्थानादिक्रियाविकलाः, ते चापर्याप्त्यादिकालेऽवगन्तव्या इति। 'नवरं सिद्धवज्जा भाणि-यव्व'त्ति, औधिकजीवेषु सिद्धाः सन्ति मनुष्येषु तु नेति, मनुष्यदण्डके वीर्यं प्रति सिद्धस्वरूपं नाध्येयमिति ॥

मूलम्-खंदयाति समणे भगवं महावीरे खंदयं कच्चाय० एवं वयासी--से नूणं तुम खंदया ! सावत्थीए नयरीए पिंगलएणं णियंठेणं वेसालियसावएणं इणमक्खेवं पुच्छिए मागहा ! किं सअंते लोए अणंते लोए एवं त जेणेव मम अंतिए तेणेव हव्वमागए, से नूणं खंदया ! अयमट्ठे समट्ठे? हंता अत्थि. जंविय ते खंदया ! अयमेयारूवे अब्भत्थिए चिन्तिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुपज्जित्था--किं सअंते लोए अणंते लोए? तस्सविय णं अयमट्ठे—एवं खलु मए खंदया ! चउव्विहे लोए पन्नत्ते, तंजहा--दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ। दव्वओ णं एगे लोए सअंते ?, खेत्तओ णं लोए असंखेज्जाओ जोयणकोडा-कोडीओ आयामविक्खंभेणं, असंखेज्जाओ जोयण-कोडाकोडीओ परिक्खेवेण पं० अत्थि पुण सअन्ते?, कालओ ण लोए ण कयावि न आसी न कयावि न भवति न कयावि न भविस्सति भुविंसु य भवति य भविस्सइ य धुवे णितिए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे, णत्थि पुण से अन्ते ३, भावओ ण लोए अणंता वएण पज्जवा गंध० रस०

फासपज्जवा, अणंता संठाणपज्जवा अणंता गरुय-लहुयपज्जवा, अणंता अगरुयलहुयपज्जवा, नत्थि पुण से अंते ४, सेत्तं खंदगा ! दव्वओ लोए सअन्ते खेत्तओ लोए सअन्ते कालतो लोए अणंते भावओ लोए अणंते। जेवि य ते खंदया ! जाव सअन्ते जीवे अणंते जीवे, तस्सवि य णं अयमट्ठे —एवं खलु जाव दव्वओ णं एगे जीवे सअन्ते, खेत्तओ णं जीवे असंखेज्जपएसिए असंखेज्ज-पदेसोगाढे अत्थि पुण से अन्ते,, कालओ णं जीवे न कयावि न आसि जाव निच्चे नत्थि पुण से अंते, भावओ णं जीवे अणंता णाणपज्जवा अणंता दंसणप० अणंता चरित्तप० अणंता अगुरुलहुयप० नत्थि पुण से अन्ते, सेत्तं दव्वओ जीवे सअन्ते खेत्तओ जीवे सअन्ते कालओ जीवे अणंते, भावओ जीवे अणंते। जेवि य ते खंदया ! पुच्छा०(इमेयारूवं चिंतिए जाव सअन्ता सिद्धि अणंता सिद्धा) तस्स वि य णं अयमट्ठे खंदया ! मए एवं खलु चउव्विहा सिद्धा पण्णा०, तं०—दव्वओ ४, दव्वओ णं एगा सिद्धी खेत्तओ णं सिद्धी पणयालीसं जोयणसय-सहस्साइं आयामविक्खंभेणं एगा जोयणकोडी बायालीसं च जोयणसयसहस्साइं तीसं च जोयण

महस्साइं दोन्नि य अउणापन्नजोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं अत्थि पुण से अन्ते, कालओ णं सिद्धी न कयावि न आसि, भावओ य जहा लोयस्स तहा भाणियव्वा, तत्थ दव्वओ सिद्धी सअन्ता खे० सिद्धी सअन्ता का० सिद्धी अणंता भावओ सिद्धी अणंता। जेवि य ते खंदया! जाव किं अणते सिद्धे तं चेव जाव दव्वओ णं एगे सिद्धे सअन्ते, खे० सिद्धे असंखेज्जपएसिए असंखेज्ज-पदेसोगाढे, अत्थि पुण से अन्ते, कालओ णं सिद्धे सादीए अपज्जवसिए नत्थि पुण से अन्ते, भा० सिद्धे अणंता णाणपज्जवा, अणंता दंसणपज्जवा जाव अणंता अगुरुलहुयप० नत्थि पुण से अन्ते, सेत्तं दव्वओ सिद्धे सअन्ते खेत्तओ सिद्धे सअन्ते का० सिद्धे अणंते भा० सिद्धे अणंते। जेवि य ते खंदया! इमेयारूवे अब्भत्थिए चिंतिए जाव समुप्पज्जित्था— केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढति वा हायति वा?, तस्सवि य णं अयमट्ठे एवं खलु खंदया! मए दुविहे मरणे पण्णत्ते, तंजहा—बालमरणे य पंडियमरणे य, से किं तं बालमरणे?, २ दुवालसविहे प०, तं० वलयमरणे वसट्टमरणे अंतो-

मल्लमरणे वसमरणे गिरिपडणे तरुपडणे जल-प्पवेसे जलणप्प० विसभक्खणे सत्थोवाडणे वेहाणसे गिद्धपट्ठे ! इच्चेतेणं खंदया ! दुवालसविहेणं बाल-मरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं नेरइयभवग्गहणेहिं अप्पाणं संजोएइ तिरियमणुदेव० अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरि-यट्टइ, सेत्तं मरमाणे वड्ढइ २, सेत्तं बालमरणे। से किं तं पंडियमरणे ?, २. दुविहे प० तं०— पाओवगमणे य भत्तपच्चक्खाणे य। से किं त पाओवगमणे ?, २ दुविहे प० तं०—नीहारिमे य अनीहारिमे य नियमा अप्पडिकमे सेत्तं पाओवगमणे। से किं त भत्तपच्चक्खाणे ?, २ दुविहे प० त०—नीहारिमे य अनीहारिमे य नियमा सपडिक्कमे, सेत्तं भत्तपच्चक्खाणे। इच्चेतेणं खंदया ! दुविहेणं पंडियमरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं नेरइयभवग्गहणेहिं अप्पाणं विसंजोएइ जाव वीईवयति, सेत्तं मरमाणे हायइ, सेत्तं पंडिय-मरणे। इच्चेएणं खंदया ! दुविहेणं मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढइ वा हायति वा ॥

—श्री भगवती सूत्र २।१।९१

टीका– 'दव्वओ णं एगे लोए सअन्ते'त्ति पञ्चास्तिकायमयै-कद्रव्यत्वाल्लोकस्य सान्ताऽसौ, 'आयामविक्खंभेणं' ति आयामो—दैर्घ्यं विष्कम्भो—विस्तारः 'परिक्खेवेणं'ति परिधिना 'भुविसु य'त्ति अभवत् इत्यादिभिश्च पदैः पूर्वोक्तपदानामेव तात्पर्यमुक्तं 'धुवे' त्ति ध्रुवोऽचलत्वात्, स चानियतरूपोऽपि स्यादत आह—'णियए'त्ति नियत एकस्वरूपत्वात्, नियतरूपः कादाचित्कोऽपि स्यादत आह 'सासए'त्ति आह—'अक्खए'त्ति अक्षयोऽविनाशित्वात्, अयं च बहुतरप्रदेशापेक्षयाऽपि स्यादित्यत आह—'अव्वए'त्ति अव्ययप्रस्तप्रदेशानामव्ययत्वात्, अयं च द्रव्यतयाऽपि स्यादित्याह—'अवट्ठिए'त्ति अवस्थित पर्यायाणा-मनन्ततयाऽवस्थितत्वात्, किमुक्तं भवति ?– नित्य इति, 'वण्णपज्जव'त्ति वर्णविशेषा एकगुणकालत्वादयः, एवमन्येऽपि गुरुलघुपर्यवास्तद्विशेषा बादरस्कन्धानाम्, अगुरुलघुपर्यवा अमूर्त्ता सूक्ष्मस्कन्धानाममूर्त्तानां च, 'नाणपज्जव'त्ति ज्ञानपर्याया ज्ञानविशेषा बुद्धिकृता वाऽविभागपरिच्छेदाः, अनन्ता गुरुलघुपर्याया औदारिकादिशरीराण्याश्रित्य, इतरे तु कार्मणादिद्रव्याणि जीवस्वरूपं चाश्रित्येति। 'जेवि' य ते खंदया ! पुच्छे'त्ति अनेन समग्रं सिद्धिप्रश्नसूत्रमुपलक्षणत्वा-च्चोत्तरसूत्रांशश्च सूचितः तच्च द्वयमप्येवम्– 'जेवि य ते खंदया इमेयारूवे जाव किं सअंता सिद्धी अणंता वि य णं अयमट्ठे, एवं

खलु मए खंदया ! चउव्विहा, सिद्धी पण्णत्ता, तंजहा—दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओत्ति, दव्वओणं एगा सिद्धि'त्ति, इह सिद्धिर्यद्यपि परमार्थतः सकलकर्मक्षयरूपा सिद्धाधाराऽऽकाशदेशरूपा वा तथाऽपि सिद्धाधाराकाशदेशप्रत्यासन्नत्वेनपत्प्राग्भारा पृथिवी सिद्धिरुक्ता, 'किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं' ति किञ्चिन्न्यूनगव्यूतद्वयाधिकं द्वे योजनशते एकोनपञ्चाशदुत्तरे भवत इति। 'वलयमरणे'त्ति वलतो—बुभुक्षापरिगतत्वेन वलवलायमानस्य—संयमाद्वा भ्रश्यतो (यत्) मरणं तद्वलन्मरणं, तथा वशेन—इन्द्रियवशेन ऋतस्य—पीडितस्य दीपकलिकारूपावलिप्तचक्षुषः शलभस्येव यन्मरणं तद् वशार्तमरणं, तथाऽन्तःशल्यस्य द्रव्यतोऽनुद्धृततोमरादेः भावतः सातिचारस्य यन्मरणं तदन्तःशल्यमरणं, तथा तस्म भवाय मनुष्यादेः सतो मनुष्यादावेव बद्धायुषो यन्मरणं तत्तद्भवमरणं, इदं च नरतिरश्चामेवेति, 'सत्थोवाडणे'त्ति शस्त्रेण—क्षुरिकादिना अवपाटनं—विदारणं देहस्य यस्मिन्मरणे तच्छस्त्रावपाटनम्, 'वेहाणसे'त्ति विहायसि—आकाशे भवं वृक्षशाखाद्युद्बन्धनेन यत्तन्निरुक्तवशाद्वैहानसं, गिद्धपट्ठे'त्ति गृध्रैः पक्षिविशेषैर्गृध्रैर्वा—मांसलुब्धैः शृगालादिभिः स्पृष्टस्य यत्तद् गृध्रस्पृष्टं वा गृध्रैर्वा भक्षितस्य—स्पृष्टस्य यत्तद् गृध्रस्पृष्टम्। 'दुवालसविहेणं बालमरणेणं'ति उपलक्षणत्वादन्यातपि बालमरणान्तःपातिना मरणेन म्रियमाण इति वड्ढइ वड्ढइ'त्ति

संसारवर्द्धनेन भृशं वर्धते जीवः, इदं हि द्विर्वचनं भृशार्थे इति। 'पाओवगमणे'त्ति पादपस्येवोपगमनम—अस्पन्दतयाऽवस्थानं पादपोपगमनं, इदं च चतुर्विधाहारपरिहारनिष्पन्नमेव भवतीति। 'नीहारिमेय'त्ति निर्हारेण निर्वृत्तं यतन्निर्हारिमं प्रतिश्रये यो म्रियते तस्यैतत्, तत्कडेवरस्य निर्हरणात्, अनिर्हारिमं तु योऽटव्यां म्रियते इति। यच्चान्यत्रेह स्थाने इंगिनमरणमभिधीयते तद्भक्तप्रत्याख्यानस्यैव विशेष इति नेह भेदेन दर्शितमिति।

मूलम्—अह भंते! ओदणे कुम्मासे सुरा एए णं किंसरीराति वत्तव्वं सिया?, गोयमा! ओदणे कुम्मासे सुराए य जे घणे दव्वे एए णं पुव्वभावपन्नवणं पडुच्च वणस्सइजीवसरीरा तओ पच्छा सत्थातीया सत्थपरिणामिआ अगणिज्झामिआ अगणिज्झूसिया अगणिसेविया अगणिपरिणामिया अगणिजीवसरीरा वत्तव्वं सिया, सुराए य जे दवे एए णं पुव्वभावपन्नवणं पडुच्च आउजीवसरीरा, तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिकायसरीराति वत्तव्वं सिया। अहन्नं भंते! अए तंबे तउए सीसए उवले कसट्टिया एए णं किंसरीराइ वत्तव्वं सिया?, गोयमा! अए तंबे तउए सीसए उवले कसट्टिया,

एए णं पुव्वभावपन्नवणं पडुच्च पुढविजीवसरीर तओ पच्छा, सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीराति वत्तव्वं सिया। अहएणं भंते! अट्ठी अट्ठिज्झामे चम्मे चम्मज्झामे रोमे २ सिंगे २ खुरे २ नखे २ एते णं किंसरीराति वत्तव्वं सिया?, गोयमा! अट्ठी चम्मे रोमे सिंगे खुरे नहे एए णं तसपाण- जीवसरीरा अट्ठिज्झामे चम्मज्झामे रोमज्झामे सिंग० खुर० णहज्झामे एए णं पुव्वभावपण्ण- वणं पडुच्च तसपाणजीवसरीरा तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीवत्ति वत्तव्व सिया। अह भंते! इंगाले छारिए भुसे गोमए एस णं किंसरीरा वत्तव्वं सिया? गोयमा! इंगाले छारिए भुसे गोमए एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च एगिंदियजीवसरीरप्पओगपरिणमियावि जाव पंचिंदियजीवसरीरप्पओगपरिणामियावि तओ पच्छा सत्थातिया जाव अगणिजीवसरीराति वत्तव्व सिया॥

—श्री भगवती सूत्र ५।२।१८१॥

टीका—'अह' त्यादि, 'एए णं' ति एतानि णमित्यलंकारे 'किंसरीरा'त्ति केषां शरीराणि किंशरीराणि? 'पुराए य जे घणे'त्ति

मुरायां द्वे द्रव्ये स्यातां— घनद्रव्यं द्रवद्रव्यं च तत्र यद् घनद्रव्यं 'पुव्वभावपन्नवणं पडुच्च'त्ति अतीतपर्यायप्ररूपणामङ्गीकृत्य वनस्पतिशरीराणि, पूर्वं हि ओदनादयो वनस्पतयः, 'तओ पच्छ'त्ति वनस्पतिजीवशरीरत्वान्यत्वानन्तरमग्निजीवशरीराणीति वक्तव्यं स्यादिति सम्बन्धः, किम्भूतानि सन्ति ? इत्याह— 'सत्थातीय'त्ति शस्त्रेण——उदूखलमुशलयन्त्रकादिना करणभूतेनातीतानि—अतिक्रान्तानि पूर्वपर्यायमिति शस्त्रातीतानि 'सत्थपरिणामिय'त्ति शस्त्रेण परिणामितानि—कृतानि नवपर्यायाणि शस्त्रपरिणामितानि, ततश्च 'अगणिज्झामिय'त्ति वह्निना ध्यामितानि—श्यामीकृतानि स्ववर्णत्याजनात्, तथा 'अगणिझूसिय'त्ति अग्निना शोषितानि पूर्वस्वभावक्षपणात्, अग्निना सेवितानि वा 'जुषी प्रीतिसेवनयोः' इत्यस्य धातोः प्रयोगात्, 'अगणिपरिणामियाइं'त्ति संजाताग्निपरिणामानि उष्णयोगादिति, अथवा 'सत्थातीता' इत्यादौ शस्त्रमग्निरेव 'अगणिज्झामिया' इत्यादि तु तद् व्याख्यानमेवेति 'उक्खे'त्ति इह दग्धपाषाणः, 'कसट्टिय'त्ति क(षप)ट्टः, 'अट्ठिज्झामि'त्ति अस्थि च तद्ध्यामं च- अग्निना श्यामलीकृतम् —आपादितपर्यायान्तरमित्यर्थः, 'इंगाले' इत्यादि, 'अङ्गारः' निर्ज्वलितेन्धनम ; 'छारिए'त्ति क्षारकं—भस्म, 'भुसे'त्ति बुसं 'गोमय'त्ति छगणम् , इह च बुसगोमयौ भूतपर्यायानुवृत्त्या दग्धावस्थौ ग्राह्यौ अन्यथाऽग्निध्यामितादिविशेषणानामनुपपत्तिः स्यादिति । एते

पूर्वभावप्रज्ञापनां प्रतीत्यैकेन्द्रियजीवैः शरीरतया प्रयोगेण—स्वव्यापारेण परिणामिता ये ते तथा एकेन्द्रियशरीराणीत्यर्थः, 'अपि समुच्चये, यावत्करणाद् द्वीन्द्रियजीवशरीरपरिणामिता अपीत्यादि दृश्यं, द्वीन्द्रियादिजीवशरीरपरिणतत्वं च यथासम्भवमेव न तु सर्वपदेष्विति, तत्र पूर्वमङ्गारो भस्म चैकेन्द्रिया दशरीररूपं भवति, एकेन्द्रियादिशरीराणामिन्धनत्वात्, बुसं तु यवगोधूमहरितावस्थायामेकेन्द्रियशरीरम्, गोमयस्तु तृणाद्यवस्थायामेकेन्द्रियशरीरम्, द्वीन्द्रियादीनां तु गवादिभिर्भक्षणे द्वीन्द्रियादिशरीरमिति ॥

मूलम्—अन्नउत्थिया णं भंते ! एवमातिक्खंति जाव परूवेंति सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता एवंभूयं वेदणं वेदेंति से कहमेयं भंते! एवं ?, गोयमा ! जण्णं ते अन्नउत्थिया एवमातिक्खंति जाव वेदेंति जे ते एवमाहंसु मिच्छा ते एवमाहंसु, अहं पुण गोयमा ! एवमातिक्खामि जाव परूवेमि अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एवंभूयं वेदणं वेदेंति अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता अनेवंभूयं वेदणं वेदेंति, से केणट्ठेणं अत्थेगतिया ? तं चेव उच्चारेयव्वं, गोयमा ! जे णं पाणा भूया जीवा सत्ता जहा कडा कम्मा तहा वेदणं वेदेंति ते णं

पाणा भूया जीवा सत्ता एवंभूयं वेदणं वेदेंति, जे णं पाणा भूया जीवा सत्ता जहा कडा कम्मा नो तहा वेदणं वेदेंति तेणं पाणा भूया जीवा सत्ता अनेवंभूयं वेदणं वेदेंति से तेणट्ठेणं तहेव। नेरइया णं भंते! किं एवंभूयं वेदणं वेदेंति अनेवंभूयं वेदणं वेदेंति?, गोयमा! नेरइया णं एवंभूयं वेदणं वेदेंति अनेवंभूयंपि वेदणं वेदेंति। से केणट्ठेणं तं चेव?, गोयमा! जे णं नेरइया जहा कडा कम्मा तहा वेयणं वेदेंति ते णं नेरइया एवंभूयं वेदणं वेदेंति जे णं नेरतिया जहा कडा कम्मा णो तहा वेदणं वेदेंति ते णं नेरइया, अनेवंभूयं वेदणं वेदेंति, से तेणट्ठेणं, एवं जाव वेमाणिया संसारमंडलं नेयव्वं ॥

—श्री भगवती सूत्र ५।५।२०७ ॥

टीका—तत्र च एवंभूयं वेयणंति यथाविधं कर्म निबद्धमेवप्रकारतयोत्पन्नां वेदनां असातादिकर्मोदयं वेदयंति अनुभवन्ति, मिथ्यात्वं चैतद्वादिनामेवं—न हि यथा बद्धं तथैव सर्वं कर्मानुभूयते, आयुः कर्मणः व्यभिचारात्, तथाहि—दीर्घकालानुभवनीयस्याप्यायुः कर्मणोऽल्पीयसाऽपि कालेनानुभवो भवति, कथमन्यथाऽपमृत्युव्यपदेशः सर्वजनप्रसिद्धः स्यात्?, कथं वा

महासंयुगादौ जीवलक्षाणामप्येकदैव मृत्युरुपपद्यते नेति ?, 'अणेवं-भूयंपि'त्ति यथा बद्धं कर्म नैवंभूता अनेवंभूता अतस्तां, श्रूयन्ते ह्यागमे कर्मणः स्थितिविघातरसघातादय इति, 'एवं जाव वेमाणिया संसारमंडलं नेयव्वं'ति 'एवं' उक्तक्रमेण वैमानिकावसानं संसारिजीवचक्रवालं नेतव्यमित्यर्थः ॥

मूलम्–जीवा णं भंते ! किं महावेयणा महानिज्जरा १ महा वेदणा अप्प निज्जरा २ अप्पवेदणा महानिज्जरा ३ अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा ४ ? गोयमा ! अत्थेगइया जीवा महावेदणा महानिज्जरा १ अत्थेगतिया जीवा महावेदणा अप्पनिज्जरा २ अत्थेगतिया जीवा अप्पवेदणा महानिज्जरा ३ अत्थेगतिया जीवा अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा ४ । से केणट्ठेणं०?, गोयमा ! पडिमापडिवन्नए अणगारे महावेदणे महानिज्जरे, छट्ठसत्तमासु पुढवीसु नेरइया महा-वेदणा अप्पनिज्जरा, सेलेसिं पडिवन्नए अणगारे अप्पवेदणे महानिज्जरे, अणुत्तरोववाइया देवा अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा, सेवं भंते २ त्ति ॥

—श्री भगवती सूत्र ६।१।२३१।

मूलम्–वत्थस्स णं भंते ! पोग्गलोवचए किं सादीए सपज्जवसिए १ सादिए अपज्जवसिते २ अणादीए

सपज्ज० ३ अणा० अपज्ज० ४ ?, गोयमा ! वत्थस्स णं पोग्गलोवचए सादीए सपज्जवसिए नो सादीए अप० नो अणा० स० नो अणा० अप०। जहा णं भंते! वत्थस्स पोग्गलोवचए सादीए सपज्ज० नो सादीए अप० नो अणा० सप० नो अणा० अप० तहा णं जीवाणं कम्मोवचए पुच्छा, गोयमा ! अत्थेगतियाण जीवाणं कम्मोवचए सादीए सपज्जवसिए अत्थे० अणादीए सपज्जवसिए अत्थे० अणादीए अपज्जवसिए नो चेव णं जीवाणं कम्मोवचए सादीए अप०। से केण० ?, गोयमा! ईरियावहियाबंधयस्स कम्मोवचए सादीए सप० भवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणादीए सपज्जवसिए अभवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणादीए अपज्जवसिए, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति अत्थे० जीवाणं कम्मोवचए सादीए नो चेव णं जीवाणं कम्मोवचए सादीए अपज्जवसिए, वत्थे णं भंते ! किं सादीए सपज्जवसिए चउभंगा ?, गोयमा ! वत्थे सादीए सपज्जवसिए अवसेसा तिन्निवि पडिसेहयव्वा। जहा णं भंते ! वत्थे सादीए सपज्जवसिए नो सादीए अपज्ज० नो अणादीए सप० नो

अनादीए अपज्जवसिए तहा णं जीवाणं किं सादीया सपज्जवसिया ?, चउभंगो पुच्छा, गोयमा ! अत्थेगतिया सादीया सपज्जवसिया चत्तारिवि भाणियव्वा । से केणट्ठेणं० ?, गोयमा ! नेरतिया तिरिक्खजोणिया मनुस्सा देवा गतिरागतिं पडुच्च सादीया सपज्जवसिया सिद्धि गतिं पडुच्च सादीया अपज्जवसिया, भवसिद्धिया लद्धिं पडुच्च अणादीया सपज्जवसिया अभवसिद्धिया संसारं पडुच्च अणादीया अपज्जवसिया, से तेणट्ठेणं० ॥

श्री भगवती सूत्र ६।३।२३४ ॥

टीका—'सादिद्वारे 'ईरियावहियबंधए' इत्यादि, ईर्यापथो—गमनमार्गस्तत्रभवमैर्यापथिकं, केवलयोगप्रत्ययं कर्मेत्यर्थः तद्बंधकस्योपशान्तमोहस्य क्षीणमोहस्य सयोगिकेवलिनश्चेत्यर्थः, ऐर्यापथिककर्मणो हि अबद्धपूर्वस्य बन्धनात् सादित्वं, अयोगि-अवस्थायां श्रेणिप्रतिपाते वाऽबन्धनात् सपर्यवसितत्वं, 'गतिरागइं पडुच्च'त्ति नारकादिगतौ गमनमाश्रित्य सादयः आगमनमाश्रित्य सपर्यवसिता इत्यर्थः 'सिद्धा गइं पडुच्च साइया अपज्जवसिय'त्ति, इहाद्दोषपरिहारावेवम्—"साईअपज्जवसिया सिद्धा न य नाम तीयकालंमि । आसि कयाइवि सुण्णा सिद्धी सिद्धेहिं सिद्धंते ॥१॥ सव्वं साइ सरीरं न य नामादि मय देहसब्भावो । कालाणाइ-

नाणाओ जहा व [illegible] दियाईणं ॥ २ ॥ सव्वो साई सिद्धो न याइमो विज्जई तहा तं च । सिद्धी सिद्धा सया निद्दिट्ठा रोह-पुच्छाए ॥ ३ ॥ इति. [illegible] च [illegible] तत्त्व सिद्धानादित्वमिष्यते. अतः सिद्धी सिद्धा चेत्यादीनि [illegible] लब्धिसत्वादि. सर्वासिद्धिकानां भव्य [illegible] सिद्धलोकेऽपेतानिकृत्या [illegible] सपर्यवसिता चेति ।

सूत्र—समणोवासगस्स णं भंते ! पुव्वामेव तसपाणसमारंभे पच्चक्खाए भवति पुढविसमारंभे अपच्चक्खाए भवइ से य पुढविं खणमाणे अण्णयरं तसं पाणं विहिंसेज्जा से णं भंते ! तं वयं अतिचरति ?, णो तिणट्ठे समट्ठे, नो खलु से तस्स अतिवायाए आउट्टति ॥ समणोवासयस्स णं भंते ! पुव्वामेव वणस्सइसमारंभे पच्चक्खाए से य पुढविं खणमाणे अन्नयरस्स रुक्खस्स मूलं छिंदेज्जा से णं भंते तं वयं अतिचरति ?, णो तिणट्ठे समट्ठे, नो खलु तस्स अइवायाए आउट्टति ॥

—श्री भगवती सूत्र ॥ [illegible] ॥

टीका—तत्र च 'तसपाणसमारंभे'त्ति, त्रसवधः 'नो खलु से तस्स अतिवायाए आउट्टइ'त्ति न खलु असौ 'तस्स' त्रसप्राणस्य 'अतिपाताय' वधाय 'आवर्त्तते' प्रवर्त्तते इति [illegible] संकल्पवधोऽस्य,

सङ्कल्पवधादेव च निवृत्तोऽस्मो. न चैप तस्य संपन्न इति नासावतिचरति व्रतं ॥

मूलम्—से गूणं भंते ! सव्वपाणेहिं सव्वजीवेहिं सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणस्स सुपच्चक्खायं भवति दुपच्चक्खायं भवति ?, गोयमा ! जस्स णं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वयमाणस्स णो एवं अभिसमन्नागयं भवति इमे जीवा इमे अजीवा इमे तसा इमे थावरा तस्स णं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणस्स णो सुपच्चक्खायं भवति दुपच्चक्खायं भवति एवं खलु से दुपच्चक्खाई सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणो नो सच्चं भासं भासइ मोसं भासं भासइ, एवं खलु से मुसावाई सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं तिविहं तिविहेणं असंजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे सकिरिए असंवुडे एगंतदंडे एगंतबाले यावि भवति, जस्स णं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणस्स एवं अभिसमन्नागयं भवइ—इमे जीवा इमे अजीवा इमे तसा इमे थावरा तस्स णं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणस्स सुपच्चक्खायं

भवति नो दुपच्चक्खाय भवति, एवं खलु से सुपच्च-
क्खाई सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वयमाणे सच्चं भासं भासइ नो मोसं भासं भासइ, एवं खलु से सच्चवादी सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं तिविहं तिविहेणं संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपाव-कम्मे अकिरिए संवुडे एगंतपंडिए यावि भवति, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ जाव सिय दुपच्चक्खायं भवति ॥

—श्री भगवती सूत्र ७।२।२७१ ॥

टीका—'से नूण'मित्यादि, 'सिय सुपच्चक्खायं सिय दुपच्चक्खायं' इति प्रतिपाद्य यत्प्रथमं दुष्प्रत्याख्यानत्ववर्णनं कृतं तद्यथासंख्यन्यायत्यागेन यथाऽऽसन्ननान्यायमङ्गीकृत्येति द्रष्टव्यं, 'नो एवं अभिसमन्नागयं भवति'त्ति 'नो' नैव 'एवं' इति वक्ष्यमाण प्रकारमभिसमन्वागतं—अवगतं स्यात, 'नो सुपच्चक्खायं भवति'त्ति ज्ञानाभावेन यथावदपरिपालनात् सुप्रत्याख्यानत्वाभावः, 'सव्व-पाणेहिं'ति सर्वप्राणेषु ४ 'तिविहं'ति त्रिविधं कृतकारितानुमतिभेद-भिन्नं योगमाश्रित्य 'तिविहेणं'ति त्रिविधेन मनोवाक्कायलक्षणेन करणेन 'असंजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे'त्ति संयतो—वधा-दिपरिहारे प्रयतः विरतो—वधादेर्निवृत्तः प्रतिहतानि—अतीतकाल-सम्बन्धीनि निन्दातः प्रत्याख्यातानि चानागतप्रत्याख्यानेन पापानि

कर्माणि येन सः तथा, ततः संयतादिपदानां कर्मधारयस्ततस्तन्नि-षेधात् असं...प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा, अत एव 'सकि-रिए'ति का...क्रियादिक्रियायुक्तः सकर्मबन्धनो वा...व 'असंवुडे'त्ति असंवृताश्र...अत एव 'एगंतदंडे'त्ति एकान्तेन—सर्वथैव परान् दण्डयतीत्येकान्तदण्डः, अत एव 'एकान्तबालः' सर्वथा बालि-शोऽज्ञ इत्यर्थः ॥

मूलम् जीवा णं भंते ? किं सासया असासया ? गोयमा ! जीवा सिय सासया सिय असासया । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–जीवा सिय सासया सिय असासया ?, गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया भाव-ट्ठयाए असासया, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–जाव सिय असासया । नेरइया णं भंते ! किं सासया असासया ?, एवं जहा जीवा तहा नेरइयावि, एवं जाव वेमाणिया जाव सिय सासया सिय असासया । सेवं भंते ! सेवं भंते ! ॥

—श्री भगवती सूत्र ॥७।२।२७४॥

टीका–'दव्वट्ठयाए'त्ति जीवद्रव्यत्वेनेत्यर्थः । 'भावट्ठयाए'त्ति नारकादिपर्यायत्वेनेत्यर्थः ॥

मूलम्–नेरइया णं भंते ! किं सासया असासया ?, गोयमा ! सिय सासया सिय असासया, से केणट्ठेणं भंते !

एवं वुच्चइ नेरइया सिय सासया, सिय असासया?, गोयमा! अव्वोच्छित्तिणयट्ठयाए सासया वोच्छित्तिणयट्ठयाए असासया, से तेणट्ठेणं जाव सिय सासया सिय असासया, एवं जाव वेमाणिया जाव सिय असासया। सेवं भंते! सेवं भंते त्ति॥

—श्री भगवती सूत्र ॥७।३।२८०॥

टीका—'अव्वोच्छित्तिणयट्ठयाए'त्ति अव्यवच्छित्तिप्रधानो नयोऽव्यवच्छित्तिनयस्तस्यार्थो — द्रव्यमव्यवच्छित्तिनयार्थस्तद् भावस्तत्ता तयाऽव्यवच्छित्तिनयार्थतया द्रव्यमाश्रित्य शाश्वता इत्यर्थः, 'वोच्छित्तिणयट्ठयाए'त्ति व्यवच्छित्तिप्रधानो यो नयस्तस्य योऽर्थः—पर्यायलक्षणस्तस्य यो भावः सा व्यवच्छित्तिनयार्थता तया २ पर्यायानाश्रित्य अशाश्वता नारका इति॥

सूत्रम्—जीवेणं भंते! किं पोग्गली पोग्गले?, गोयमा! जीवे पोग्गलीवि पोग्गलेवि, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जीवे पोग्गलीवि पोग्गलेवि?, गोयमा! से जहा नामए छत्तेणं छत्ती दंडेणं दंडी घडेणं घडी पडेणं पडी करेणं करी एवामेव गोयमा! जीवेवि सोइंदियचक्खिंदियघाणिंदियजिब्भिंदियफासिंदियाइं पडुच्च पोग्गली, जीवं पडुच्च पोग्गले, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ जीवे पोग्गलीवि पोग्गलेवि।

नेरइए णं भंते ! किं पोग्गली०?, एवं चेव, एवं जाव वेमाणिया नवरं जस्स जइ इंदियाइं, तस्स तइवि भाणियव्वाइं। सिद्धे णं भंते ! किं पोग्गली पोग्गले ?, गोयमा ! नो पोग्गली पोग्गले, से केण-ट्ठेणं भंते ? एवं वुच्चइ जाव पोग्गले ?, गोयमा ! जीवं पडुच्च, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ सिद्धे नो पोग्गली पोग्गले। सेवं भंते ! सेवं भंते त्ति ॥

—श्री भगवती सूत्र ८।१०।३६१ ॥

टीका—'पोग्गलीवि'त्ति पुद्गलाः—श्रोत्रादिरूपा विद्यन्ते। यस्यासौ पुद्गली, 'पुग्गलेवि'त्ति पुद्गल इति संज्ञा जीवस्य। ततस्तद्योगात् पुद्गल इति। एतदेव दर्शयन्नाह 'से केणट्ठेणं' मित्यादि ॥

मूलम्—तए णं से जमाली अणगारे अन्नया कयावि ताओ रोगायंकाओ विप्पमुक्के हट्ठे तुट्ठे जाए अरोए बलियसरीरे सावत्थीओ नयरीओ कोट्टयाओ चेइ-याओ पडिनिक्खमइ २ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव चंपानयरी जेणेव पुन्नभद्दे चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूर-सामंते ठिच्चा समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—

जहा णं देवाणुप्पियाणं बहवे अंतेवासी समणा निग्गंथा छउमत्था भवेत्ता छउमत्थावक्कमणेणं अवक्कंता णो खलु अहं तहा छउमत्थे भवित्ता छउमत्थावक्कमणेणं अवक्कमिए, अहन्नं उप्पन्नणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली भवित्ता केवलिअवक्कमणेणं अवक्कमिए, तए णं भगवं गोयमे जमालिं अणगारं एवं वयासी- णो खलु जमाली !, केवलिस्स णाणे वा दंसणे वा सेलंसि वा थंभंसि वा थूभंसि वा आवरिज्जइ वा णिवारिज्जइ वा, जइ णं तुमं जमाली ! उप्पन्नणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली भवित्ता केवलिअवक्कमणेण अवक्कंते तो णं इमाइं दो वागरणाइं वागरेहि सासए लोए जमाली ! असासए लोए जमाली ?, सासए जीवे जमाली ! असासए जीवे जमाली ?, तए णं से जमाली अणगारे भगवया गोयमेणं एवं वुत्ते समाणे संकिए कंखिए जाव कलुससमावन्ने जाए यावि होत्था, णो संचाएति भगवओ गोयमस्स किंचिवि पमोक्खमाइक्खित्तए तुसिणीए संचिट्ठइ जमालीति समणे भगवं महावीरे जमालिं अणगारं एवं वयासी- अत्थि णं जमाली मम बहवे अंतेवासी समणा

निग्गंथा छउमत्था जे णं एयं वागरणं वागरित्तए, जहा णं अहं, नो चेव णं एयप्पगारं भासं भासित्तए, जहा णं तुमं; सासए लोए जमाली ! जन्न कयावि णासि ण कयावि ण भवति ण कदावि ण भविस्सइ भुविं च भवइ य भविस्सइ य धुवे णितिए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे, असासए लोए जमाली ! जओ ओसप्पिणी भवित्ता उस्सप्पिणी भवइ उस्सप्पिणी भवित्ता ओसप्पिणी भवइ, सासए जीवे जमाली ! जं न कयाइ णासि जाव णिच्चे असासए जीवे जमाली जन्नं नेरइए भवित्ता तिरिक्ख-जोणिए भवइ तिरिक्खजोणिए भवित्ता मणुस्से भवइ मणुस्से भवित्ता देवे भवइ ॥

—श्री भगवती सूत्र ६।३३।३८७ ॥

टीका न कयाइ नासीत्यादि तत्र न कदाचिन्नासीदनादित्वात्, न कदाचिन्न भविष्यति अपर्यवसितत्वात्, किं तर्हि ?, 'भुविं चे'त्यादि ततश्चायं त्रिकालभावित्वेनाचलत्वादेव शाश्वतः प्रतिक्षणमप्यसत्त्वस्याभावात् शाश्वतत्वादेव 'अक्षयः' निर्विनाशः, अक्षयत्वादेवाव्ययः प्रदेशापेक्षया, नित्यस्तदुभयापेक्षया, एकार्था वैते शब्दाः ॥

मूलम्—सुत्तत्तं भंते ! साहू, जागरियत्तं साहू ? जयंती !

अत्थेगइयाणं जीवाणं सुत्तत्तं साहू अत्थेगतियाणं जीवाणं जागरियत्तं साहू, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ अत्थेगइयाणं जाव साहू ?, जयंती ! जे इमे जीवा अहम्मिया अहम्माणुया अहम्मिट्ठा अहम्मक्खाई अहम्मपलोई अहम्मपलज्जमाणा अहम्मसमुदायारा अहम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति एएसि णं जीवाणं सुत्तत्तं साहू, एए णं जीवा सुत्ता समाणा नो बहूणं पाणभूयजीवसत्ताणं दुक्खणयाए सोयणयाए जाव परियावणयाए वट्टंति, एए णं जीवा सुत्ता समाणा अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा नो बहूहिं अहम्मियाहिं संजोयणाहिं संजोएत्तारो भवंति, एएसिं जीवाणं सुत्तत्तं साहू, जयंती ! जे इमे जीवा धम्मिया धम्माणुया जाव धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति एएसिणं जीवाणं जागरियत्तं साहू, एए णं जीवा जागरा समाणा बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं अदुक्खणयाए जाव अपरियावणियाए वट्टंति, ते णं जीवा जागरमाणा अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा बहूहिं धम्मियाहिं संजोयणाहिं संजोएत्तारो भवंति, एए णं जीवा जागरमाणा धम्मजागरियाए अप्पाणं जागरइत्तारो भवंति,

एएसि णं जीवाणं जागरियत्तं साहू, से तेणट्ठेणं जयंती! एवं वुच्चइ अत्थेगइयाणं जीवाणं सुत्तत्तं अत्थेगइयाणं जीवाणं जागरियत्तं साहू ॥ बलियत्तं भंते ! साहू दुब्बलियत्तं साहू ?, जयंती ! अत्थेगइयाणं जीवाणं बलियत्तं साहू अत्थेगइयाणं जीवाणं दुब्बलियत्तं साहू, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जाव साहू ?, जयंती ! जे इमे जीवा अहम्मिया जाव विहरंति एएसि णं जीवाणं दुब्बलियत्तं साहू, एए णं जीवा एवं जहा सुत्तस्स तहा दुब्बलियस्स वत्तव्या भाणियव्वा, बलियस्स जहा जागरस्स तहा भाणियव्वं जाव संजोएत्तारो भवंति, एएसि णं जीवाणं बलियत्तं साहू, से तेणट्ठेणं जयंति ! एवं वुच्चइ तं चेव साहू । दक्खत्तं भंते ! साहू आलसियत्तं साहू ?, जयंती ! अत्थेगतियाणं जीवाणं दक्खत्तं साहू अत्थेगतियाणं जीवाणं आलसियत्तं साहू, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ तं चेव जाव साहू ?, जयंती ! जे इमे जीवा अहम्मिया जाव विहरंति एएसि णं जीवाणं आलसियत्तं साहू, एए णं जीवा आलसा समाणा नो बहूणं जहा सुत्ता आलसा भाणियव्वा, जहा

जागरा तहा दक्खा भाणियव्वा जाव संजोएत्तारो भवंति, एए णं जीवा दक्खा समाणा बहूहिं आयरियवेयावच्चेहिं जाव उवज्झाय० थेर० तवस्सि० गिलाणवेया० सेहवे० कुलवेया० गणवेया० संघवेया० साहम्मियवेयावच्चेहिं अत्ताणं संजोएत्तारो भवंति, एएसि णं जीवाणं दक्खत्तं साहू, से तेणट्ठेणं तं चेव जाव साहू ॥

—श्री भगवती सूत्र १२।२।४४३॥

टीका—तत्र च 'सुत्तत्तं'त्ति निद्रावशत्वं 'जागरियत्तं'त्ति जागरणं जागरः सोऽस्यास्तीति जागरिकस्तद्भावो जागरिकत्वम्, 'अहम्मिय'त्ति धर्मेण—श्रुतचारित्ररूपेण चरन्तीति धार्मिकास्तन्निषेधादधार्मिकाः, कुत एतदेवमित्यत आह—'अहम्माणुया' धर्म—श्रुतरूपमनुगच्छन्तीति धर्मानुगास्तन्निषेधादधर्मानुगाः, कुतः एतदेवमित्यत आह—'अहम्मिट्ठा' धर्मः—श्रुतरूप एवेष्टो—वल्लभः पूजितो वा येषां ते धर्मेष्टाः धर्मिणां वेष्टा अतिशयेन वा धर्मिणो धर्मिष्ठास्तन्निषेधादधर्मिष्ठा अधर्मेष्टा अधर्म्मिष्ठा वा, अत एव 'अहम्मक्खाई' न धर्ममाख्यान्तीत्येवंशीला अधर्माख्यायिनः अथवा न धर्मात् ख्यातिर्येषां ते अधर्मख्यातयः, 'अहम्मपलोइ' ति न धर्ममुपादेयतया प्रलोकयन्ति ये तेऽधर्मप्रलोकिनः, 'अहम्मपलज्जण'त्ति न धर्मे प्ररज्यन्ते—आसजन्ति ये तेऽधर्म-

प्ररञ्जना, एवंच 'अहम्मसमुदाचार'त्ति न धर्मरूपः—चारित्रात्मकः समुदाचारः—समाचारः सप्रमोदो वाऽऽचारो येषां ते तथा, अत एव 'अहम्मेण चेवे'त्यादि, 'अधर्मेण' चारित्रश्रुतविरुद्ध-रूपेण 'वृत्तिं' जीविकां 'कल्पयन्तः' कुर्वाणा इति॥ अनन्तरं सुप्रजागरतां साधुत्वं प्ररूपितम् अथ दुर्बलादीनां तथैव तदेव प्ररूपयन् सूत्रद्वयमाह—'बलियत्तं'ति बलमस्यास्तीति बलिकस्तद्-भावो बलिकत्वं 'दुब्बलियत्तं'ति, दुष्टं बलमस्यास्तीति दुर्बलि-कस्तद्भावो दुर्बलिकत्वं॥

मूलम्—नेरइयाणं भंते! कतिवन्ना जाव कतिफासा पन्नत्ता?, गोयमा! वेउव्वियतेयाइं पडुच्च पंचवन्ना पंचरसा दुग्गंधा अट्ठफासा पण्णत्ता, कम्मगं पडुच्च पंचवन्ना पंचरसा दुगंधा चउफासा पण्णत्ता, जीवं पडुच्च अवन्ना जाव अफासा पण्णत्ता, एवं जाव थणिय०, पुढविकाइयपुच्छा, गोयमा! ओरालियतेयगाइं पडुच्च पंचवन्ना जाव अट्ठफासा पण्णत्ता, कम्मगं पडुच्च जहा नेर०, जीवं पडुच्च तहेव, एवं जाव चउरिंदि०, नवरं वाउक्काइया ओरा० वेउ० तेयगाइं पडुच्च पंचवन्ना जाव अट्ठफासा पण्णत्ता, सेसं जहा नेरइयाणं, पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा वाउक्काइया, मणुस्साणं पुच्छा ओरालियवेउव्विय-

आहारगतेयगाइं पडुच्च पंचवन्ना जाव अट्ठ-फासा पण्णत्ता, कम्मगं जीवं च पडुच्च जहा नेर०, वाणमंतरजोइसियवेमाणिया जहा नेर०, धम्मत्थिकाए जाव पोग्गल० एए सव्वे अवन्ना, नवरं पोग्ग० पंचवन्ने पंचरसे दुगंधे अट्ठफासे पण्णत्ते, णाणावरणिज्जे जाव अंतराइए एयाणि चउफासाणि. कण्हलेसा णं भंते ! कइवन्ना० ?, पुच्छा दव्वलेसं पडुच्च पंचवन्ना जाव अट्ठफासा पण्णत्ता, भावलेसं पडुच्च अवन्ना ४, एवं जाव सुक्कलेसा, सम्मदिट्ठि ३ चक्खुदंसणे ४ आभि-णिबोहियणाणे जाव विभंगणाणे आहारसन्ना जाव परिग्गहसन्ना एयाणि कम्मगसरीरे चउफासे, मणजोगे वयजोगे य चउफासे, कायजोगे अट्ठ-फासे, सागारोवओगे य अणागारोवओगे य अवन्ना। सव्वदव्वा णं भंते ! कतिवन्ना ?, पुच्छा, गोयमा ! अत्थेगतिया सव्वदव्वा पंचवन्ना जाव अट्ठफासा पण्णत्ता अत्थेगतिया सव्वदव्वा पंचवन्ना चउ-फासा पण्ण। अत्थेगतिया सव्वदव्वा एगगंधा एगवण्णा एगरसा दुफासा पन्नत्ता अत्थेगतिया सव्वदव्वा अवन्ना जाव अफासा पन्नत्ता, एवं

सव्वपएसावि सव्वपज्जवावि, तीयद्धा अवन्ना जाव अफासा पण्णत्ता, एवं अणागयद्धावि, एवं सव्वद्धावि ॥

—श्री भगवती सूत्र १२।५।४५०॥

टीका—'वेउव्वियतेयाइं पडुच्च'त्ति वैक्रियतैजसशरीरे हि बादरपरिणामपुद्गलरूपे ततो बादरत्वात्तयोर्नारकाणामष्टस्पर्शत्वं, 'कम्मगं पडुच्च'त्ति कार्म्मणं हि सूक्ष्मपरिणामपुद्गलरूपमतश्चतुःस्पर्शं, ते च शीतोष्णस्निग्धरूक्षाः 'धम्मत्थिकाए' इह यावत्करणादेवं दृश्यम्—'अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए आवलिया मुहुत्ते' इत्यादि, 'दव्वलेसं पडुच्च'त्ति इह द्रव्यलेश्यावर्णाः 'भावलेसं पडुच्च'त्ति भावलेश्या—आन्तरः परिणामः, इह च कृष्णलेश्यादीनि परिग्रहसंज्ञाऽवसानानि अवर्णादीनि जीवपरिणामत्वात्, औदारिकादीनि चत्वारि शरीराणि पंचवर्णादिविशेषणानि अष्टस्पर्शानि च बादरपरिणामपुद्गलरूपत्वात्, सर्वत्र च चतुःस्पर्शत्वे सूक्ष्मपरिणामः कारणं अष्टस्पर्शत्वे च बादरपरिणामः कारणं वाच्यमिति, 'सव्वदव्व'त्ति सर्वद्रव्याणि धर्मास्तिकायादीनि 'अत्थेगइया सव्वदव्वा पंचवन्ने' त्यादि बादरपुद्गलद्रव्याणि प्रतीत्योक्तं, सर्वद्रव्याणां मध्ये कानिचित्पञ्चवर्णादीनीति भावार्थः 'चउफासा' इत्येतच्च पुद्गलद्रव्याण्येव सूक्ष्माणि प्रतीत्योक्तं 'एगगंधे' त्यादि च परमाण्वादिद्रव्याणि प्रतीत्योक्तं, यदाह परमाणुद्रव्यमाश्रित्य—"कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः । एकरसवर्णगन्धो द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च ॥१॥" इति, स्पर्शद्वयं च सूक्ष्मसम्बन्धिनां

चतुर्णां स्पर्शानामन्यतरदविरुद्ध भवति, तथाहि—स्निग्धो गुरुलक्षणं स्निग्धशीतलक्षणं वा रुक्षशीतलक्षणं रुक्षो गुरुलक्षणं वेति 'अवण्णे' त्यादि च धर्मास्तिकायादिद्रव्याण्याश्रित्योक्तं.द्रव्याश्रितत्वात्प्रदेशपर्यवाणां द्रव्यसूत्रानन्तरं तत्सूत्रं. तत्र च प्रदेशा—द्रव्यस्य निर्विभागा अंशाः पर्यवास्तु धर्माः ते चैवंकरणादेवं वाच्याः—'सव्वपएसा णं भंते! कइवण्णा ? पुच्छा, गोयमा ! अत्थेगइया सव्वपएसा पंचवन्ना जाव अट्ठफासा इत्यादि। एवं च पर्यवसूत्रमपि, इह च मूर्त्तद्रव्याणां प्रदेशाः पर्यवाश्च मूर्त्तद्रव्यवत् पञ्चवर्णादयः अमूर्त्तद्रव्याणां चामूर्त्तद्रव्यवदवर्णादयः इति। अतीताद्धादित्रयं चामूर्त्तत्वादवर्णादिकम् ॥

मूलम्–आया भंते! रयणप्पभापुढवी अन्ना रयणप्पभा पुढवी ? गोयमा! रयणप्पभा सिय आया सिय नो आया सिय अवत्तव्वं आयाति य नो आयाइ य, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ रयणप्पभापुढवी सिय आया सिय नो आया, सिय अवत्तव्वं आतातिय नो आतातिय ?, गोयमा! अप्पणो आदिट्ठे आया, परस्स आदिट्ठे नो आया तदुभयस्स आदिट्ठे अवत्तव्वं, रयणप्पभा पुढवी आयातिय नो आयातिय, से तेणट्ठेणं तं चेव जाव नो आयातिय। आया भंते! सक्करप्पभा पुढवी जहा रयणप्पभा

पुढवी तहा सक्करप्पभाएवि एवं जाव अहे सत्तमा। आया भंते! सोहम्मकप्पे पुच्छा, गोयमा! सोहम्मे कप्पे सिय आया सिय नो आया जाव नो आयाति य, से केणट्ठेणं भंते! जाव नो आयातिय ?, गोयमा! अप्पणो आइट्ठे आया परस्स आइट्ठे नो आया तदुभयस्स आइट्ठे अवत्तव्वं आताति य नो आताति य, से तेणट्ठेणं तं चेव जाव नो आयाति य, एवं जाव अच्चुए कप्पे। आया भंते! गेविज्जविमाणे अन्ने गेविज्जविमाणे एवं जहा रयणप्पभा तहेव, एवं अणुत्तरविमाणावि, एवं ईसिपब्भारावि। आया भंते! परमाणुपोग्गले अन्ने परमाणुपोग्गले? एवं जहा सोहम्मे कप्पे तहा परमाणुपोग्गलेवि भाणियव्वे॥ आया भंते! दुपए-सिए खंधे अन्ने दुपएसिए खंधे ?, गोयमा! दुपए-सिए खंधे सिय आया १ सिय नो आया २ सिय अव्वत्तव्वं आयाइ य नो आयातिय ३ सिय आया य नो आया य ४ सिय आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य ५ सिय नो आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य ६, से केणट्ठेणं भंते! एवं तं चेव जाव नो आयाति य अवत्तव्वं आयाति

य नो आयाति य गोयमा ! अप्पणो आदिट्ठे आया
१ परस्स आदिट्ठे नो आया २ तदुभयस्स आदिट्ठे
अवत्तव्वं दुपएसिए खंध अयातिय नो आयाति य ३
देसे आदिट्ठे सब्भापज्जवे देसे आादिट्ठे असब्भा-
वपज्जवे दुप्पएसिए खंधे आया य नो आया य
४ देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे
तदुभयपज्जवे दुपएसिए खधे आया य अवत्तव्वं
आयाइ य नो आयाइ य ५ देसे आदिट्ठे असब्भा-
वपज्जवे देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे दुपएसिए
खंधे नो आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति
य ६ से तेणट्ठेणं तं चेव जाव नो आयाति य ॥
आया भंते ! तिपएसिए खंधे अन्ने तिपएसिए
खंधे ?, गोयमा ! तिपएसिए खंधे सिय आया १
सिय नो आया २ सिय अवत्तव्वं आयाति य नो
आयाति य ३ सिय आया य नो आया य ४
सिय आया य नो आयाओ य ५ सिय आयाउ य
नो आया य ६ सिय आया य अवत्तव्वं आयाति
य नो आयाति य ७ सिय आयाइय अवत्तव्वाइं
आयाओ य नो आयाओ य ८ सिय आयाओ य
अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य ९ सिय नो
आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य १०

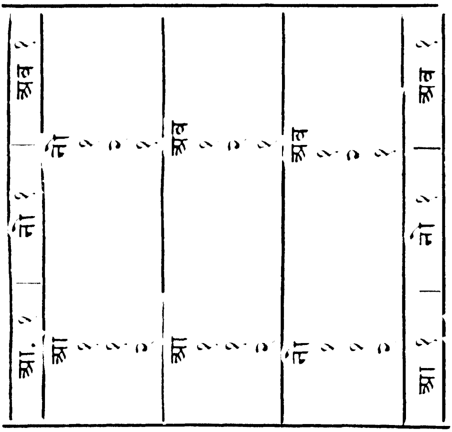
सिय आया य अवत्तव्वाइं आयाओ य नो आयाओ य ११ सिय नो आयाओ य अवत्तव्वं आयाइ य नो आयाइ य १२ सिय आया य नो आया य अवत्तव्व आयाइ य नो आयाइ य १३ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ तिपएसिए खंधे सिय आया एवं चेव उच्चारेयव्वं जाव सिय आया य नो आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य ?, गोयमा! अप्पणो आइट्ठे आया १ परस्स आइट्ठे नो आया २ तदुभयस्स आइट्ठे अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य ३ देसे आइट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आइट्ठे असब्भावपज्जवे तिपएसिए खंधे आया य नो आया य ४ देसे आइट्ठे सब्भावपज्जवे देसा आइट्ठा असब्भावपज्जवे तिपएसिए खंधे आया य नो आयाओ य ५ देसा आइट्ठा सब्भावपज्जवे देसे आइट्ठे असब्भावपज्जवे तिपएसिए खंधे आयाओ य नो आया य ६ देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए खंधे आया य अवत्तव्व आयाइ य नो आयाइ य ७ देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसा आदिट्ठा तदुभयपज्जवा तिपएसिए खंधे आया य अवत्तव्वाइं

आयाउ य नो आयाउ य ८ देसा आदिट्ठा सब्भा-
वपज्जवा देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए
खंधे आयाउ य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति
य ६ एए तिन्नि भंगा. देसे आदिट्ठे असब्भाव-
पज्जवे देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए खंधे
नो आया य अवत्तव्वं आयाइ य नो आयाति य १०
देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे देसा आदिट्ठा
तदुभयपज्जवा तिपएसिए खंधे नो आया य अव-
त्तव्वाइं आयाउ य नो आयाउ य ११ देसा
आदिट्ठा असब्भावपज्जवा देसे आदिट्ठे तदुभय-
पज्जवे तिपएसिए खंधे नो आयाउ य अवत्तव्वं
आयाति य नो आयाति य १२ देसे आदिट्ठे
सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे देसे
आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए खंधे आया य
नो आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाइ य
१३ से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ तिपएसिए
खंधे सिय आया तं चेव जाव नो आयाति य ॥
आया भंते ! चउप्पएसिए खंधे अन्ने० पुच्छा,
गोयमा ! चउप्पएसिए खंधे सिय आया १ सिय
नो आया २ सिय अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति

य ३ सिय आया य नो आया य ४ सिय आया य अवत्तव्वं ४ सिय नो आया य अवत्तव्वं ४ सिय आया य नो आया य अवत्तव्वं आयाति य आयाति य १६ सिय आया य नो आया य अवत्तव्वाइं आयाओ य नो आयाओ य १७ सिय आया य नो आयाओ य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य १८ सिय आयाओ य नो आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य १६। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ चउप्पएसिए खंधे सिय आया य नो आया य अवत्तव्वं तं चेव अट्ठे पडिउच्चारेयव्वं ? गोयमा! अप्पणो आदिट्ठे आया १ परस्स आदिट्ठे नो आया २ तदुभयस्स आदिट्ठे अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य ३ देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे चउभंगो, देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे चउप्पएसिए खंधे आया य नो आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य, देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे देसा आदिट्ठा तदुभयपज्जवा चउप्पएसिए खंधे भवइ

आया य नो आया य अवत्तव्वं आयाओ य नो आयाओ य १७ देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसा आदिट्ठा असब्भावपज्जवा देसे आदिट्ठे तदुभय-पज्जवे चउप्पएसिए खंधे आया य नो आयाओ य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य १८ देसा आइट्ठा सब्भावपज्जवा देसे आइट्ठे असब्भवप० देसे आइट्ठे तदुभयपज्जवे चउप्पएसिए खंधे आया-ओ य नो आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य १९ से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ चउप्पएसिए खंधे सिय आया सिय नो आया सिय अवत्तव्वं निक्खेवे ते चेव भंगा उच्चारेयव्वा जाव नो आयाति य॥ आया भंते! पंचपएसिए खंधे अन्ने पंचपएसिए खंधे?, गोयमा! पंचपएसिए खंधे सिय आया १ सिय नो आया २ सिय अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य ३ सिय आया य नो आया य सिय अवत्तव्वं ४ नो आया य अवत्तव्वेण य ४ तियगसंजोगे एक्को ण पडइ, से केणट्ठेणं भंते! तं चेव पडिउच्चारेयव्वं?, गोयमा! अप्पणो आदिट्ठे आया १ परस्स आदिट्ठे नो आया २ तदुभयस्स आदिट्ठे अव-

ऽसद्भावपर्यवो देशस्तूभयपर्यवस्ततोऽसौ नो आत्मा चावक्तव्यं च स्यादिति ६, सप्तमः पुनरात्मा च नो आत्मा चावक्तव्यं चेत्येवंरूपो न भवति द्विप्रदेशिके द्व्यंशत्वादस्य त्रिप्रदेशिकादौ तु स्यादिति सप्तभङ्गी ॥ त्रिप्रदेशिकस्कन्धे तु त्रयोदशभङ्गास्तत्र पूर्वोक्तेषु सप्तस्वाद्याः सकलादेशास्त्रयस्तथैव तदन्येषु तु त्रिषु त्रयस्त्रयः एकवचनबहुवचनभेदात्, सप्तमस्त्वेकविध एव स्थापना चेयम्——



यच्चेह प्रदेशद्वयेऽप्येकवचनं क्वचित्तत्तस्य प्रदेशद्वयस्यैक-प्रदेशावगाढत्वादिहेतुनैकत्वविवक्षणात्, भेदविवक्षायां च बहुवचनमिति ॥ चतुष्प्रदेशिकेऽप्येवं नवरमेकोनविंशतिर्भङ्गाः,

तत्र त्रयः सकलादेशाः तथैव शेषेषु चतुर्षु प्रत्येकं चत्वारो विकल्पाः, ते चैवं चतुर्थादिषु

त्रिषु —

१	२	१	२
१	१	२	२

सप्तमस्त्वेवम्—

१	२	१	१
१	१	२	१
१	१	१	२

पञ्चप्रदेशिके तु द्वाविंशतिस्तत्राद्यास्त्रयस्तथैव. तदुत्तरेषु च त्रिषु प्रत्येकं चत्वारो विकल्पास्तथैव, सप्तमे तु सप्त. त्रिकसंयोगे किलाष्टौ भङ्गका भवन्ति तेषु च सप्तैवेह ग्राह्या एकस्तु तेषु न पतत्यसम्भवात्, इदमेवाह —'तिगसंजोगे'त्यादि, तत्र तेषां स्थापना—

१	२	१	२	१	२	१
१	१	२	२	१	१	२
१	१	१	१	२	२	२

यश्च न पतति स पुनरयम् २२२ षट्प्रदेशिके त्रयोविंशतिरिति ॥

मूलम्—परमाणुपोग्गले णं भंते ! किं सासए असासए ?, गोयमा ! सिय सासए सिय असासए, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ सिय सासए सिय असासए ?, गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासए वन्नपज्जवेहिं जाव फासपज्जवेहिं असासए से तेणट्ठेणं जाव सिय सासए सिय असासए (सूत्रं ५१२) ॥ परमाणुपोग्गले णं भंते ! किं चरमे अचरमे ?, गोयमा !

दव्वादेसेणं नो चरिमे अचरिमे, खेत्तादेसेणं सिय चरिमे सिय अचरिमे, कालादेसेणं सिय चरिमे सिय अचरिमे, भावादेसेणं सिय चरिमे सिय अचरिमे ॥

— श्री भगवती सूत्र १४।४।५१३ ॥

टीका— परमाणुप्रोग्गले णं भंते पुद्गलः स्कन्धोऽपि स्यादतः परमाणुग्रहणं 'सासए'त्ति शाश्वद्भवनात् 'शाश्वतः' नित्यः अशाश्वतस्त्वनित्यः 'सिय सासए'त्ति कथञ्चिच्छाश्वतः, दव्वट्ठयाए'त्ति द्रव्यं उपेक्षितपर्यायं वस्तु तदेवार्थो द्रव्यार्थस्तद्भावस्तत्ता तया द्रव्यार्थतया शाश्वतः स्कन्धान्तर्भावेऽपि परमाणुत्वस्याविनष्टत्वात् प्रदेशलक्षणव्यपदेशान्तरव्यपदेश्यत्वात् 'वन्नपज्जवेहिं'ति परि सामस्त्येनावन्ति—गच्छन्ति ये ते पर्यवा विशेषा धर्मा इत्यनर्थान्तरं ते च वर्णादिभेदादनेकधेत्यतो विशेष्यते वर्णस्य पर्यवा वर्णपर्यवा अनन्तः, 'असासए'त्ति विनाशी, पर्यवाणां पर्यवत्वेनैव विनश्वरत्वादिति ॥ परमाण्वधिकारादेवेदमाह— 'परमाणु' इत्यादि, 'चरमे'त्ति यः परमाणुर्यस्माद्विवक्षितभावाच्च्युतः सन् पुनस्तं भावं न प्राप्स्यति स तद्भावापेक्षया चरमः, एतद्विपरीतस्त्वचरम इति, तत्र 'दव्वादेसेणं'ति आदेशः—प्रकारो द्रव्यरूप आदेशो द्रव्यादेशस्तेन नो चरमः, स हि द्रव्यतः परमाणुत्वाच्च्युतः संघातमवाप्यापि ततश्च्युतः परमाणुत्वलक्षणं

द्रव्यत्वमवाप्स्यतीति । 'खेत्तादेसेणं'ति क्षेत्रविशेषितत्वलक्षण-प्रकारेण 'स्यात्' कदाचिच्चरमः, कथम्? यत्र क्षेत्रे केवली समुद्घातं गतस्तत्र क्षेत्रे यः परमाणुरवगाढोऽसौ तत्र क्षेत्रे तेन केवलिना समुद्घातगतेन विशेषितो न कदाचनाप्यवगाहं लप्स्यते केवलिनो निर्वाणगमनादित्येवं क्षेत्रतश्चरमोऽसाविति निर्विशेषणक्षेत्रापेक्षया त्वचरमः, तत्क्षेत्रावगाहस्य तेन लप्स्यमान-त्वादिति । 'कालादेसेणं'ति कालविशेषितत्वलक्षणप्रकारेण 'सिय चरमे'त्ति कथञ्चिच्चरमः, कथं? यत्र काले पूर्वाह्णादौ केवलिना समुद्घातः कृतस्तत्रैव यः परमाणुतया संवृत्तः स च तं कालविशेषं केवलिसमुद्घातविशेषितं न कदाचनापि प्राप्स्यति तस्य केवलिनः सिद्धिगमनेन पुनः समुद्घाताभावादिति तदपेक्षया कालतश्चरमोऽसाविति, निर्विशेषणकालापेक्षया त्वचरम इति । 'भावादेसेणं'ति भावो वर्णादिविशेषः तद्विशेषलक्षण-प्रकारेण 'स्याच्चरमः' कथञ्चिच्चरमः, कथं? विवक्षितकेवलिसमुद्-घातावसरे यः पुद्गलो वर्णादिभावविशेषं परिणतः स विवक्षितके-वलिसमुद्घातविशेषितवर्णपरिणामापेक्षया चरमो यस्मात्तत्र केवलिनिर्वाणे पुनस्तं परिणाममसौ न प्राप्स्यति, इदं च व्याख्यानं चूर्णिकारमतमुपजीव्य कृतमिति ॥

सूत्रम् परमाणुपोग्गले णं भंते! कतिवन्ने जाव कतिफासे पन्नत्ते?, गोयमा! एगवन्ने एगगंधे एगरसे दुफासे

पन्नत्ते ॥ दुपएसिए णं भंते ! खंधे कतिवन्ने पुच्छा गोयमा ! सिय एगवन्ने सिय दुवन्ने सिय एगगंधे सिय दुगंधे सिय एगरसे सिय दुरसे सिय दुफासे सिय तिफासे सिय चउफासे पन्नत्ते, एवं तिपएसिएवि, नवरं सिय एगवन्ने सिय दुवन्ने सिय तिवन्ने, एवं रसेसुवि, सेसं जहा दुपएसियस्स, एवं चउपएसिएवि नवरं सिय एगवन्ने जाव सिय चउवन्ने, एवं रसेसुवि, सेसं तं चेव, एवं पंचपएसिएवि, नवरं सिय एगवन्ने जाव सिय पंचवन्ने, एवं रसेसुवि गंधफासा तहेव, जहा पंचपएसिओ जाव असंखेज्जपएसिओ ॥ सुहुमपरिणए णं भंते ! अणंतपएसिए खंधे कतिवन्ने जहा पंचपएसिए तहेव निरवसेसं, बादरपरिणए णं भंते ! अणंतपएसिए खंधे कतिवन्ने पुच्छा, गोयमा ! सिय एगवन्ने जाव सिय पंचवन्ने सिय एगगंधे सिय दुगंधे सिय एगरसे जाव सिय पंचरसे सिय चउफासे जाव सिय अट्ठफासे प० ॥ सेवं भंते ! रत्ति !

—श्री भगवती सूत्र १८।६।६३४॥

टीका 'परमाणुपोग्गले णं'मित्यादि, इह च वर्णगन्धरसेषु पञ्च द्वौ पञ्च च विकल्पाः 'दुफासे'त्ति स्निग्धरूक्षशीतोष्णस्पर्शा-

नामन्यतराविरुद्धस्पर्शद्वययुक्त इत्यर्थः इहच चत्वारो विकल्पाः शीतस्निग्धयोः शीतरूक्षयो उष्णस्निग्धयोः उष्णरूक्षयोश्च सम्बन्धादिति ॥ 'दुपएसिए णं'मित्यादि, 'सिय एगवन्ने'त्ति द्वयोरपि प्रदेशयोरेकवर्णत्वात्, इह च पञ्च विकल्पाः, 'सिय दुवन्ने'त्ति प्रतिप्रदेशं वर्णान्तरभावात्, इह च दश विकल्पाः, एवं गन्धादिष्वपि, 'सिय दुफासे'त्ति प्रदेशद्वयस्यापि शीतस्निग्धत्वादिभावात्, इहापि त एव चत्वारो विकल्पाः 'सिय तिफासे'त्ति इह चत्वारो विकल्पास्तत्र प्रदेशद्वयस्यापि शीतभावात्, एकस्य च तत्र स्निग्धभावात् द्वितीयस्य च रूक्षभावादेकः, 'एवम् अनेनैव न्यायेन प्रदेशद्वयस्योष्णभावाद्द्वितीयः, तथा प्रदेशद्वयस्यापि स्निग्धभावात् तत्र चैकस्य शीतभावादेकस्य चोष्णभावात्तृतीयः, 'एवम्' अनेनैव न्यायेन प्रदेशद्वयस्य रूक्षभावाच्चतुर्थः इति, 'सिय चउफासे'त्ति इह 'देसे सिए देसे उसिणे देसे निद्धे देसे लुक्खे'त्ति वक्ष्यमाणवचनादेकः, एवं त्रिप्रदेशादिष्वपि स्वयमभ्यूह्यम ॥ 'सुहुमपरिणए णं'मित्यादि, अनन्तप्रदेशिको बादरपरिणामोऽपि स्कन्धो भवति द्व्यणुकादिस्तु सूक्ष्मपरिणाम एवेत्यनन्तप्रदेशिकस्कन्धः सूक्ष्मपरिणामत्वेन विशेषितस्तथाऽऽद्याश्चत्वारः स्पर्शाः सूक्ष्मेषु बादरेषु चानन्तप्रदेशिकस्कन्धेषु भवन्ति, मृदुकठिनगुरुलघुस्पर्शास्तु बादरेष्वेवेति ॥

मूलम्-परमिया णं भंते ! किं भवसिया अभवसिया ?,

सोमिला ! सरिसवा भक्खेयावि अभक्खेयावि, से केणट्ठेणं० सरिसवा मे भक्खेयावि अभक्खेयावि ?, से नूणं ते सोमिला ! बंभन्नएसु नएसु दुविहा सरिसवा पन्नत्ता, तंजहा—मित्तसरिसवा य धन्नसरिसवा य, तत्थ णं जे ते मित्तसरिसवा ते तिविहा प०, तं०—सहजायया सहवड्ढियया सहपंसुकीलियया, ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया, तत्थ णं जे ते धन्नसरिसवा ते दुविहा प० तं०—सत्थपरिणया य असत्थपरिणया य, तत्थणं जे ते असत्थपरिणया ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया, तत्थ णं जे ते सत्थपरिणया ते दुविहा प० तं०—एसणिज्जा य अणेसणिज्जा य, तत्थ णं जे ते अणेसणिज्जा ते समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया, तत्थ णं जे ते एसणिज्जा ते दुविहा प० तं—जाइया य अजाइया य, तत्थ णं जे ते अजाइया ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया, तत्थ णं जे ते जाइया ते दुविहा प०, तं०—लद्धा य अलद्धा य, तत्थणं जे ते अलद्धा तेणं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया, तत्थ णं जे ते लद्धा तेणं समणाणं निग्गंथाणं भक्खेया, से तेणट्ठेणं सोमिला ! एवं

वुच्चइ जाव अभक्खेयावि। मासा ते भंते! किं भक्खेया अभक्खेया?, सोमिला! मासा मे भक्खेयावि अभक्खेयावि, से केणट्ठे णं जाव अभक्खेयावि, से नूणं ते सोमिला! बंभन्नएसु नएसु दुविहा मासा पं० तं० दव्वमासा य कालमासा य, तत्थ णं जे ते कालमासा तेणं सावणादीया आसाढपज्जवसाणा दुवालस तं०—सावणे भद्दवए आसोए कत्तिए मग्गसिरे पोसे माहे फग्गुणे चित्ते वइसाहे जेट्ठामूले आसाढे, तेणं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया, तत्थ णं जे ते दव्वमासा ते दुविहा पं० तं० अत्थमासा य धन्नमासा य, तत्थ णं जे ते अत्थमासा ते दुविहा प० तं०—सुवन्नमासा य रुप्पमासा य, ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया, तत्थ णं जे ते धन्नमासा ते दुविहा प० तं०—सत्थपरिणया य असत्थपरिणया य, एवं जहा धन्नसरिसवा जाव से तेणट्ठेणं जाव अभक्खेयावि। कुलत्था ते भंते! किं भक्खेया अभक्खेया?, सोमिला! कुलत्था भक्खेयावि अभक्खेयावि से केणट्ठेणं जाव अभक्खेयावि?, से नूणं सोमिला! ते बंभन्नएसु नएसु दुविहा कुलत्था प०, तं०—इत्थिकुलत्था य

धन्नकुलत्था य, तत्थ णं जे ते इत्थिकुलत्था ते तिविहा प०, तंजहा—कुलकन्नयाइ वा कुलवहूयाति वा कुलमाउयाइ वा, तेणं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया, तत्थणं जे ते धन्नकुलत्था एवं जहा धन्नसरिसवा से तेणट्ठेणं जाव अभक्खेयावि ॥

—श्री भगवती सूत्र १८.१०।६४३॥

टीका सरिसवत्ति एकत्र प्राकृतशैल्या सदृशवयसः—समानवयसः अन्यत्र सर्षपाः—सिद्धार्थकाः, 'दव्वमास'त्ति द्रव्यरूपाः माषा 'कालमास'त्ति कालरूपा मासाः, 'कुलत्थ'त्ति एकत्र कुले तिष्ठन्तीति कुलस्थाः—कुलाङ्गनाः, अन्यत्र कुलत्थाः—धान्यविशेषाः सरिसवादि-पदप्रश्नश्च छलग्रहणेनोपहासार्थं कृत इति ॥

मूलम्—एगे भवं दुवे भवं अक्खए भवं अव्वए भवं अवट्ठिए भवं अणेगभूयभावभविए भवं ?, सोमिला ! एगेवि अहं जाव अणेगभूयभावभविएवि अहं से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जाव भवियवि अहं ?, सोमिला ! दव्वट्ठयाय एगे अहं नाणदंसणट्ठयाए दुविहे अहं पएसट्ठयाए अक्खएवि अहं अव्वएवि अहं अवट्ठिएवि अहं उवयोगट्ठयाए अणेगभूयभावभविएवि अहं से तेणट्ठेणं जाव भविएवि अहं ॥

—श्री भगवती सूत्र १८।१०।६४७॥

टीका—'एगे भव'मित्यादि, एको भवानित्येकत्वाभ्युपगमे भगवताऽऽत्मनः कृते श्रोत्रादिविज्ञानानामवयवानां चात्मनोऽनेकत्व उपलब्धित एकत्वं दूषयिष्यामीति बुद्धया पर्यनुयोगः सोमिलभट्टेन कृतः, द्वौ भवानिति च द्वित्वाभ्युपगमेऽहमित्येकत्वविशिष्टस्यार्थस्य द्वित्वविरोधेन द्वित्वं दूषयिष्यामीति बुद्धया पर्यनुयोगो विहितः, 'अक्खए भव'मित्यादिना च पदत्रयेण नित्यात्मपक्षः पर्यनुयुक्तः, 'अणेगभूयभावभविए भवं'ति अनेके भूताः—अतीताः भावाः—सत्तापरिणामाः भव्याश्च—भाविनो यस्य स तथा, अनेन चातीतभावि यत् सत्ताप्रश्नेनानित्यतापक्षः पर्यनुयुक्तः, एकतरपरिग्रहे तमेव दूषयामीति, तत्र च भगवता स्याद्वादस्य निखिलदोषगोचरातिक्रान्तत्वात्तमवलम्ब्योत्तरमदायि—'एगोवि अह'मित्यादि कथमित्येतत् ? इत्यत आह—'दव्वट्ठयाए एगोऽहं'ति जीवद्रव्यस्यैकत्वेनैकोऽहं न तु प्रदेशार्थतया, तथा हि अनेकत्वान्ममेत्यवयवादीनामनेकत्वोपलम्भो न बाधकः, तथा कश्चित्स्वभावमाश्रित्यैकत्वसंख्याविशिष्टस्यापि पदार्थस्य स्वभावान्तरद्वयापेक्षया द्वित्वमपि न विरुद्धमित्यत उक्तं—'नाणदंसणट्ठयाए दुवेवि अहं'ति, न चैकस्य स्वभावभेदो न दृश्यते, एको हि देवदत्तादिः पुरुष एकदैव तत्तदपेक्षया पितृत्वपुत्रत्वभ्रातृत्वभ्रातृव्यत्वादीननेकान् स्वभावांल्लभत इति, तथा प्रदेशार्थतयाऽसंख्येयप्रदेशतामाश्रित्याक्षतोऽप्यहं सर्वथा प्रदेशानां क्षयाभावात् , तथाऽव्य-

योऽप्यहं कतिपयानामपि च व्ययाभावात्, किमुक्तं भवति ?— अवस्थितोऽप्यहं—नित्योऽप्यहं असङ्ख्येयप्रदेशिता हि न कदाचनापि व्यपैति अतो नित्यताऽभ्युपगमेऽपि न दोषः, तथा 'उवओगट्ठयाए'त्ति विविधविषयानुपयोगानाश्रित्यानेकभूतभावभविकोऽप्यहम्, अतीतानागतयोर्हि कालयोरनेकविषयबोधानामात्मनः कथञ्चिदभिन्नानां भूतत्वाद् भावित्वाच्चेत्यनित्यपक्षोऽपि न दोषायेति ॥

मूलम्-केवतिया णं भंते ! असुरकुमारभवणावाससयसहस्सा प० ?, गोयमा ! चउसट्ठिं असुरकुमारभवणावाससयसहस्सा प०, ते णं भंते ! किंमया प० ?, गोयमा ! सव्वरयणामया अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा, तत्थ णं बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उववज्जंति सासया णं ते भवणा दव्वट्ठयाए, वन्नपज्जवेहिं जाव फासपज्जवेहिं असासया, एवं जाव थणियकुमारावासा, केवतियाणं भंते ! वाणमंतरभोमेज्जनगरावाससयसहस्सा प०, ते णं भंते ! किंमया प० ?, सेसं तं चेव, केवतियाणं भंते ! जोइसियविमाणावाससयसहस्सा ? पुच्छा, गोयमा ! असंखेज्जा जोइसियविमाणावाससयसहस्सा प०, ते णं भंते ! किंमया प० ?,

गोयमा! सव्वफलिहामया अच्छा, सेसं तं चेव, सोहम्मे णं भंते! कप्पे केवतिया विमाणावास-सयसहस्सा प० ?, गोयमा! बत्तीसं विमाणावास-सयसहस्सा, ते णं भंते! किमया प० ?, गोयमा! सव्वरयणामया अच्छा सेसं तं चेव जाव अनुत्तर-विमाणा, नवरं जाणेयव्वा जत्थ जत्तीया भवणा विमाणा वा। सेवं भंते! २ त्ति ॥

—श्री भगवती सूत्र १९।७।६४८॥

टीका—'केवइया णं'मित्यादि, 'भोमेज्ज नगर'त्ति भूमे-रन्तरभवानि भौमेयकानि तानि च तानि नगराणि चेति विग्रहः सव्वफालिहामय'त्ति सर्वस्फटिकमयाः ॥

सूत्रम्—जीवा णं भंते! पावं कम्मं किं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु ?, १ समायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु २ ?, विसमायं पट्ठविंसु समायं निट्ठ-विंसु ३ ?, विसमायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठ-विंसु ४ ?, गोयमा! अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु जाव अत्थेगइया विसमायं पट्ठ-विंसु विसमायं निट्ठविंसु से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठ-विंसु ? तं चेव, गोयमा! जीवा चउव्विहा पन्नत्ता,

तंजहा--अत्थेगइया समाउया समोववन्नगा १ अत्थेगइया समाउया विसमोववन्नगा २ अत्थेगइया विसमाउया समोववन्नगा ३ अत्थेगइया विसमाउया विसमोववन्नगा ४, तत्थ णं जे ते समाउया समोववन्नगा ते णं पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु, तत्थ णं जे ते समाउया विसमोववन्नगा, ते णं पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु, तत्थ णं जे ते विसमाउया समोववन्नगा ते णं पावं कम्मं विसमायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु, तत्थ णं जे ते विसमाउया विसमोववन्नगा ते णं पावं कम्मं विसमायं पट्ठविंसु विसमायं णिट्ठविंसु, से तेणट्ठेणं गोयमा ! तं चेव ॥

--श्री भगवती सूत्र २६।१।८२२॥

टीका-'जीवा णं भंते ! पाव'मित्यादि, 'समायं'ति समकं बहवो जीवा युगपदित्यर्थः 'पट्ठविंसु'त्ति प्रस्थापितवन्तः—प्रथमतया वेदयितुमारब्धवन्तः, तथा समकमेव 'निट्ठविंसु'त्ति 'निष्ठापितवन्त' निष्ठां नीतवन्तः इत्येकः, तथा समकं प्रस्थापितवन्त 'विसमं'ति विषमं यथा भवति विषमतयेत्यर्थः, निष्ठापितवन्त इति द्वितीयः, एवमन्यौ द्वौ। 'अत्थेगइया समाउया' इत्यादि, चतुर्भङ्गी, तत्र 'समाउय'त्ति समायुषः उदयापेक्षया समकालो-

युष्कोदया इत्यर्थः 'समोववन्नग'त्ति विवक्षितायुषः क्षये समकमेव भवान्तेर उपपन्नाः समोपपन्नकाः, ये चैवंविधास्ते समकमेव प्रस्थापितवन्त—समकमेव निष्ठापितवन्तः, नन्वायःकर्मैवाश्रित्यैवमुपपन्नं भवति न तु पापं कर्म, तद्धि नायुष्कोदयापेक्षं प्रस्थाप्यते चेति, नैवं, यतो भवापेक्षः कर्मणामुदयः क्षयश्चेष्यते, उक्तञ्च—"उदयक्खयक्खओवसमे"त्यादि अत एवाह—'तत्थ णं जे ते समाउया समोववन्नगा ते णं पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु'त्ति प्रथमः, तथा 'तत्थ णं जे ते समाउया विसमोववन्ना'त्ति समकालायुष्कोदया विषमतया परभवोत्पन्ना मरणकालवैषम्यात् 'ते समायं पट्ठविंसु' त्ति आयुष्कविशेषोदयसम्पादितत्वात्पापकर्मवेदनविशेषस्य 'विसमायं निट्ठविंसु'त्ति मरणवैषम्येन पापकर्मवेदनविशेषस्य विषमतया निष्ठासम्भवादिति द्वितीयः, तथा 'विसमाउया समोववन्नग'त्ति विषमकालायुष्कोदयाः समकालभवान्तरोत्पत्तयः 'ते णं पावं कम्मं विसमायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु'त्ति तृतीयः, चतुर्थः सुज्ञात एवेति, इह चैतान् भङ्गकान् प्राक्तनशतभङ्गकांश्चाश्रित्य वृद्धैरुक्तम्—"पट्ठवणस्स किहणु हु समाउ उववन्नएसु चउभंगो। किह व समज्झाणस्स गमणिज्जा अत्थओ भंगा? ॥१॥ पट्ठवणस्स भंगा पुच्छाभंगाणुलोमओ वज्झा।" यथा पृच्छाभंगाः समकप्रस्थापनादयो न वध्यन्ते तथेह समायुष्कादयः अन्यत्रान्यथा व्याख्याता अपि व्याख्येया

इत्यर्थः । "कम्मसमज्जणसए बाहुल्लाओ समाउज्जा ॥२॥" [प्रस्थापनशते समायुक्तत्वेषु चतुर्भङ्गी कथं नु कथं वा समर्जनशते भङ्गा अर्थतो गम्याः ? ॥१॥ प्रस्थापनशते भङ्गानां पृच्छा भङ्गानुलोम्यतो वाच्या। कर्मसमर्जनशते बाहुल्यात् समायोजयेत् ॥ १ ॥] इति ॥



श्री ज्ञाता सूत्र

हे शुक! अस्माकं धर्मः स्याद्वादात्मकः सप्तनयाश्रितो वर्तते, अन्ये धर्माः प्रत्येकनयाश्रिता अतः सप्तनयानां स्वरूपं शृणु तथा चोक्तमागमे— कइविहा णया पण्णत्ता, गोयमा ? सत्तमूलनया पण्णत्ता तं जहा—णेगमे १ संगहे २ ववहारे ३ उज्जुसुत्ते ४ सद्दे ५ समभिरूढे ६ एवंभूते ७ इति ॥ नैगम इति न एकं नैकं प्रभूतानीत्यर्थः, नैकैर्मानैर्महासत्तासामान्यविशेषज्ञानैर्मिमीते मिनोति इति वा नैकमस्सामान्यविशेषो नयस्तज्ज्ञातैर्वस्तु मन्यते पष्टमेकगोदन न मन्यते इत्यर्थः, न विद्यते एको गमो मार्गः सामान्यलक्षणो विशेषलक्षणो वा यस्य स नैगमिकः एव नयः सम्यग्दृष्टिवत् सामान्यविशेषाभ्यां वस्तु जानाति तस्मादेषो नयः सम्यग्दृष्टितो भवति इति ॥१॥ तथा संग्रह इति भेदानां संग्रहः संगृह्णाति भेदान् वा संग्रहः, स नयः समुच्चयेन

वस्तु आनयति, यथा कश्चिद् वनं दृष्ट्वा वदत्यग्रे वनमस्ति परं विशेषणं न वक्ति, पगुपत्तितटाकाकीर्णं वनं वर्तते इति न वदति, स कथयति विशेषस्तु सामान्यमध्य एवास्ति इति ॥२॥ व्यवहरणं व्यवहारः, येन व्यवह्रियते स व्यवहारः स तु विशेषवस्तु मन्यते. स च कथयति सामान्यं विशेषाद् भिन्नं न वर्तते. केवलं सामान्यत्वेन लोकव्यवहारो न प्रवर्तते यथा भ्रमरादौ सामान्यत्वेन पंचवर्णाः सन्ति, परं कृष्णवर्णस्य बहुतरत्वेन विशेषेण. येन लोकव्यवहारेण भ्रमरः कृष्ण एव निगद्यते इति, पुनर्बाह्यस्वरूपं दृष्ट्वा भेदं विवेक्ति, ये बाह्यदृष्ट्या गुणान् पश्यन्ति तानेव मन्यते नान्तरङ्गत्वेन, एतावताव्यवहारनये आचारक्रिया मुख्या वर्तते. अन्तरङ्गपरिणामोपयोगो नास्ति, यतो नैगमसङ्ग्रहयोर्ज्ञानात्मध्यानस्य परिणमनं, तत्र क्रिया मुख्यास्ति व्यवहारनयेन। जीवव्यवस्था नैकधा वर्तते, तत्रनैगमसंग्रहाभ्यां सर्वजीवसत्ता एकरूपैव, परं व्यवहारेण जीवो द्विविधः—सिद्ध १ संसारी च, तत्र संसारीजीवो द्विविधः, अयोगी चतुर्दशगुणस्थानवर्ती शैलावस्थायां वर्तमानो जीवः १, सयोगी च २, तत्र सयोगी द्विविधः—त्रयोदशगुणस्थानवर्ती केवली—छद्मस्थश्च, छद्मस्थो द्विविधः क्षीणमोहद्वादशगुणस्थानवर्ती मोहनीयकर्म क्षपयति स जीवः १, द्वितीयः उपशान्तमोहश्च २, उपशान्तमोहस्य द्वौ भेदौ, अकषायी एकादशगुणस्थानवर्ती जीवः १ सकषायी च, सकषायिणो द्वौ भेदौ. एकः सूक्ष्मसकषायिदशमगुणस्थानस्थ १, बादरकषायी, बादरकषायी द्विविधः श्रेणिप्रतिपन्नः श्रेणि-

र्वाजतश्च श्रेणिवर्जितस्य द्वौ भेदौ अप्रमत्तः प्रमत्तश्च, प्रमत्तस्य द्वौ भेदौ, सर्वविरतिः १, देशविरतिश्च २, देशविरतिर्द्विविधः— विरतिपरिणामः १ अविरतिपरिणामश्च २, तत्राविरतिर्द्विविधः—अविरतिसम्यक्त्वी १ मिथ्यात्वी च २ मिथ्यात्विनो द्वौ भेदौ—भव्यः १ अभव्यश्च २, भव्यो द्विविधः ग्रन्थीभेदी १ ग्रन्थ्यभेदी च, एवं यादृशो जीवो दृश्यते तं तादृशमेव मन्यते स व्यवहारनयः ॥३॥ ऋजु— अवक्रं श्रुतं ज्ञानमस्ति यस्य स ऋजुसूत्र अथवा अतीतानागतरूपवक्रपरित्यागेन ऋजु सरलं वर्तमानकालमानयति इति ऋजुसूत्रः, तत्रातीतकालस्तु विनष्टः अनागतश्चानुत्पन्नोऽस्ति दृश्यतेऽपि न आकाशपुष्पवत् कालद्वयं न मन्तव्यम्, ततो वर्तमानकालेन भावितं भावं सूत्रयति इति ऋजुसूत्रं परिणामग्राही वर्तते, यदा यो जीवो गृहे वर्तते परमन्तः परिणामैः साधुतुल्यस्तदा स जीवः साधुरेव कथ्यते, पुनर्यो जीवः साधुवेषधारी वर्तते परं मनसि विषयाभिलाषयुक्ताः परिणामाः वर्तन्ते तदा स जीवोऽविरतिमार्गी च ॥४॥ शप्यते-आक्रोश्यते, उच्यते वस्तु अनेनेति शब्दः तेनोपचारान्नयोऽपि शब्द एवोच्यते, शब्दनयोऽपि ऋजुसूत्रनयसदृशो मन्तव्यः एषोऽपि प्रत्युत्पन्नग्राही ऋजुशब्दनयौ यदि सदृशौ तर्हि तयोः कः प्रतिभेदः? उच्यते ऋजुसूत्रनयवादी सामान्यगतार्थं गृह्णाति, परं लिङ्गवचनभेदं किमपि न करोति, यथा तटः पुंलिङ्गः, तटी स्त्री, तटं नपुंसकं परं

ऋजुसूत्रनयः केवलं तदस्यार्थं गृह्णाति लिङ्गविशेषं किमपि न मानयति, शब्दनयवादी तु विशेषपदं गृह्णाति शब्दानां लिङ्गवचनानां ये भेदाः सन्ति तान् विशेषतः पृथक् २ गृह्णाति तथा सम्यक् प्रकारेण कार्यसाधकं शब्दं मानयति यथा इन्द्रशब्दं मानयति. यथा इन्द्रशब्दस्य चत्वारो निक्षेपाः नामादिभेदेन सन्ति, पर शब्दनयवादी वदति नामेन्द्र १ स्थापनेन्द्रद्रव्येन्द्रैः किमपि कार्यसिद्धिर्न भवति इति यतस्ते नामेन्द्रादयः इन्द्रकार्यकरणे न समर्थाः यदा भावेन्द्रो भविष्यति तदा इन्दनात् इन्द्रः इति शब्दः स्वकार्यकारिष्यतीति। निक्षेपेण विचारो बहुतरोऽस्ति ग्रन्थगौरवभयान्नात्रोक्तम् इति ॥ ५ ॥ नानार्थेषु नानासंज्ञानामारोहणात् समभिरूढनयः, एष नयो घटकुटादीनि भिन्नव्युत्पत्तिनिमित्तत्वात् भिन्नार्थगोचराणि मानयति घटपटादिशब्दवत्। तथा घटनात् घटो विशिष्टचेष्टावान् अर्थो घट इति तथा कुट कौटिल्ये कौटिल्ययोगात् कुटो घटोऽन्यः कुटोऽप्यन्य एवेति ६, तथा यस्य पदार्थस्य योऽर्थोऽस्ति तमर्थं कुर्वन्तं प्रभूतं सन्तं पदार्थं मानयति पुनः स्वार्थस्याकरणवेलायां तं पदार्थमसन्तं मानयति स एवंभूतनयः. यदा स्त्रीमस्तके घटश्चाटितो भवति तदा चेष्टासहितो 'घट चेष्टायाम्' धातोः चेष्टारूपार्थकरणवेलायां घटं प्रति घटं कृत्वा मानयति ॥७॥ एतेषां मध्ये ये प्राक्तनास्त्रयो नया द्रव्यं मन्यन्ते, तत्र नैगमव्यवहारौ अशुद्धद्रव्यं मन्येते, संग्रहस्तु शुद्धद्रव्यं मन्यते, ततः कारणादेते त्रयो द्रव्यनया उच्यन्ते।

उत्पत्तिनाशयोर्नियतः पर्याय: सततं नोऽनन्ताः पर्यायास्तस्या इति ।
विशेषविचारस्तु सिद्धान्ताद् विज्ञेय इति ।

अथ नययोगद्वारे सप्तानां नयानां दृष्टान्तो लिख्यते—यथा केनचित् पुरुषेण कश्चित् पृष्टः भवान् कुत्र वसति? तदा तेन नैगमनयवादिना उक्तं लोकमध्ये वसामि, पुनः पृष्टः, लोकस्य त्रयो भेदाः ऊर्ध्वाधस्तिर्यक् लोकाः तत्र कस्मिंल्लोके वससि। तदा अशुद्धनैगमवादिना प्रोक्तं—तिर्यग् लोके वसामि पुनः पृष्टः तिर्यग् लोके असंख्येया द्वीपसमुद्राश्च सन्ति तस्मात् कस्मिन् द्वीपे तिष्ठसि तदा विशुद्धनैगमवादिनोक्तं, जम्बूद्वीपमध्ये तिष्ठामि, पुनः पृष्टः जम्बूद्वीपे बहूनि क्षेत्राणि सन्ति, तत्रापि कस्मिन् क्षेत्रे तिष्ठसि. तदा तेनातिविशुद्धनैगमवादिना प्रोक्तम्—भारतक्षेत्रे तिष्ठामि, पुनः पृष्टः, स तस्य षट् खण्डाः सन्ति मध्यखण्डे तस्मिन् देशाः नगराणि ग्रामाश्च बहवः सन्ति, त्वं कुत्र तिष्ठसि? तदा प्रथमनयवादी वदति अमुकदेशे नगरे ग्रामे वा अमुक पाटके वा वसामि। तत्रैतत्पर्यन्तं नैगमनयो ज्ञेयः। अथ संग्रहनयवादी वदति—स्वशरीरे वसामि। तदा व्यवहारनयवादी वक्ति—स्वसंस्तारके वसामि। ऋजुसूत्रवादी वदति स्वस्वभावे तिष्ठामि। समभिरूढवादिना प्रोक्तं स्वगुणेषु तिष्ठामि, एवंभूतनयवादिना प्रोक्तम्—ज्ञानदर्शनगुणेषु वसामि। इति दृष्टान्तः सर्वपदार्थेषु ज्ञेय इति ॥

अथ सप्तनयैर्धर्मः कथ्यते— प्रथमनैगमवादी वदति सर्वे धर्माः

सन्ति, येन कारणेन सर्वे धर्माः कथ्यन्ति, अयं नयो शब्दो धर्मनाम कथयति, तदा संग्रहनय उवदत्—यैर्वृद्धपुरुषैराचृत्तं तद्धर्मः कथ्यते, अनाचार स्त्यक्त्वा परं कृताचारो धर्मः कथितः—तदा व्यवहारनयेन प्रोक्तम्—यः सुखहेतुः सः धर्मः अर्थात्—पुण्य कर्म-कारणो धर्मः मानितस्तदा ऋजुसूत्रनयेन प्रोक्तम्—यः उपयोग-सत्ववैराग्यरूपपरिणामः सः धर्मं कथ्यते, अस्मिन्नये यथा प्रवृत्ति-करस्य परिणामप्रमुखाः सर्वे धर्माः कथिताः ते मिथ्यात्विनोऽपि भवंति, तदा शब्दनयोऽवदत्—यः सम्यक्त्वः स एव धर्मस्य मूलं सम्यक्त्वं, तदा समभिरूढनयो वदति—यो जीवाजीवादीन् पदार्थान् जानाति जीवसत्तां ध्यायति, अजीवस्य त्यागं करोति, ईदृशो ज्ञानदर्शनचारित्राणां शुद्धनिश्चयपरिणामः स धर्मः। अस्मिन् नये साधकसिद्धपरिणामास्ते धर्मत्वेन गृहीताः, तदा एवं-भूतनयो वक्ति—शुक्लध्यानरूपातीतपरिणामैः क्षपकश्रेण्यां कर्म-क्षयहेतुः स धर्मः, यो जीवस्यमूलस्वभावो धर्मो मोक्षरूपं कार्यं करोति, एवं सप्तनयैर्धर्मः कथ्यते। सप्तनयानामेकत्रमीलनात् सम्यक्त्वं वर्तते, सप्तनयग्राही सम्यक्त्वी उच्यते, य एकनयग्राही स मिथ्यादृष्टिरुच्यते, एवं सप्तनयैः स्याद्वचनं तत प्रमाण-मस्ति। सप्तनयानां मध्ये यः कोऽप्येकं नयमुत्थापयते तस्य वचन-मप्रमाणं भवेदिति॥

श्री रायपसेणी सूत्र

मूलम्—पउमवरवेइया णं भंते ! किं सासया० ?, गोयमा ! सिय सासया सिय असासया, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ सिय सासया सिय असासया ?, गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया वन्नपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं असासया, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं-वुच्चति-सिय सासया सिय असासया । पउमवरवेइयाणं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?, गोयमा ! ण कयावि णासि ण कयावि णत्थि न कयावि न भविस्सइ, भुविं च हवइ य भविस्सइ य, धुवा णिइया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा पउमवरवेइया ।

श्री रायपसेणी सूत्र विमान वर्णन सूत्र ३४ ॥

टीका 'पउमवरवेइया णं भंते ! किं सासया' इत्यादि, पद्मवरवेदिका णमिति पूर्ववत् किं शाश्वती उताशाश्वती, आबन्ततया सूत्रे निर्देशः प्राकृतत्वात्, किं नित्या उतानित्येति भावः, भगवानाह गौतम ! स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वती, कथंचिन्नित्या कथंचिदनित्या इत्यर्थः, स्याच्छब्दो निपातः कथंचिदित्येतदर्थवाची, 'से केणट्ठेणं' मित्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम ! द्रव्यार्थतया द्रव्यास्तिकनयमतेन शाश्वती, द्रव्यास्तिकनयो हि द्रव्यमेव तात्त्विकमभिमन्यते न पर्यायान्, द्रव्यं चान्वयिपरिणामित्वात्, अन्वयित्वाच्च सकलकालभावीति भवति द्रव्यार्थतया शाश्वती, वर्णपर्यायैस्तदन्यस्योत्पद्यमानवर्णविशेषरूपैः, एवं गन्धपर्यायैः रसपर्यायैः स्पर्शपर्यायैः रूपलक्षणमेतत्, तत्तदन्यपुद्गलविचटनोच्चटनैश्च अशाश्वती, पर्यायाणां प्रतिक्षणभावितया कियत्कालभावितया विनाशित्वात्, 'से एएणट्ठेणं' मित्याद्युपसंहारवाक्यं सुगमं, इह द्रव्यास्तिकनयवादी स्वमतप्रतिष्ठापनार्थमेवमाह—नात्यन्तासत उत्पादो नापि सतो नाशः 'नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः' इति वचनात्, यौ तु दृश्येते प्रतिवस्तु उत्पादविनाशौ तदाविर्भावतिरोभावमात्रं, यथा सर्पस्य उत्फणत्वविफणत्वे, तस्मात् सर्वं वस्तु नित्यमिति, एवं च तन्मतचिन्तायां संशयः—किं पद्मवरवेदिका द्रव्यार्थतया शाश्वती उत सकलकालमेकरूपा, ततः संशयापनोदार्थं भगवन्तं भूयः पृच्छति —

'पउमवरवेइया णं' इत्यादि, पद्मवरवेदिका भगवन् भदन्त! कालतः कियच्चिरं कियन्तं कालं यावद् भवति?, एवंरूपा हि कियन्तं कालमवतिष्ठति इति?, भगवानाह—गौतम! न कदाचिन्नासीत् सर्वदैवासीदिति भावः अनादित्वात् तथा न कदाचिन्न भवति, सर्वदैव वर्त्तमानकालचिन्तायां भवतीति भावः सदैव भावात्, तथा न कदाचिन्न भविष्यति किन्तु भविष्यच्चिन्तायां सर्वदैव भविष्यति इति प्रतिपत्तव्यम्, अपर्यवसितत्वात्, तदेवं कालत्रयचिन्तायां नास्तित्वप्रतिषेधं विधाय सम्प्रत्यस्तित्वं प्रतिपादयति 'भुविं च' इत्यादि, अभूच्च भवति च भविष्यति चेति, एवं क्रिया-कालावस्थायित्वात् ध्रुवा मेर्वादिवत् ध्रुवत्वादेव सदैव स्वस्वरूपनियता नियतत्वादेव च सततं गंगासिन्धुप्रवाहप्रवृत्तावपि पौण्डरीकह्रद इवानेकपुद्गलविचटनेऽपि तावन्मात्रान्यपुद्गलोच्चटनसंभवादक्षया, न विद्यते क्षयो—यथोक्तस्वरूपाकारपरिभ्रंशो यस्याः सा अक्षया, अक्षयत्वादेव अव्यया अव्ययशब्दवाच्या मनागपि स्वरूपचलनस्य जातुचिदप्यभावात्, अव्ययत्वादेव सदैव स्वस्वप्रमाणेऽवस्थिता, मानुषोत्तराद्बहिःसमुद्रवत्, एवं स्वप्रमाणे सदावस्थानेन चिन्त्यमाना नित्या धर्मास्तिकायादिवत् ॥

श्री जीवाभिगम सूत्र

मूलम्—इमीसे णं भंते ! रयणाप० पु० सव्वजीवा उववण्ण पुव्वा ? सव्वजीवा उववण्णा ?; इमीसे णं रय० पु० सव्वजीवा उववण्णपुव्वा नो चेव णं सव्वजीवा उववण्णा, एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए ॥ इमा णं भंते ! रयण० पु० सव्वजीवेहिं विजढपुव्वा ? सव्वजीवेहिं विजढा ? गोयमा ! इमा णं रयण० पु० सव्वजीवेहिं विजढपुव्वा नो चेव णं सव्वजीवविजढा, एवं जाव अधेसत्तमा ॥ इमीसे णं भंते ! रयण० पु० सव्वपोग्गला पविट्ठपुव्वा ? सव्वपोग्गला पविट्ठा ? गोयमा ! इमी से णं रयण० पुढवीए सव्वपोग्गला पविट्ठपुव्वा नो चेव णं सव्वपोग्गला पविट्ठा, एवं जाव अधेसत्तमाय पुढवीए ॥ इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी सव्वपोग्गलेहिं

'आकप्पट्ठाई पुढवी सासया' इत्यादि, ततः संशयः—किमेषा रत्नप्रभा पृथवी सकलकालावस्थायितया शाश्वती उतान्यथा यथा तन्त्रान्तरीयैरुच्यत इति ?, ततस्तदपनोदार्थं पृच्छति—'इमा णं भंते' इत्यादि, इयं भदन्त ! रत्नप्रभा पृथिवी कालतः 'कियच्चिरं' कियन्तं कालं यावद्भवति ?, भगवानाह—गौतम ! न कदाचिन्नासीत्, सदैवासीदिति भावः, अनादित्वात्, तथा न कदाचिन्न भवति, सर्वदैव वर्त्तमानकालचिन्तायां भवतीति भावः, अत्रापि स एव हेतुः, सदा भावादिति, तथा न कदाचिन्न भविष्यति, भविष्यच्चिन्तायां सर्वदैव भविष्यतीति भावः, अपर्यवसितत्वात् । तदेवं कालत्रयचिन्तायां नास्तित्वप्रतिषेधं विधाय सम्प्रत्यस्तित्वं प्रतिपादयति—'भुविं च' त्यादि, अभूत् भवति भविष्यति च, एवं त्रिकालभावित्वेन 'ध्रुवा' ध्रुवत्वादेव 'नियता' नियतावस्थाना, धर्मास्तिकायादिवत्, नियतत्वादेव च शाश्वती, शश्वद्भाव-प्रलयाभावात्, शाश्वतत्वादेव च सततगङ्गासिन्धुप्रवाहप्रवृत्तावपि पद्मपौण्डरीकह्रद इवान्यतरपुद्गलविचटनेऽप्यन्यतरपुद्गलोपचयभावात्, अक्षया अक्षयत्वादेव च अव्यया, मानुषोत्तराद्बहिः समुद्रवत्, अव्ययत्वादेव 'अवस्थिता' स्वप्रमाणावस्थिता, सूर्यमण्डलादिवत्, एवं सदाऽवस्थानेन चिन्त्यमाना नित्या जीवस्वरूपवत्, यदिवा ध्रुवादयः शब्दा इन्द्रशक्रादिवत्पर्यायशब्दा नानादेशजविनेयानुग्रहार्थमुपन्यस्ता इत्यदोषः एवमेकैका पृथिवी क्रमेण तावद्वक्तव्या यावदधः सप्तमी ॥

मूलम्-सासया णं ते णरगा दव्वट्ठयाए वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासया एवं जाव अहे सत्तमाए ॥

--श्री जीवाभिगम सूत्र प्रतिपत्ति ३।८४ ॥

टीका शाश्वता णमिती पूर्ववत् ते नरका द्रव्यार्थता तथा-विधप्रतिनियतसंस्थानादिरूपतया वर्णपर्यायैर्गन्धपर्यायैः स्पर्शपर्यायैः पुनरशाश्वताः, वर्णादीनामन्यथाऽन्यथाभवनात्, एवं प्रतिपृथिवि तादृक्तव्यं यावदधः सप्तमी पृथिवी ॥

मूलम्-"पउमवरवेइया णं भंते ! किं सासया असासया ? गोयमा ! सिय सासया सिय असासया ॥ से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-सिय सासया सिय असासया ?, गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासता, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-सिय सासता सिय असासता ॥ पउमवरवेइया णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होति ?, गोयमा ! ण कयावि णासि ण कयावि णत्थि ण कयावि न भविस्सति ॥ भुविं च भवति य भविस्सति य धुवा नियमा सासता अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा पउमवरवेदिया" ॥

—श्री जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३ देवाधिकारः उद्देश १ सू० १२५॥

टीका-पउमवरवेइया णं भंते ! किं सासया ?, इत्यादि, पद्मवरवेदिका णमिति पूर्ववत् किं शाश्वती उताशाश्वती ?, आबन्ततया सूत्रे निर्देशः प्राकृतत्वात्, किं नित्या उतानित्येति भावः, भगवानाह गौतम ! स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वती कथञ्चिन्नित्या कथञ्चिदनित्येत्यर्थः, स्याच्छब्दो निपातः कथञ्चिदित्येतदर्थवाची ॥ 'से केणट्ठेणं भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह-गौतम ! 'द्रव्यार्थतया' द्रव्यास्तिकनयमतेन शाश्वती, द्रव्यास्तिकनयो हि द्रव्यमेव तात्त्विकमभिमन्यते न पर्यायान्, द्रव्यं चान्वयि परिणामित्वाद्, अन्यथा द्रव्यत्वायोगाद्, अन्वयित्वाच्च सकलकालभावीति भवति द्रव्यार्थतया शाश्वती, 'वर्णपर्यायैः' तदन्यसमुत्पद्यमानवर्णविशेषरूपैरेवं गन्धपर्यायै रसपर्यायैः स्पर्शपर्यायैः, उपलक्षणमेतत्तदन्यपुद्गलविचटनोच्चटनैश्चाशाश्वती, किमुक्तं भवति ? पर्यायास्तिकनयमतेन पर्यायप्राधान्यविवक्षायामशाश्वती, पर्यायाणां प्रतिक्षण भावितया कियत्कालभावितया वा विनाशित्वात्, 'से एएणट्ठेणं'-मित्यादि उपसंहारवाक्यं सुगमं, इह द्रव्यास्तिकनयवादी स्वमतप्रतिस्थापनार्थमेवमाह-नात्यन्तासत उत्पादो नापि सतो विनाशो, 'नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सत' इति' वचनात्, यौ तु दृश्येते प्रतिवस्तु उत्पादविनाशौ तदाविर्भावतिरोभावमात्रं यथा सर्पस्योत्फणत्वविफणत्वे, तस्मात्सर्वं वस्तु नित्यमिति ॥ एवं च तन्मतचिन्तायां संशयः-किं घटादिवद्द्रव्यार्थ-

तया शाश्वती उतसकलकालमेवंरूपा इति, ततः संशयापनोदार्थं भगवन्तं भूयः पृच्छति—'पउमवरवेइया णं' मित्यादि, पद्मवरवेदिका णमिति पूर्ववद् 'भदन्त !' परमकल्याणयोगिन् ! 'कियच्चिरं' कियन्तं कालं यावद्भवति ?, एवं रूपा कियन्तं कालमवतिष्ठते ! इति, भगवानाह—गौतम ! न कदाचिन्नासीत्, सर्वदैवासीदिति भावः अनादित्वात्, तथा न कदाचिन्न भविष्यति, किन्तु भविष्यच्चिन्तायां सर्वदैव भविष्यतीति प्रतिपत्तव्यं, अपर्यवसितत्वात्, तदेवं कालत्रयचिन्तायां नास्तित्वप्रतिषेधं विधाय सम्प्रत्यस्तित्वं प्रतिपादयति—'भुविं चे' त्यादि, अभूच्च भवति च भविष्यति चेति, एवं त्रिकालावस्थायित्वाद् 'ध्रुवा' मेर्वादिवद् ध्रुवत्वादेव सदैव स्वस्वरूपे नियता, नियतत्वादेव च 'शाश्वती' शश्वद्भवनस्वभावा, शाश्वतत्वादेव च सततगङ्गासिन्धुप्रवाहप्रवृत्तावपि पौण्डरीकह्रद इवानेकपुद्गलविचटनेऽपि तावन्मात्रान्यपुद्गलोच्चटनसम्भवाद् 'अक्षया' न विद्यते क्षयो—यथोक्तस्वरूपाकारपरिभ्रंशो यस्याः साऽक्षया, अक्षयत्वादेव 'अव्यया' अव्ययशब्दवाच्या, मनागपि स्वरूपचलनस्य जातुचिदप्यसम्भवात्, अव्ययत्वादेव स्वप्रमाणेऽवस्थिता मानुषोत्तरपर्वताद् बहिः समुद्रवत्, एवं स्वस्वप्रमाणे सदाऽवस्थानेन चिन्त्यमाना नित्या धर्मास्तिकायादिवत् ॥

विजढपुव्वा ? सव्वपोग्गला विजढा ?, गोयमा ! इमा णं रयणप्पभा पु० सव्वपोग्गलेहिं विजढपुव्वा नो चेव णं सव्वपोग्गलेहिं विजढा, एवं जाव अधेसत्तमा ॥

—श्री जीवाभिगम सूत्र प्रतिपत्ति ३ सू० ७७१ ॥

टीका—'इमीसे णं भंते ! ' इत्यादि, अस्यां भदन्त । रत्नप्रभायां पृथिव्यां सर्वजीवाः सामान्येन उपपन्नपूर्वा इति—उत्पन्नपूर्वाः कालक्रमेण, तथा सर्वजीवाः 'उपपन्नाः' उत्पन्ना युगपद् ?, भगवानाह—गौतम ! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां सर्वजीवाः सांव्यवहारिकजीवराश्यन्तर्गताः प्रायोवृत्तिमाश्रित्य सामान्येन 'उपपन्नपूर्वाः' उत्पन्नपूर्वाः कालक्रमेण, संसारस्यानादित्वात्, न पुनः सर्वजीवाः 'उपपन्ना' उत्पन्ना युगपत्, सकलजीवानामेककालं रत्नप्रभापृथिवीत्वेनोत्पादे सकलदेवनारकादि भेदाभावप्रसक्तेः, न चैतदस्ति, तथाजगत्स्वाभाव्यात्, एवमेकैकस्याः पृथिव्यास्तावद्वक्तव्यं यावदधः सप्तम्याः ॥ 'इमा णं भंते !' इत्यादि, इयं च भदन्त ! रत्नप्रभापृथिवी 'सव्वजीवेहिं विजढपुव्वा' इति सर्वजीवैः कालक्रमेण परित्यक्तपूर्वा, तथा सर्वजीवैर्युगपद् 'विजढा' परित्यक्ता ?, भगवानाह—गौतम ! इयं रत्नप्रभा पृथिवी प्रायोवृत्तिमाश्रित्य सर्वजीवैः सांव्यवहारिकैः कालक्रमेण परित्यक्तपूर्वा, न तु युगपत्परित्यक्ता, सर्वजीवैः एककालपरित्यागस्यासम्भवात् तथा-

निमित्ताभावात्, एवं तावद्वक्तव्यं यावदधः सप्तमी पृथ्वी ॥ 'इमीसे णं' मित्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां सर्वे पुद्गला लोकोदरविवरवर्त्तिनः कालक्रमेण 'प्रविष्टपूर्वाः' तद्भावेन परिणतपूर्वाः, तथा सर्वे पुद्गलाः 'प्रविष्टाः' एककालं तद्भावेन परिणताः ?. भगवानाह—गौतम! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां सर्वे पुद्गलाः लोकवर्तिनः 'प्रविष्टपूर्वाः' तद्भावेन परिणतपूर्वाः, संसारस्यानादित्वात्, न पुनरेककालं सर्वपुद्गलाः 'प्रविष्टा' तद्भावेन परिणताः सर्वपुद्गलानां तद्भावेन परिणतौ रत्नप्रभाव्यतिरेकेणान्यत्र सर्वत्रापि पुद्गलाभावप्रसक्तेः, न चैतदस्ति, तथाजगत्स्वाभाव्यात्। एवं सर्वासु पृथिवीषु क्रमेण वक्तव्यं यावदधःसप्तम्यां पृथिव्यामिति ॥ 'इमा णं भंते!' इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभा पृथिवी सर्वपुद्गलैः कालक्रमेण 'विजढपुव्वा' इति परित्यक्तपूर्वा तथैव सर्वैः पुद्गलैरेककाले परित्यक्ता ?, भगवानाह—गौतम! इयं रत्नप्रभा पृथिवी सर्वपुद्गलैः कालक्रमेण परित्यक्तपूर्वा, संसारस्यानादित्वात्, न पुनः सर्वपुद्गलैरेककालं परित्यक्ता, सर्वपुद्गलैरेककालपरित्यागे तस्याः सर्वथा स्वरूपाभावप्रसक्तेः, न चैतदस्ति, तथाजगत्स्वाभाव्यतः शाश्वतत्वात्. एतच्चानन्तरमेव वक्ष्यति। एवमेकैका पृथिवी क्रमेण तावद्वाच्या यावदधः सप्तमी पृथिवी ॥

मूलम्—इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी किं सासया असासया ?, गोयमा! सिय सासता सिय असा-

मया ॥ से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–सिय सासया सिय असासया ?, गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासता, वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासता, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति–तं चेव जाव सिय असासता, एवं जाव अधेसत्तमा ॥ इमा णं भंते ! रयणप्पभापु० कालतो केवच्चिरं होइ ?, गोयमा ! न कयाइ ण आसि ण कयाइ णत्थि ण कयाइ ण भविस्सति ॥ भुविं च भवइ य भविस्सति य धुवा णियया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिता णिच्चा एवं जाव अधे सत्तमा ॥

—श्री जीवाभिगम मलयगिरि वृत्ति प्रति० ३ सूत्र ७८ ॥

टीका—'इमा णं भंते !' इत्यादि, इयं भदन्त ! रत्नप्रभा पृथिवी किं शाश्वती अशाश्वती ?, भगवानाह— गौतम ! स्यात्—कथञ्चित्कस्यापि नयस्याभिप्रायेणेत्यर्थः शाश्वती, स्यात्—कथञ्चिदशाश्वती ॥ एतदेव सविशेषं जिज्ञासुः पृच्छति—'से केणट्ठेणं' मित्यादि, सेशब्दोऽथशब्दार्थः स च प्रश्ने, केन 'अर्थेन' कारणेन भदन्त ! एवमुच्यते यथा स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वतीति ?, भगवानाह—गौतम ! 'दव्वट्ठयाए' इत्यादि, द्रव्यार्थतया शाश्वतीति तत्र द्रव्यं सर्वत्रापि सामान्यमुच्यते, द्रवति—गच्छति तान् तान् पर्यायान् विशेषानिति वा द्रव्यमितिव्युत्पत्तेर्द्रव्यमेवार्थः—

तात्त्विकः पदार्थो यस्य न तु पर्यायाः स द्रव्यार्थः—द्रव्यमात्रास्तित्व-प्रतिपादको नयविशेषस्तद्भावो द्रव्यार्थता तया द्रव्यमात्रास्तित्व प्रतिपादकनयाभिप्रायेणेत्यावत् शाश्वती, द्रव्यार्थिकनयमतपर्यालोचनायामेवंविधस्य रत्नप्रभायाः पृथिव्या आकारस्य सदा भावात्, 'वर्णपर्यायैः' कृष्णादिभिः 'गंधपर्यायैः' सुरभ्यादिभिः 'रसपर्यायैः' तिक्तादिभिः 'स्पर्शपर्यायैः' कठिनत्वादिभिः 'अशाश्वती, अनित्या, तेषां वर्णादीनां प्रतिक्षणं कियत्कालानन्तरं वाऽन्यथाभवनात्, अतादवस्थ्यस्य चानित्यत्वात् न चैवमपि भिन्नाधिकरणे नित्यत्वानित्यत्वे, द्रव्यपर्याययोर्भेदाभेदोपगमात्, अन्यथोभयोरप्यसत्त्वापत्तेः, तथाहि—शक्यते वक्तुं परपरिकल्पितं द्रव्यमसत्, पर्यायव्यतिरिक्तत्वात्, बालत्वादिपर्यायशून्यवन्ध्यासुतवत् तथा परपरिकल्पिताः पर्याया असन्तः, द्रव्यव्यतिरिक्तत्वात्, वन्ध्यासुतगतबालत्वादिपर्यायवत्, उक्तञ्च "द्रव्यं पर्यायवियुतं, पर्याया द्रव्यवर्जिताः। क कदा केन किंरूपा ?, दृष्टा मानेन केन वा ? ॥१॥" इति कृतं प्रसङ्गेन, विस्तरार्थिना च धर्मसंग्रहणिटीका निरूपणीया। 'से तेणट्ठेणं' मित्याद्युपसंहारमाह, सेशब्दोऽथशब्दार्थः स चात्र वाक्योपन्यासे अथ 'एतेन' अनन्तरोदितेन कारणेन गौतम ! एवमुच्यते—स्यात् शाश्वती स्याद् शाश्वती, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधः सप्तमी पृथिवी, इह यद् यावत्सम्भवास्पदं तच्चेत्तावन्तं कालं शाश्वद्भवति तदा तदपि शाश्वतमुच्यते यथा तन्त्रान्तरेषु

श्री पन्नवरणा सूत्र

सूत्रम्-जीवे णं भंते! गतिचरमेणं किं चरमे ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे, नेरइए णं भंते ! गतिचरमेणं किं चरमे अचरिमे ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे एवं निरंतरं जाव वेमाणिए, नेरइया णं भंते ! गतिचरमेणं किं चरिमा अचरिमा ?, गो० ! चरिमावि अचरिमावि, एवं निरन्तरं जाव वेमाणिया। नेरइए णं भंते! ठितीचरमेणं किं चरमे अचरमे, ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे, एवं निरंतरं जाव वेमाणिया, नेरइयाणं भंते! ठितीचरमेणं किं चरमा अचरमा ?, गो० ! चरमावि अचरमावि, एवं निरंतर जाव वेमाणिया। नेरइये णं भंते! भवचरमेणं किं चरमे अचरमे ?, गो० !

सिय चरमे सिय अचरमे, एव निरंतरं जाव वेमाणिया, नेरइया णं भंते! भवचरमेणं किं चरमा अचरमा ?, गो० ! चरमावि अचरमावि, एवं निरंतरं जाव वेमाणिया। नेरइए णं भंते! भासाचरमेणं किं चरमे अचरमे ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे, एव निरंतरं जाव वेमाणिए, नेरइया णं भंते! भासाचरमेणं किं चरमा अचरमा गो० ! चरमावि अचरमावि, एवं जाव एगिंदियवज्जा, निरंतरं जाव वेमाणिया। नेरइए णं भंते! आणापाणुचरमेणं किं चरमे अचरमे ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे, एवं निरंतरं जाव वेमाणिए, नेरइया णं भंते! आणापाणुचरमेणं किं चरमा अचरमा ?, गो० ! चरमावि, एवं निरंतरं जाव वेमाणिया। नेरइए णं भंते! आहारचरमेणं किं चरमे अचरमे ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे, एवं निरंतर जाव वेमाणिए, नेरइया णं भंते! किं चरमा अचरमा ?, गो० ! चरमावि अचरमावि, एव निरंतर जाव वेमाणिया। नेरइए णं भंते! भावचरमेण किं चरमे अचरमे ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे, एव निरंतरं जाव वेमाणिया। भाव-

चरमेणं किं चरमा अचरमा ?, गो० ! चरमावि अचरमावि, एवं निरंतरं जाव वेमाणिया । नेरइए णं भंते ! वएणचरमेणं किं चरमे अचरमे ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे, एवं निरंतरं जाव वेमाणिए, नेरइया णं भंते ! वएणचरमेणं किं चरमा अचरमा ?, गो० ! चरिमावि अचरिमावि, एवं निरंतरं जाव वेमाणिया । नेरइए णं भंते ! गंधचरमेणं किं चरमे अचरमे ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे, एवं निरंतरं जाव वेमाणिए, नेरइया णं भंते ! गंधचरमेणं किं चरमा अचरमा ?, गो० ! चरमावि अचरमावि, एवं निरंतरं जाव वेमाणिया ! नेरइए णं भंते ! रसचरमेणं किं चरमे अचरमे ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे, एवं निरंतरं जाव वेमाणिए, नेरइयाणं भंते ! रसचरमेणं किं चरमा अचरमा ?, गो० ! चरमावि अचरमावि, एवं निरंतरं जाव वेमाणिया । नेरइएणं भंते ! फासचरमेणं किं चरमे अचरमे ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे, एवं निरंतरं जाव वेमाणिए नेरइयाणं भंते ! फास चरमेणं किं चरमा अचरमा ?, गो० ! चरमावि अचरमावि एवं जाव वेमाणिया । संगहणि

गाहा—"गतिठिइभवे य भासा आणापाणुचरमे य बोद्धव्वा। आहारभावचरमे वण्णरसे गंधफासे य ॥ १ ॥"

—श्री प्रज्ञापना सूत्र १०।१६० ॥

मूलम् जीवाणं भंते! किं भासगा अभासगा?, गो०। भासगावि अभासगावि, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति जीवा भासगावि अभासगावि?, गो०! जीवा दुविहा-पं०, तं० संसारसमावण्णगा य असंसारसमावण्णगा य तत्थ णं जे ते असंसारसमावण्णगा ते णं सिद्धा सिद्धा णं अभासगा, तत्थ णं जे ते संसारसमावण्णगा ते दुविहा पं०, तं—सेलेसीपडिवण्णगा य असेलेसीपडिवण्णगा य, तत्थ णं जे ते सेलेसिपडिवण्णगा ते णं अभासगा, तत्थ णं जे ते असेलेसिपडिवण्णगा, ते दुविहा—पं०, तं—एगिंदिया य अणेगिंदिया य तत्थ णं जे ते एगिंदिया ते णं अभासगा, तत्थ णं जे ते अणेगिंदिया ते दुविहा-पं०, तं- पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा तेणं अभासगा, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा ते णं भासगा, से एएणट्ठेणं गो०! एवं वुच्चति-जीवा भासगावि अभासगावि। नेरइया

णं भंते ! किं भासगा अभासगा ?, गोयमा ! नेरइया भासगावि अभासगावि ?, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति-नेरइया भासगावि अभासगावि ?, गो० ! नेरइया दुविहा-पं०, तं०-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा तेणं अभासगा, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा ते णं भासगा, से एएणट्ठेणं गो० ! एवं वुच्चति-नेरइया भासगावि अभासगावि, एवं एगिंदियवज्जाणं निरंतरं भाणियव्वं ॥

—श्री प्रज्ञापना सूत्र ११।१६६ ॥

श्री जम्बूद्वीप पण्णत्ति सूत्र

मूलम्–'तीसे णं जगईए उप्पि बहुमज्झदेस भाए एत्थ णं महई एगा पउमवरवेइया पण्णत्ता, अद्धजोयण उड्ढं उच्चत्तेणं पंच धनुसयाइं विक्खंभेणं जगई समिया परिक्खेवेणं सव्वरयणामई अच्छा जाव पडिरूवा। तीसे णं पउमवरवेइयाए अयमेवारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा–वइरामयाणेमा एवं जहा जीवाभिगामे जाव अट्ठो जाव धुवा णियया सासया जाव णिच्चा ॥

—श्री जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र वक्षस्कार १, सू० ४॥

टीका–पद्मवरवेदिकायाः शाश्वतं नामधेयं प्रज्ञप्तमिति, अयमभिप्रायः प्रस्तुतपुद्गलप्रचयविशेषे पद्मवरवेदिकेति शब्दस्य व्युत्पत्तिनिरपेक्षाऽनादि कालिना रूढिः प्रवृत्तिनिमित्तमिति, पउम-

वरवेइया णं भंते, 'ति पद्मवरवेदिका शाश्वती उताशाश्वती ? प्रत्ययेर्ङीर्न वा श्री सि० ८-३-३१ इत्यनेन प्राकृत सूत्रेण ङीप्रत्यस्यवैकल्पिकत्वेन आबन्ततयासूत्रे निर्देशः, किं नित्या उत अनित्येतिभावः, भगवानाह— गौतम ! स्याच्छाश्वती स्यादशाश्वती, कथञ्चिदनित्या कथञ्चिदनित्या, इत्यर्थः स्याच्छब्दोनिपातः कथञ्चिदित्येतदर्थ वाची, एतदेव सविशेषं जिज्ञासुः पृच्छति "से केणट्ठेणं मित्यादि" से शब्दोऽथ शब्दार्थः सच प्रश्ने, केनार्थेन— केन कारणेन भदन्त । एवमुच्यते, यथास्याच्छाश्वती स्यादशाश्वतीति भगवानाह—गौतम द्रव्यार्थतया शाश्वती तत्र द्रव्यं सर्वत्रान्वयि सामान्यमुच्यते, द्रवति गच्छति तान तान पर्यायान विशेषानिति वा द्रव्यमिति व्युत्पत्तेः द्रव्यमेवार्थः—तात्त्विकः पदार्थः प्रतिज्ञायां यस्य न तु पर्यायाः स द्रव्यार्थः ॥ द्रव्यमात्रास्तित्व प्रतिपादको नयविशेषः तद्भावो द्रव्यार्थतया—द्रव्यमात्रास्तित्व प्रतिपादक नयाभिप्रायेणेति यावत शाश्वती, द्रव्यार्थिकनय मत पर्यालोचनाया मुक्त स्वरूपस्य पद्मावरवेदिकाया आकारस्य सदाभावात ? तथा वर्णपर्यायैः कृष्णादिभिः गंधपर्यायैः सुरभ्यादिभिः रसपर्यायैः तिक्तादिभिः स्पर्शपर्यायैः कठिनत्वादिभिः अशाश्वती — अनित्या तेषां वर्णादीनां प्रतिक्षणं कियत् कालानन्तरं वाऽन्यथा भावनात, अतादवस्थ्यस्य चानित्यत्वात् नचैवमपिभिन्नाधि करणे नित्यत्वानित्यत्वेद्रव्यपर्याययोर्भेदाभेदोपगमात्, अन्यथोभयो-

रप्यसत्वापत्तेः तथाहि शक्यते वक्तु परपरिकल्पित द्रव्यमसत्, पर्यायतिरिक्तत्वात् बालत्वादिपर्याय शून्यवन्ध्या सुतवत्, तथा परपरि कल्पिताः पर्यायाः असंतोद्रव्यव्यरिरिक्तत्वात् वन्ध्यासुतगत्बालत्वादि पर्यायवत्, उक्तश्च. द्रव्यंपर्यायवियुतं पर्यायाः द्रव्यवर्जिताः कः कदा केन किं रूपाः दृष्टा मानेन केन वा ॥ १ ॥ इति कृतं प्रसङ्गेन. "से एएणट्ठेणं" मित्याद्युपसंहार वाक्यं सुगमं, इह द्रव्यास्तिकनयवादी स्वमत प्रतिष्ठापनार्थमेवमाह— नात्यन्तासत उत्पादो नापिसतो विद्यते विनाशो वा" नासतोविद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः, इति वचनात्, यौतुदृश्येते प्रतिवस्तु उत्पादविनाशौ तदाविर्भावतिरोभावमात्रं यथा सर्पस्य उत्फणत्वविफणत्वे तस्मात् सर्ववस्तुनित्यामिति, एवञ्चतन्मतचिन्तायां संशयः—किं घटादिवत् द्रव्यार्थतया शाश्वती उत सकलकालमेवं रूपेति ? ततः संशयापनोदार्थं भगवन्तं भूयः पृच्छति पउमरवेइया णं' मित्यादि, पद्मवरवेदिका णमिति पूर्ववत् भदन्त परम कल्याणयोगिन—कियच्चिरं —कियन्तं कालं यावद् भवति. एवंरूपा कियन्तं कालमवतिष्ठते इति भगवानाह—गौतम ! न कदाचिन्नासीत् सर्वदैवासीदिति भावः अनादित्वात्, तथा न कदाचिन्न भवति सर्वदैव वर्तमान काल चिन्तायां भवतीति भावः, सर्वदैव भावात् तथा न कदाचिन्न भविष्यति, किन्तु भविष्यच्चिन्तायां सर्वदैव भविष्यतीति प्रतिपत्तव्यम्, अपर्यवसितत्वात्, तदेवं कालत्रयचिन्तायां नास्तित्व

प्रतिषेधं विधाय संप्रत्यस्तित्वं प्रतिपादयति "भुविं च इत्यादि अभूच्च भवति च भविष्यतिचेति एवं त्रिकालावस्थायित्वात् ध्रुवा, मेर्वादिवत् ध्रुवत्वादेव सदैव स्वस्वरूपेतिनियता, नियतत्वादेव च शाश्वती—शश्वद्भवनस्वभावा शाश्वतत्वादेव च सततगङ्गा-सिन्धुप्रवाह प्रवृत्तावपि पौण्डरीक (पद्म) ह्रद इवानेक पुद्गल विघटेऽपि तावन्मात्रान्य पुद्गलोच्चटन संभवात्, अक्षया—न विद्यते क्षयो—यथोक्तस्वरूपाकार परिभ्रंशो यस्याः सा अक्षयत्वादेवाव्यया —अव्ययशब्दवाच्या, मनागपि स्वरूपचलनस्य जातुचिदप्य सम्भवात्, अव्ययत्वादेव स्वप्रमाणेऽवस्थिता मानुषोत्तरपर्वता-द्वहिः समुद्रवत्, एवं स्वस्वप्रमाणे सदावस्थानेन चिन्त्यमाना नित्या धर्मास्तिकायादिवत् ॥

सूत्रम्—जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे किं सासए असासए ?, गोयमा ! सिअ सासए सिअ असासए, से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ सिअ सासए सिअ असासए ?, गोयमा ! दव्वट्टयाए सासए वण्णपज्जवेहिं गंध० रस० फासपज्जवेहिं असासए, से तेणट्ठेणं गो० ! एवं वुच्चइ-सिय सासए सिअ असासए । जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे कालओकेवचिरंहोइ ?, गोयमा ! ण कयावि णासि ण कयावि णत्थि ण कयावि ण भविस्सइ, भुविं च भवइ अ भविस्सइ अ धुवे णिइए

सासए असासए अवट्ठिए णिच्चे जम्बुद्दीवे दीवे पण्णत्ते इति ॥ सूत्र १७५ ॥

मूलम्—जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे किं पुढविपरिणामे आउपरिणामे जीवपरिणामे पोग्गलपरिणामे ?, गोयमा ! पुढविपरिणामे आउपरिणामेवि जीवपरिणामेवि पुग्गलपरिणामेवि । जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे सव्वपाणा सव्वजीवा सव्वभूआ सव्वसत्ता पुढविकाइअत्ताए आउकाइअत्ताए तेउकाइअत्ताए वाउकाइअत्ताए वणस्सइकाइअत्ताए उववण्णपुव्वा ?, गो० ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो ॥

—श्री जम्बूद्वीप० व० ७ सूत्र १७४-१७६ ॥

टीका अथास्यैवशाश्वतभावादिकं प्रश्नयन्नाह—जम्बूद्दीवे-णं" मित्यादि, इदञ्च यथा प्राक् पद्मवरवेदिकाधिकारे व्याख्यातं तथाऽत्र जम्बूद्वीप व्यपदेशेनवोध्यमिति. एवञ्च शाश्वता शाश्वतो घटो निरन्वयविनश्वरो दृष्टः किमसावपि तद्वत् उत नेत्याह—जम्बूद्दीवे णं" मित्यादि, इदमपि प्राग् पद्मवरवेदिकाधिकारे व्याख्यातमिति । अथ किंपरिणामोऽसौद्वीप इतिपिपृच्छिषुराह—जम्बूद्दीवे णं भंते ! इत्यादिजम्बुद्वीपोभदन्त द्वीपः किं पृथिवीपरिणामः, पृथिवीपिण्डमयः किमप्परिणामः जलपिण्डमयः, एतादृशोच स्कंधावचितरजः स्कन्धादिवद् जीवपरिणामोवपि भवत इत्या-

शंक्याह—किं जीवपरिणामः जीवमयः घटादिरजीवपरिणामो-ऽपि भवती याशंक्याह—किं पुद्गलपरिणामः—पुद्गलस्कन्धनिष्पन्नः केवलपुद्गलपिण्डमय इत्यर्थः, तेजसस्त्वेकान्तसुषमादावनुत्पन्नत्वेन एकान्तदुष्षमादौ तु विध्वस्तत्वेन जम्बुद्वीपेऽस्य तत्परिणामेऽङ्गीक्रियमाणे कादाचित्कत्वप्रसङ्गः वायोस्त्वतिचलत्वेन तत्परिणामे द्वीपस्यापि चलत्वापत्तिरिति तयोः स्वत एव संदेहाविषयत्वेन न प्रश्नसूत्रे उपन्यासः, भगवानाह—गौतम ! पृथिवीपरिणामोऽपि पर्वतादिमत्त्वात् अप्परिणामोऽपि नदीह्रदादिमत्त्वात्—यद्यपि स्वसमये पृथिव्यप् कायपरिणामत्वग्रहणेनैव जीवपरिणामित्वं सिद्ध तथापि लौकिकयोर्जीवत्वस्याव्यवहारात् पृथग् ग्रहणं वनस्पत्यादीनां तु जीवत्व—व्यवहारः स्वपरसम्मत इति, पुद्गलपरिणामोऽपि मूर्तत्वस्य प्रत्यक्ष सिद्धत्वात्, कोऽर्थः ? जम्बुद्वीपोहि स्कन्धरूपः पदार्थः सचावयवैः समुदितैरेव भवति, समुदायरूपत्वात् समुदायिन इति अथ यदि चायं जीवपरिणामस्तर्हि सर्वे जीवा अत्रोत्पन्नपूर्वा उत नेत्याशंक्याह "जम्बुद्वीपे णं भंते" इत्यादि, जम्बुद्वीपे भदंत ! द्वीपे सर्वे प्राणाः द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः सर्वेजीवाः—पञ्चेन्द्रियाः सर्वेभूताः तरवः सर्वे सत्त्वाः पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकाः,—अनेन च सांव्यवहारिकराशिविषयकएवायं प्रश्नः, अत्रादि निगोद-निर्गतानामेव प्राणजीवादिरूपविशेष पर्यायप्रतिपत्तेः, पृथिवीकायिकतयाप्काय कायिकतयातेजस्कायिकतया वायुकायिकतया वनस्पति-

कायिकतया उपपन्नपूर्वाः—उत्पन्नपूर्वाः ? भगवानाह—"हंत गोयमा" एवं गौतम ! यथैवप्रश्नसूत्रं तथैवप्रत्युच्चारणीयं पृथिवीकायिकतया यावत् वनस्पतिकायिकतया उपपन्नपूर्वाः कालक्रमेण—संसारस्यानादित्वात्, न पुनः सर्वे प्राणादयो जीवविशेषा युगपदुत्पन्नाः सकलजीवानामेककालं जम्बुद्वीपपृथिव्यादिभावेनोत्पादे सकलदेवनारकादिभेदाभावप्रसक्तेः नचैतदस्ति तथा जगत्स्वभावादिति, कियतोवारानुत्पन्ना इत्याह—असकृत्—अनेकशः अथवा अनन्तकृत्वः—अनन्तवारान् संसारस्यानादित्वात् ॥

श्री उत्तराध्ययन सूत्र

मूलम्-धम्माधम्मागासा, तिन्निवि एए अणाइया।
अपज्जवसिया चेव, सव्वद्धं तु वियाहिया। ८॥
समएवि संतइं पप्प, एवमेव विआहिए। आएसं
पप्प साईए, सपज्जवसिएवि य ॥ ९ ॥

—श्री उत्तराध्ययन, बृहद्वृत्ति, अध्ययन, ३६ सूत्र ८-९ ॥

टीका-धर्मश्चाधर्मश्चाकाशं च धर्माधर्माकाशानि त्रीण्यप्येतानि, न विद्यन्ते आदिर्येषां तान्यनादिकानि, इयतः कालात् प्रभृत्यमूनि प्रवृत्तानीत्यसम्भवात् न पर्यवसितान्यपर्यवसितान्यनन्तानीतियावत्, न हि कुतश्चित्कालात् परतएतानि न भविष्यन्तीति सम्भवः, चैवौ प्राग्वत्, तथा च 'सर्वाद्धा' सर्वाकालं, कालात्यन्त संयोगे द्वितीया 'तुः' अवधारणेऽतः सर्वदा स्वस्वरूपापरित्यागतो नित्यानीतियावत्, 'व्याख्यातानि कथितानि, सर्वत्र लिङ्गव्यत्ययः प्राग्वत्, समयोऽपि 'सन्ततिम्' अपरापरोत्पत्तिरूपप्रवाहात्मिकां

आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति तया (ते) भावे पडुच्च साइअं सपज्जवसिअं, खाओवसमिअं पुण भावं पडुच्च अणाइअ अपज्जवसिअं अहवा भवसिद्धियस्स सुयं साइयं सपज्जवसिअं च, अभवसिद्धियस्य सुयं अणाइयं अपज्जवसिअ (च) सव्वागासपएसग्गं सव्वागासपएसेहिं अणंतगुणिअं पज्जवक्खरं निप्फज्जइ, सव्वजीवाणंपि अ णं अक्खरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडियो, जइ पुण सोऽवि आवरिज्जा तेणं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा, 'सुट्ठुवि मेहसमुदए होइ पभा चंदसूराणं' से तं साइअं सपज्जवसिअं, सेत्तं अणाइयं अपज्जवसिअ ॥

श्री नन्दी सूत्र ४३ ॥

टीका—अथ किं तत्सादि सपर्यवसितमनादि अपर्यवसितंच ? तत्र सहादिनावर्तते इतिसादि, तथा पर्यवसानंपर्यवसितं, भावे क्तः प्रत्ययः, सहपर्यवसितेनवर्तते इति सपर्यवसितं, आदिरहितमनादि, नपर्यवसितमपर्यवसितं, आचार्य आह— इत्येतत् द्वादशाङ्गगणिपिटकं "वोच्छिज्जित्ति नयट्ठाए" इत्यादिव्यवच्छित्ति प्रतिपादनपरोनयो व्यवच्छित्तिनयः पर्यायास्तिकनय इत्यर्थः तस्यभावो व्यवच्छित्तिनयार्थता तयापर्यायापेक्षयेत्यर्थः किमित्याह— सादि-

सपर्यवसितं नारकादिभव परिणत्यपेक्षया जीव इव, "अव्युच्छित्ति-नयट्ठयाए" ति अव्यवच्छित्ति प्रतिपादनपरो नयोऽव्यवच्छित्ति-नयार्थोद्रव्यमित्यर्थः । तद् भावस्तत्तया द्रव्यापेक्षया इत्यर्थः, किमित्याह अनादि अपर्यवसितं त्रिकालावस्थायित्वाज्जीववद् अधिकृतमेवार्थं द्रव्यक्षेत्रादिचतुष्टयमधिकृत्य प्रतिपादयति — तत श्रुतज्ञानं समासतः संक्षेपेण चतुर्विधं प्रज्ञप्तं तद्यथा द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतः भावतश्च तत्र द्रव्यतो 'ण' मिति वाक्यालंकारे सम्यक् श्रुतमेकं पुरुषं प्रतीत्य सादिसपर्यव सतं कथमिति चेत ? उच्यते, सम्यक्त्वावाप्तौ ततः प्रथमपाठतो वा सादि पुनर्मिथ्यात्वप्राप्तौ सति वा सम्यक्त्वे प्रमादभावतो महाग्लानत्वभावतो वा सुरलोकगमनसंभवतो वा विस्मृतिमुपागते केवलज्ञानोत्पत्तिभावतो वा सर्वथा विप्रनष्टे सपर्यवसितं बहून्पुरुषान कालत्रयवर्तिनः पुनः प्रतीत्यानाद्यपर्यवसितं सन्तानेन प्रवृत्तत्वात् कालवत् तथा क्षेत्रतो णमिति वाक्यालंकारे पञ्चभरतानि पञ्चैरवतानि प्रतीत्य सादिसपर्यवसानं, कथं ? उच्यते, तेषु क्षेत्रे ववसर्पिण्यां सुषमदुष्षमापर्यवसाने उत्सर्पिण्यान्तु सुषमा प्रारंभे तीर्थंकरधर्मसंघानां प्रथमतयोत्पत्तेःसादि, एकान्ते दुष्षमादौ च काले तदभावात् सपर्यवसितं, तथा महाविदेहान् प्रतीत्यानाद्यपर्यवसितं, तत्रप्रवाहापेक्षया तीर्थकरादीनामव्यवच्छेदात्, तथा कालतो णमिति वाक्यलंकारे,

अवसर्पिण्युत्सर्पिण्यौ च प्रत्येकं सादिसपर्यवसिते, तथाहि अवसर्पिण्यां तस्यामेव समाप्तौ सुषमसुषमातः सुषमसुषमातः सुषमा-रूपात् उत्सर्पिण्यां द्वयोः समयो दुःषमसुषमातः दुःषमसुषमातः पर्य-वसान न परतः, ततः सादिसपर्यवसितं. अत्रचोत्सर्पिण्यव सागरा स्वरूपज्ञापनार्थं कालचक्रं विंशतिसागरोपम कोटा कोटीप्रमाणं विनेयजनानुग्रहार्थं यथा भूतवस्तुस्वरूपा दर्शन तत्रादयस्मारकं-यामः—'चत्तारि सागरोवमकोडिकोडीओ संतइए उ । एगंतसुसमा खलु जिणेहि सव्वेहिं निद्दिट्ठा ॥ १ ॥ छाया— चतस्रः सागरोपम कोटी कोट्यः संतत्याम् । एकान्त सुषमा खलु जिनैः सर्वैर्निर्दिष्टा ॥ १ ॥ तीए पुरिसाणमाऊ तिन्नि उ पलियाइं तह पमाणं च । तिन्नेव गाउयाइं आइ समयंमि समयन्नू ॥ २ ॥ छाया तस्यां पुरुषाणामायुः त्रीणि च पल्योपमानि तथा प्रमाणञ्च । त्रीण्येव गव्यूतानि आदौ भणंति समयज्ञाः ॥ ॥ २ ॥ उपभोगपरिभोगा । जम्मंतर सुकयबीयजाया उ । कप्पतरुसमूहाओ होंति किलेसं विणा तेसिं ॥ ३ ॥ छाया उपभोगपरिभोगा जन्मान्तर सुकृतबीजजातास्तु । कल्पतरुसमूहात् भवन्त्यक्लेशं विनातेषाम् ॥ ३ ॥ ते पुण दसप्पयारा कप्पतरू समणसमयकेऊहिं । धीरेहिं-विनिद्दिट्ठा मणोरहा पूरगा एए ॥ ४ ॥ छाया—ते पुनर्दशप्रकाराः कल्पतरवः श्रमणसमयकेतुभिः । धीरैर्विनिर्दिष्टा मनोरथा पूरका एते ॥ ४ ॥ मत्तंगया य भिंगा तुडियंगा दीव जोइ चित्तंगा । चित्तरसा मणियंगा गेहागारा अणियण [ग] णाय ॥ ५ ॥

छाया—मत्ताङ्गदाश्च भृङ्गास्त्रुटिताङ्गा दीपज्योतिश्चाङ्गा । चित्र-
रसा मण्यङ्गा गृहाकारा अनग्नाश्च ॥ ५॥ मत्तंगएसु मज्जं भायणाणि-
भिंगेसु । तुडियंगेसु य संगयतुडियाणि बहुप्पगाराणि ॥ ६ ॥
छाया मत्ताङ्गदेषु मद्यं सुखपेयं भाजनानि भृङ्गेषु । त्रुटिताङ्गेषु च
संगतत्रुटितानि बहुप्रकाराणि ॥ ६ ॥ दीवसिहा जोइसनामया
य निच्चं करंति उज्जोयं । चित्तंगेसु य मल्लं चित्तरसा भोयणट्ठाए
॥ ७ ॥ छाया दीपशिखा ज्योतिर्नामकाश्च नित्यं कुर्वन्त्युद्योतम् ।
चित्राङ्गेषु च माल्यं चित्ररसा भोजनार्थाय ॥ ७ ॥ मणियंगेसु य
भूसणवराणि भवणाणि भवणरुक्खेसु । आइण्णेसु [अणियणेसु]
य इच्छिअव्वाणि बहुप्पगाराणि ॥ ८ ॥ छाया मण्यङ्गेषु च
भूषणवराणि भवनानि भवनवृक्षेषु । आकीर्णेषु च वस्त्राणि च
[प्राथितानि] वस्त्राणि बहुप्रकाराणि ॥ ८ ॥ एएसु य अन्नेसु
य नरनारि गणाण तासामुवभोगा । भविय पुणरभवरहिया इय
सव्वण्णु जिणा बिंति ॥ ९ ॥ छाया—एतेषु चान्येषु च नरनारी
गणानां तेषामुपभोगाः । भावितपुनर्भवरहिता इति सर्वज्ञजिना
ब्रुवते ॥ ९ ॥ नाभिस्सिण सागरोवमकोडाकोडी इकवीसगहिं ।
सुसमसुसमकखाया पवाहरूवेण धीरेहिं ॥ १० ॥ छाया नन-
स्मिन् सागरोपमकोटाकोटीमाना वीतरागैः । सुषमसुषमाख्याता
प्रवाहरूपेण धीरैः । १० ॥ तीए पुरिसाणमाउं दोन्नि उ पलियाइं तह
पमाणं च । दो चेव गाउयाइं आहु म ति समयन्नू ॥ ११ ॥

छाया—तस्यां पुरुषाणामायुः द्वे तु पल्योपमे तथा प्रमाणं च। द्वे एव गव्यूते आदेभणंति समयज्ञाः ॥ ११ ॥ उवभोगपरिभोगा तेसिंपि य कप्पपायवेहिंतो। होंति किलेसेण विनापायं पुण्णाणु-भावेणं ॥ १२ ॥ छाया—उपभोगपरिभोगास्तेषामपि च कल्प पादपेभ्यः। भवन्तिक्लेशेन विना प्रायः पुण्यानुभावेन ॥ १२ ॥ तो सुसमदुस्समाए पवाहरूवेण कोडिकोडीओ। अयराण दोन्नि सिद्धाजिणेहिं जियरागदोसेहिं ॥ १३ ॥ छाया—तदासुषमदुष्प-मायां प्रवाहरूपेण कोटीकोट्यौ ॥ अतरयोर्द्वे शिष्टे जिनैर्जितराग-द्वेषैः ॥ १३ ॥ तीए पुरिसाणमाउं एगं पलिअं तहा पमाणंच। एगंच गाउयं तीए आईए भणंति समयन्नु ॥१४॥ छाया — तस्यां पुरुषाणां आयुरेकं पल्योपमं तथा प्रमाणं च एकं च गव्यूतं तस्यां पुरुषाणां आदेभणंति समयज्ञाः। १४॥ उवभोगा तेसिंपि य कप्पपायवेहिंतो। होंति किलेसेणविणा नवरं पुण्णाणुभावेणं ॥ १५ ॥ छाया उपभोगपरिभोगा स्तेषामपि च कल्पपादपेभ्यः। भवन्तिक्लेशेनविना नवरं पुण्यानुभावेन ॥ १५ ॥ सूसमावसेसे पढमजिणो धम्मनायगो भयवं। उप्पण्णो सुहपुण्णो सिप्पकला-दंसओ—उसभो ॥ १६ ॥ छाया —सुपमदुष्पमावशेषे प्रथमजिनो धर्मनायकोभगवान। उत्पन्नः पूर्णशुभः शिल्पकलादर्शकावृषभः ॥ १६ ॥ तो दुसमसूसमूणा बायालीसाइ वरिससहसेहिं। सागर-कोडाकोडीएमेवजिणेहिं पण्णत्ता ॥ १७ । छाया—ततः दुष्पम-सुषमा ऊना द्विचत्वारिंशता वर्षसहस्त्रैः। सागरोपमकोटाकोटी

एवमेवजिनैः प्रज्ञप्ताः ॥ १७ ॥ तीए पुरिसाणमाउ पुव्वपमाणेण तह पमाणं च । धणुसंखा निद्दिट्ठं विसेस सुत्ताओ नायव्वं ॥ १८ ॥ छाया- तस्यां पुरुषाणामायुः पूर्वप्रमाणेन तथा प्रमाणं च धनुःसंख्यया निर्दिष्टं विशेषः सूत्रात् ज्ञातव्यः ॥ १८ ॥ उव भोगपरीभोगा पवरोसहिमाइएहिं विन्नेया । जिण चक्किवासुदेवा सव्वेऽवि इमाइ वोलिणा ॥ १८ ॥ छाया- उपभोगपरीभोगा प्रवरौषध्यादिभिर्विज्ञेयाः । जिनचक्रिवासुदेवाः सर्वेऽप्यस्यां व्यतिक्रान्ताः ॥ १९ ॥ इगवीसमहस्साइं वासाणं दूसमा इमीए उ । जीवियमाणुवभोगाइयाइं दीसंति हायंति ॥ २० ॥ छाया- एकविंशतिः सहस्राणि वर्षाणां दुष्षमाऽस्याः तु ॥ जीवितमानोपभोगादिकानि दृश्यन्ते हीयमानानि । एसा य कालदुयगा जीवपमाणाइएहिं निद्दिट्ठा । अइदूसमावि घोरा वासंसहस्साइं इगवीसा ॥ २१ ॥ छाया- अनयोः कालद्वयमा जीवित प्रमाणादिकैर्निर्दिष्टा । अतिदुःषमाऽपि (मार्गेति) घोरा वर्षसहस्राणि एकविंशतिः ॥ २१ ॥ ओसप्पिणीए एसो कालविभागो जिणेहिं निद्दिट्ठो । एसो च्चिय पडिलोमं विन्नेओस्सप्पिणीएऽवि ॥ २२ ॥ छाया- अवसर्पिण्यामेष कालविभागो जिनैर्निर्दिष्टः । एष एव प्रतिलोमो विज्ञेय उत्सर्पिण्यामपि ॥ २२ ॥ एयं तु कालचक्कं सिस्सजणाणुग्गहट्ठ छाया भणिअं संखेवेण महत्थो विसेस सुत्ताओ नायव्वो ॥ २३ ॥ छाया- एतत्कालचक्रं शिष्यजनानुग्रहार्थं भणितम् ।

संक्षेपेण महार्थविशेषसूत्रादवगन्तव्यः ॥ ७३ ॥ "नोउसप्पिणी" त्यादि. नोत्सर्पिणी नोअवसर्पिणी प्रतीत्यानाद्यपर्यवसितं. महाविदेहेषु नोत्सर्पिण्यवसर्पिणीरूपः कालः । तत्र च सद्भावस्थितं सम्यक्श्रुतमित्यनाद्यपर्यवसितं. तथाभावेन '[illegible]' इत्यादि. 'ये' इत्यादिनिर्दिष्टनिर्देशे ये केचन यदा पूर्वाह्णादौ जिनः प्रज्ञप्ता जिनप्रज्ञप्ता भावाः—पदार्थाः 'आघविज्जंति' त्ति प्राकृतत्वादाख्यायन्ते, सामान्यरूपतया विशेषरूपतया वा कथ्यन्ते इत्यर्थः प्रज्ञाप्यन्ते नामादिभेदप्रदर्शनेनाख्यायन्ते. तेषां नामादीनां भेदाः प्रदर्श्यन्ते तद्यथा, प्ररूप्यन्ते नामादिभेदस्वरूपकथनेन प्रख्यायन्ते नामादीनां भेदानां स्वरूपमाख्यायते इति भावार्थः. यथा—"पज्जायाणभिधेयं ठियमन्नत्थे तदत्थनिरवेक्खं । जाइच्छियं च नामं जाव दव्वं च पाएण ॥ १ ॥ छाया—पर्यायानभिधेय स्थितमन्यार्थे तदर्थनिरपेक्षम् । यादृच्छिकं च नाम यावद्द्रव्यञ्च प्रायेण ॥ १ ॥ जं पुण तदत्थसुन्नं तदभिप्पाएण तारिसागारं । कीरइ व निरागारं इत्तरमियरं च सा ठवणा ॥ २ ॥ छाया—यत् पुनस्तदर्थशून्य तदभिप्रायेण तादृशाकारम् । क्रियते वा निराकारमित्वरमितरञ्च सा स्थापना ॥ २ ॥" इत्यादि. तथा-दर्श्यन्ते उपमानमात्रप्रदर्शनेन प्रकटीक्रियन्ते, यथा गौस्तथा गवय, इत्यादि. तथा निदर्श्यन्ते— हेतुदृष्टान्तोपदर्शनेन स्पष्टीक्रियन्ते, उपदर्श्यन्ते उपनयनिगमनाभ्यां निःशङ्क शिष्यबुद्धौ स्थाप्यन्ते, अथवा उपदर्श्यन्ते सकलनयाभिप्रायतः-

गमात् प[illegible] लक्षण द्रव्यमभ्युपगन्तं, तेन भावेन तदा तस्मिन् काले तथा [illegible] मानान् पर्याय सादिसपर्यवसितं. एतदुक्तं भवति [illegible] पापकोपयोगं भावविशेष प्रयत्न[illegible] विशेष [illegible] सादिकं [illegible] पर्याय सादिस पर्यवसित उपयोगादि [illegible] अन्यथा भवनात् । उक्तं च

उपयोग [illegible] आत्मगर्भयाद्दृया य पट्ट [illegible] । [illegible] भावं साद्यसपर्यवसितं तस्मा ॥ १ ॥ क्षायोपशमिकभावं [illegible] प्रतीत्य [illegible] क्षायोपशमिक भावस्यानाद्यपर्यवसितत्वात् । [illegible] चतुर्भङ्गिका, तद्यथा सादिसपर्यवसितं १ [illegible] २ [illegible] ३ [illegible] ४, तत्र [illegible] —'अथवे' त्यादि, अथवेति प्रकारान्तरोपदर्शने भवसिद्धिकस्य सम्यक् श्रुतं सादि (स) पर्यवसितं सम्यक्त्वलाभे [illegible] भावात् भूयोमि [illegible] वा विनाशात् , द्वितीयस्तु भङ्गः शून्यो, नहि सम्यक् श्रुतं मिथ्याश्रुतं वा सादिकृत्वापर्यवसितं सम्भवति, मिथ्यात्व [illegible] सम्यक् श्रुतस्यविनाशात् , मिथ्याश्रुतस्यापि च सादिस्वरूप कालान्तरे सम्यक्त्वावाप्तावभावा-त इति. तृतीयभङ्गकस्तु मिथ्याश्रुतापेक्षयावेदितव्य , तथाहि—[illegible] मिथ्याश्रुतमनादि सम्यक्त्वावाप्तौ च [illegible] चतुर्भङ्गकं पुनरुपदर्शयति—'अभवे

त्यादि, अपर्यवसितः—अभव्यस्तस्य श्रुतं मिथ्याश्रुतमनादि-पर्यवसितं, तस्य सदैव सम्यक्त्वादिगुणहीनत्वात्, एषा चतु-र्भंगिका यथाश्रुतस्योक्तातथामतेरपिद्रष्टव्या, मतिश्रुतयोरन्योन्या-नुगतत्वात्, केवलमिहश्रुतस्य प्रक्रान्तत्वात्साक्षात्तस्यैव दर्शिता. अत्राह—ननुतृतीयभंगे चतुर्थभंगेवा श्रुतस्यानादिभाव उक्तः, सच जघन्य उत मध्यम आहोस्विदुत्कृष्ट ?, उच्यते, जघन्यो मध्य-मोवा न तूत्कृष्टो, यतस्तस्येदं मानं—'सव्वागासे' त्यादि, सर्वं च तदाकाशं च—सर्वाकाशं, लोकालोकाकाश मित्यर्थः, तस्य प्रदेशाः—निर्विभागाभागाः सर्वाकाशप्रदेशास्तेषामग्रं—प्रमाणं सर्वाकाश-प्रदेशाग्रं तत् सर्वाकाशप्रदेशैरनन्तगुणितम् अनन्तशोगुणित-मेकैकस्मिन्नाकाशप्रदेशेऽनन्तागुरुलघुपर्यायभावात्. पर्याया-ग्राक्षरं निष्पद्यते—पर्यायपरिमाणाक्षरं निष्पद्यते, इयमत्र भावना—सर्वाकाशप्रदेशपरिमाणं सर्वाकाशप्रदेशैरनन्तशोगुणितं यावत् परिमाणं भवति तावत् प्रमाणं सर्वाकाशपर्यायाणामग्रं भवति, एकैकस्मिन्नाकाशप्रदेशे यावन्तोऽगुरुलघु पर्यायास्ते सर्वेऽपि एकत्रपिण्डिता एतावन्तो भवन्तीत्यर्थः, एतावत् प्रमाणं चाक्षरं भवति, इह स्तोकत्वाद्धर्मास्तिकायादयः साक्षात् सूत्रे नोक्ताः, परमार्थतस्तुतेऽपि गृहीताद्रष्टव्याः, ततोऽयमर्थ—सर्वद्रव्यप्रदेशाग्रं सर्वद्रव्यप्रदेशैरनन्तशोगुणितं यावत् परिमाणं भवति तावत् प्रमाणं—सर्वद्रव्यपर्याय परिमाणं,—एतावत् परिमाणं चाक्षरं

भवति, तदपि चाक्षरं द्विधा ज्ञानमकारादिवर्णजातञ्च, उभयत्रापि अक्षरशब्दप्रवृत्ते रूढत्वात्. 'द्विविधमपि चेह गृह्यते, विरोधाभावात्, ननु ज्ञानं सर्वद्रव्यपर्य्यायपरिमाणं सम्भवतु, यतो ज्ञानमिहाविशेषोक्तौ सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणतुल्यताऽभिधानात् 'प्रक्रमाद् वा केवलज्ञानं गृह्यते, तच्च सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं घटतएव, तथाहि—यावन्तो जगतिरूपिद्रव्याणां ये गुरुलघुपर्याया ये च रूपिद्रव्याणामरूपिद्रव्याणां वाऽगुरुलघुपर्यायास्तान सर्वानपि साक्षात् करतलकलित मुक्ताफलमिव केवलालोकेन प्रतिक्षणमवलोकते भगवान, नच येन स्वभावेनैकंपर्यायं परिच्छिनन्ति तेनैव स्वभावेन पर्यायान्तरमपि, तयोः पर्याययोरेकत्त्वप्रसक्तेः, तथाहि—घटपर्यायपरिच्छेदनस्वभावं यज्ज्ञानं तद् यदा पटपर्यायं परिच्छेत्तुमलं तदा पटपर्यायाणामपि घटपर्यायरूपत्तापत्तिः अन्यथा तस्यतत्परिच्छेदकत्त्वानुपपत्तेः, तथा रूपस्वभावाभावात्, ततो यावन्तः परिच्छेद्याः पर्याया स्तावन्तः परिच्छेदकास्तस्य केवलज्ञानस्य स्वभावा वेदितव्याः, स्वभावाश्च पर्यायास्ततः पर्यायानधिकृत्य सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं केवलज्ञानमुपपद्यते, यदकारादिकं वर्णजातं तत् कथं सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणंभवितुमर्हति ?, तत्पर्यायराशेः सर्वद्रव्यपर्यायाणामनन्ततमे भागे वर्तमानत्वात्, तदयुक्तं, अकारादेरपिस्वपरपर्यायभेदभिन्नतया सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणतुल्यत्वात्; आह च भाष्यकृत्—"एक्केक्कमक्खरं पुण सपरपज्जायभेदओ

भिन्नं। तं सव्व दव्वपज्जायरासिमाणं मुणेयव्वं ॥ १ ॥ छाया—एकैकमक्षरंपुनः स्वपरपर्यायभेदतोभिन्नं। तत् सर्वद्रव्यपर्याय-राशिमानं ज्ञातव्यं ॥ १ ॥" अथकथंस्वपरपर्यायापेक्षया सर्व द्रव्य-पर्यायराशितुल्यता?, उच्यते, इह अ अ अ इत्युदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्च, पुनरप्येकैकोद्विधा—सानुनासिकोनिरनुनासिकश्चेत्यका-रस्यषड्भेदाः, तांश्चषड्भेदान अकारः केवलो लभते, एवंककारे-णापि संयुक्तो लभते षड्भेदानएवं खकारेण एवं यावद्धकारेण, एवमेकैककेवलव्यञ्जनसंयोगे यथा षट् २ भेदान लभते तथा सजातीय विजातीयव्यनञ्जद्विकसंयोगेऽपि, एवं स्वरान्तर संयुक्त तत्तद्व्यञ्जनसहितोऽप्यनेकान भेदान लभते, अपिच—एकैको-ऽप्युदात्तादिकोभेदः स्वरविशेषादनेकभेदोभवति, वाच्यभेदादपि समानवर्णश्रेणिकस्यापि शब्दस्यभेदो जायते, तथाहि—न येनैव स्वभावेन करशब्दः हस्तमाचष्टे तेनैव स्वभावेन किरणमपि, किन्तु स्वभावभेदेन, ततोऽकारोऽपि तेनतेन ककारादिना संयुज्यमानस्तं तमर्थं ब्रुवाणोभिन्नस्वभावो वेदितव्यः, ते च स्वभावा अनन्ता-ज्ञातव्याः, वाच्यस्यानन्तत्वात , एते च सर्वेऽप्यकारस्य स्वपर्यायाः, शेषास्तु सर्वेऽपि घटादिपर्याया आकारादिपर्यायाश्च परपर्यायाः, ते च स्वपर्यायेभ्योऽनन्तगुणाः तेऽपि चाकारस्य सम्बधिनोद्रष्टव्याः, आहच— ये स्वपर्यायास्ते तस्य संबन्धिनो भवन्तु, ये तु परपर्या-यास्ते विभिन्नवस्त्वाश्रयात्वात् कथं तस्यसंबन्धिनोव्यपदिश्यंते !,

उच्यते, इहद्विधासम्बन्धः—अस्तित्वेन नास्तित्वेन च, तत्रास्तित्वेन सम्बन्धः स्वपर्यायैः यथा घटस्यरूपादिभिः नास्तित्वेन संबन्धः परपर्यायैः तेषांतत्रासंभवात् यथा घटावस्थायां मृदः पिण्डाकारेण पर्यायेण यतएव च ते तस्य न सन्ति इति नास्तित्त्वसंबन्धेन सम्बद्धाः अतएव च ते परपर्याया एवंतेभवेयुः, ननु ये यत्रन विद्यन्ते ते कथं तस्येतिव्यपदिश्यंते ?, न खलुधनं दरिद्रस्य न विद्यते इति तत्तस्य संबन्धि व्यपदेष्टुम शक्यं, मा प्रापत लोकव्यवहारातिक्रमः, तदेतत् महामोहमूढमनस्कतासूचकं, यतो यदि नामते नास्तित्त्वसंबन्धमधिकृत्य तस्येति न व्यपदिश्यंते तर्हि सामान्यतो न सन्तीति प्राप्तं, तथा च स्वरूपेणापि न भवेयुः नचैतद्दृष्टमिष्टं वा, तस्मादवश्यंते नास्तित्त्वसंबन्धमङ्गीकृत्य तस्येति व्यपदेश्याः, धनमपि च नास्तित्त्वसंबंधमधिकृत्य दरिद्रस्येति व्यपदिश्यत एव, तथा च लोके वक्तारो—धनमस्यदरिद्रस्य न विद्यते इति, यदपि चोक्तं—'न तत्तस्येति व्यपदेष्टुं शक्य'मिति, तत्रापितदस्तित्त्वेन तस्येति व्यपदेष्टुं न शक्यं, न पुनर्नास्तित्वेनापि, ततो न कश्चिद्लौकिकव्यवहारातिक्रमः, ननु नास्तित्त्वमभावः अभावश्चतुच्छरूपः तुच्छत्वेन च सह कथं संबन्धः ?, तुच्छस्य सकलशक्तिविकलतया संबन्धशक्तेरप्यभावात् , अन्यच्च यदि परपर्य्यायाणां तत्र नास्तित्त्वं तर्हि नास्तित्त्वेन सह संबन्धो भवतु, परपर्य्यायैस्तु सह कथं ?, न खलु घटः पटाभावेन सहसं-

बद्धः पटेनापि सह सम्बद्धो भवितुमर्हति, तथा प्रतीतेरभावात्, तदेतदसमीचीनं, सम्यक्वस्तुतत्त्वापरिज्ञानात् तथाहि— नास्तित्वं नाम तेनतेन रूपेणाभवनमिष्यते, तच्च तेनतेन रूपेणाभवनं वस्तुनो धर्मः, ततोनैकान्तेन तत्तुच्छरूपमिति न तेन सह संबन्धाभावः, तदपि च तेनतेन रूपेणाभवनं तंतंपर्यायमपेक्ष्य भवति, नान्यथा, तथाहि—यो यो घटादिगतः पर्यायस्तेनतेनरूपेण मया न भवितव्यमिति सामर्थ्यात्तं तं पर्यायमपेक्षते इति सुप्रतीतमेतत्, ततस्तेन-तेन पर्यायेण भवनस्य तं तं पर्यायमपेक्ष्य संभवात्तेऽपि परपर्यायास्तस्योपयोगिन इति तस्येति व्यपदिश्यन्ते, एवंरूपायां च विवक्षायां पटोऽपि घटस्य संबन्धीभवत्येव, पटमपेक्ष्यघटेपटरूपेणा-भवनस्य भावात्, तथा च लौकिका अपि घटपटादीन परस्परमितरेतराभावमधिकृत्यसम्बद्धान व्यवहरन्तीत्यविगीतमेतत, इतश्च ते परपर्यायास्तस्येति व्यपदिश्यंते—स्वपर्यायविशेषणत्वेन तेषामुपयोगात्, इह ये यस्य स्वपर्यायविशेषणत्वेनोपयुज्यंते ते तस्य पर्याया यथा घटस्यरूपादयः पर्यायाः परस्पर विशेषकाः, उपयुज्यंते चाकारस्य पर्यायाणांविशेषकतया घटादिपर्यायाः, तानन्तरेण तेषां स्वपर्यायव्यपदेशासंभवात—तथाहि—यदि ते परपर्याया न भवेयु तर्ह्यकारस्य स्वपर्यायाः स्वपर्याया इत्येवं न व्यपदिश्येरन्, परापेक्षयाम्वव्यदेशस्यभावात्, ततः स्वपर्यायव्यपदेशकारणतयातेऽपिपरपर्यायास्तस्योपयोगिन इतितस्येति व्यपदि-

श्यंते, अपिचसर्ववस्तु प्रतिनियतस्वभावं, सा च प्रतिनियतस्वभावता प्रतियोग्यभावात्मकतोपनिबन्धना, ततो यावन्न प्रतियोगिज्ञानं भवति तावन्नाधिकृतं वस्तु तदभावात्मकं तत्त्वतो ज्ञातुं शक्यते, तथा च सति घटादिपर्यायाणामपि अकारस्य प्रतियोगित्वात्तदपरिज्ञाने नाकारो याथात्म्येनावगंतुं शक्यते इति घटादिपर्याया अपि अकारस्यपर्यायाः, तथाचात्र प्रयोगः—यदनुपलब्धौ यस्यानुपलब्धिः स तस्य संबन्धी यथा घटस्य रूपादयः,घटादिपर्यायानुपलब्धौ चाकारस्य न याथात्म्येनोपलब्धिरिति ते तस्य संबन्धिनः नचायमसिद्धोहेतुः, घटादिपर्यायरूपप्रतियोगिज्ञाने तदभावात्मकस्याकारस्य तत्त्वतोज्ञातत्वायोगादिति, आह च भाष्यकृत्—"जेसु अनाएसु तओ न नज्जए नज्जए य नाएसु । कह तस्स ते न धम्मा ?, घडस्सरूवाइधम्मव्व ॥ १ ॥ छाया ॥ येष्वज्ञातेषु स को न ज्ञायते ज्ञायते च ज्ञातेषु । कथं तस्य ते न धर्माः घटस्य रूपादि धर्मा इव ॥ १ ॥" तस्मात् घटादिपर्याया अपि अकारस्य संबन्धिन इति स्वपरपर्यायापेक्षयाऽकारः सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणः, एवमाकारादयोऽपि वर्णाः सर्वे प्रत्येकं सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणा वेदितव्याः एवं घटादिकमपि प्रत्येकं सर्व वस्तुजातं परिभावनीयं, न्यायस्य समानत्वात् , न चेतदनार्षं, यत उक्तमाचाराङ्गे—"जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ" अस्यायमर्थः—य एकं वस्तूपलभते सर्वपर्यायैः

स नियमात् सर्वमुपलभते, सर्वोपलब्धिमन्तरेण विवक्षितस्यै-कस्य स्वपरपर्यायभेदभिन्नतया सर्वात्मनावगन्तुमशक्यत्वात्, यश्च सर्वं सर्वात्मना साक्षादुपलभते स एकं स्वपरपर्यायभेदभिन्नं जानाति. तथाऽन्यत्राप्युक्तं "एकोभावः सर्वथा येन दृष्टः, सर्वे-भावाः सर्वथा तेनदृष्टाः। सर्वेभावाः सर्वथा येन दृष्टाः, एको-भावः सर्वथा तेन दृष्टः ॥ १ ॥" तदेवमकारादिकमपिवर्णजातं केवलज्ञानमिव सर्वद्रव्यपर्याय परिमाणमिति न कश्चिद्विरोधः। अपि च केवलज्ञानमपि स्वपरपर्यायभेदभिन्नं यतस्तदात्मस्वभा-वरूपं न घटादि वस्तु स्वभावात्मकं ततो ये घटादिस्वपर्याया-स्ते तस्यपर्यायाः ये तु परिच्छेदकत्वस्वभावास्ते स्वपर्यायापर-पर्यायाः अपि चपूर्वोक्तयुक्तेस्तस्यसंबन्धित्वं इति स्वपरपर्यायभेद-भिन्नं तथा चाह —भाष्यकृत्—वत्थुसहावं पइ तंपि सपरपज्जायभेद-भिन्नंतु। तं जेण जीयभावो भिन्ना य तओ घडाईया ॥ १ ॥ छाया, वस्तुस्वभावं प्रति तदपि स्वपरपर्यायभेदभिन्नं तु। तत येन जीवभावः भिन्नाश्च ततो घटादिकाः ॥ ततः पर्यायपरिमाणचिन्ता-यां परमार्थतो न कश्चिदकारादिश्रुत केवलज्ञानयोर्विशेषः, अयंतु विशेषः- केवल ज्ञानं स्वपर्यायैरपि सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणतुल्यम-कारादि कं तु स्वपरपर्यायैरेव, तथाहि—अकारस्य स्वपर्यायाः सर्वद्र-व्यपर्यायाणामनन्ततमभागकल्पाः, परपर्यायास्तु स्वपर्यायरूपानन्तत-मभागोनः सर्वद्रव्यपर्यायाः; ततः स्वपरपर्यायैरेव सर्वद्रव्यपर्याय-

परिमाणमकारादिकं भवति. आह च भाष्यकृत् -सय पज्जाएहि उ केवलेण तुल्लं न होइ न परेहिं। सयपरपज्जाएहिं तु तं तुल्लं केवलेणेव ॥ १ ॥ छाया ॥ स्वपर्यायैस्तु केवलेन तुल्यं न भवति न परैः। स्वपरपर्यायैस्तु तत्तुल्यं केवलेनैव ॥ १ ॥ यथा चाकारादिकं सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं तथा मत्यादीन्यपि ज्ञानानिद्रष्टव्यानि न्यायस्य समानत्वात् ॥ इह यद्यपि सर्वं ज्ञानमविशेषेणाक्षरमुच्यते, सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं च भवति तथापिश्रुताधिकारादिहाक्षरं श्रुतज्ञानमवसेयं, श्रुतज्ञानञ्चमतिज्ञानाविनाभूतंततो मतिज्ञानमपि तदेव यतः श्रुतज्ञानमकारादिकं चोक्तं तः सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं तच्च सर्वोत्कृष्टश्रुतकेवलिनो द्वादशाङ्गविदः संगच्छते न शेषस्य, ततोऽनादिभावः श्रुतस्य जन्तूनां जघन्योमध्यमो वाद्रष्टव्यः तदुत्कृष्ट इतिस्थितम। अपर आह नन्वनादिभाव एव श्रुतस्य कथमुपपद्यते ?. यावता यदा प्रबलश्रुतज्ञानावरणस्त्यानर्द्धि निद्रारूपदर्शनावरणादयः संभवन्ति तदासंभाव्यते साकल्येन श्रुतस्यावरणं यथाऽवध्यादि ज्ञानस्य ततोऽवध्यादिज्ञानमिवासादिसदेवयुज्यते श्रुतमपि नानादिसदिति कथं तृतीयचतुर्थभंगसंभवः ?, ततआह 'सव्वजीवाणंपि' सर्वजीवानामपि, णमितिवाक्यालंकारे अक्षरस्य—श्रुतज्ञानस्य (श्रुतसंतुलित केवलस्येति तु भाष्यकृत्) श्रुतज्ञानं च मतिज्ञानाविनाभावि ततो मतिज्ञानस्यापि अनन्तोभागः 'नित्योद्घाटितः' सर्वदैवानावृतः सोऽपिचअनन्त-

तमोभागोऽनेकविध, तत्र सर्वजघन्यश्चैतन्यमात्रं, तत् पुनः सर्वोत्कृष्टश्रुतावरणस्त्यानर्द्धिनिद्रोदय भावेऽपि नाव्रियते।, तथा जीवस्वाभाव्यात्, तथा चाह— जइ पुण' इत्यादि, यदि पुनः सोऽपि अनन्ततमोभाग आव्रियते तेनतर्हि जीवोऽजीवत्वंप्राप्नुयात्, जीवोहिनाम चैतन्यलक्षणस्ततो यदिप्रबलश्रुतावरणस्त्यानर्द्धि निद्रोदयभावेचैतन्यमात्रमप्याव्रियेत तर्हि जीवस्यस्वभावपरित्यागादजीवतैव सम्पद्येत, नचैतद्दृष्टमिष्टं वा, सर्वस्य सर्वथा स्वभावातिरस्कारात्, अत्रैवदृष्टान्तमाह—'सुट्ठवी' त्यादि, सुष्ठ्वपि मेघसमुदये भवति प्रभाचन्द्रसूर्ययोः इयमत्रभावना—यथा निबिडनिबिडतर मेघपटलैराच्छादितयोरपि सूर्याचन्द्रमसोर्नैकान्तेन तत् प्रभानाशः संपद्यते, सर्वस्य सर्वथा स्वभावापनयनस्य कर्तुमशक्यत्वात्, एवमनन्तानन्तैरपि ज्ञानदर्शनावरण कर्मपरमाणुभिरेकैकस्यात्मप्रदेशस्याऽऽवेष्टितस्यापि नैकान्तेन चैतन्यमात्रस्या(प्य) भावोभवति ततो यत्सर्वजघन्यं तन्मतिश्रुतात्मकतः सिद्धोऽक्षरस्यानन्ततमोभागोनित्योद्घटितः, तथाच सति मतिज्ञानस्य श्रुतज्ञानस्य चानादिभावः प्रतिपद्यमानो न विरुध्यते इतिस्थितम्। 'सेत्त' मित्यादि, तदेतत् सादिसपर्यवसित मनाद्यपर्यवसितं च ॥ इति श्री नन्दीसूत्रेऽक्षरानन्तभागस्य नित्योद्घाटिता समाप्ता

मूलम्—इच्चेइयंमि दुवालसंगे गणिपिडगे अणंता भावा अणंता अभावा अणंताहेऊ अणंता कारणा अणंता

अकारणा अणंता जीवा अणंता अजीवा अणंता भवसिद्धिया अणंता अभवसिद्धिया अणंता सिद्धा अणंताअसिद्धा पण्णत्ता--'भावमभावाहेऊमहेऊ कारणमकारणे चेव ' जीवाजीवा भविअमभविआ सिद्धा असिद्धाय ॥ श्रीनन्दीसूत्र, गाथा ८५ ॥

टीका—'इत्येतस्मिन् द्वादशाङ्गे गणिपिटके' एतत्पूर्ववदे-वव्याख्येयं, अनन्ता भावा—जीवादयः पदार्थाः, प्रज्ञप्ताः इति योगः, तथा अनन्ता अभावाः—सर्वभावानां पररूपेणासत्त्वात् त एवानन्ता अभावा द्रष्टव्याः, तथाहि—स्वपरसत्ताभावाभावात्मकं वस्तुतत्त्वं, यथा जीवो जीवात्मना भावरूपो अजीवात्मना चा-भावरूपः, अन्यथाऽजीवत्वप्रसङ्गात् . अत्र बहुवक्तव्यं तत्तु नो-च्यते ग्रन्थगौरवभयादिति. तथाऽनन्ता 'हेतवो' हिनोति—गम-यति जिज्ञासितधर्म्मविशिष्टमर्थमिति हेतुः, ते चानन्ताः, तथाहि-वस्तुनोऽनन्ता धर्मास्ते च तत्प्रतिबद्धधर्मविशिष्टवस्तुगमकास्त-तोऽनन्ता हेतवो भवन्ति. यथोक्तहेतुप्रतिपक्षभूता अहेतवः तेऽ-पि अनन्ता, तथा अनन्तानि कारणानि—घटपटादीनां निर्व-र्त्तकानि मृत्पिण्डतन्त्वादीनि अनन्तान्यकारणानि, सर्वेषामपि कारणानां कार्यान्तराण्यधिकृत्याकारणत्वात् , तथा जीवाः—प्रा-णिनः, अजीवाः—परमाणुद्व्यणुकादयः, भव्याः—अनादिपारि-णामिकसिद्धि गमनयोग्यतायुक्ताः, तद्विपरीताअभव्याः, सिद्धा-

अपगतकर्ममलकलङ्काः, असिद्धाः—संसारिणः, एते सर्वेऽप्यनन्ताः प्रज्ञप्ताः, इह भव्याभव्यानामानन्त्येऽभिहितेऽपि यत्पुनरसिद्धा इत्यभिहितं तत् सिद्धेभ्यः संसारिणामनन्तगुणताख्यापनार्थं ॥

॥ वन्देवीरम् ॥

अथ प्रज्ञापनोपाङ्गे पञ्चमं पर्यायपदम्

मूलम्–कइविहा णं भंते! पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा! दुविहा पज्जवा पन्नत्ता, तंजहा–जीवपज्जवा य अजीवपज्जवा य। जीवपज्जवा णं भंते! किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता ?, गोयमा! नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–जीवपज्जवा नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता ?, गोयमा! असंखिज्जा नेरइया असंखिज्जा असुरकुमारा असंखिज्जा नागकुमारा असंखिज्जा सुवण्णकुमारा असंखिज्जा विज्जुकुमारा असंखिज्जा अगणिकुमारा असंखिज्जा दीवकुमारा असंखिज्जा उदहिकुमारा असंखिज्जा दिसीकुमारा असंखिज्जा वाउकुमारा असंखिज्जा थणियकुमारा असंखिज्जा पुढविकाइया असंखिज्जा आउकाइया असंखिज्जा

तेउकाइया असंखिज्जा वाउकाइया अणंता वणप्फइ काइया असंखेज्जा बेइंदिया असंखेज्ज तेइंदिया असंखेज्जा चउरिंदिया असंखेज्जा पंचिंदियतिरिक्खजोणिया असंखेज्जा मणुस्सा असंखेज्जा वाणमंतरा असंखेज्जा जोइसिया असंखेज्जा वेमाणिया अणंता सिद्धा से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ तेणं नो संखिज्जा नो असंखिज्जा अणंता ॥ सूत्र १०३।

टीका– कइविहा णं भंते ! पज्जवा पन्नत्ता ?' इति, अथ केनाभिप्रायेण गौतमस्वामिना भगवानेवं पृष्टः ? उच्यते, उक्तमादौ प्रथमे पदे प्रज्ञापना द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—जीव प्रज्ञापना अजीवप्रज्ञापना चेति, तत्र जीवाश्चाजीवाश्च द्रव्याणि, द्रव्यलक्षणं चेदम्– 'गुणपर्यायवद्द्रव्य' मिति (तत्वा० अ० ५ सू० ३१) ततो जीवाजीवपर्यायभेदावगमार्थमेवं पृष्टवान्, तथा च भगवानपि निर्वचनमेवमेवाह–'गोयमा !' दुविहा पज्जवा पन्नत्ता, तंजहा जीवपज्जवा य अजीवपज्जवा य इति, तत्र पर्याया गुणाविशेषा धर्मा इत्यनर्थान्तरं, ननु सम्बन्धं प्रतिपादयतोक्तम्—इह त्वौदयिकादिभावाश्रयपर्यायपरिमाणावधारणं प्रतिपाद्यते, इति, औदयिकादयश्च भावा जीवाश्रयाः ततो जीवपर्याया एव गम्यन्ते अथ चास्मिन्निर्वचनसूत्रे द्वयानामपि पर्याया उक्ता ततो न सुन्दरः सम्बन्धः, तदयुक्तम्, अभिप्रायापरिज्ञानात्, औदयि-

को हि भावः पुद्गलवृत्तिरपि भवति, ततो जीवाजीवभेदेनौद-यिकभावस्य द्वैविध्याम्न सम्बन्धकथननिर्वचनसूत्रयोर्विरोधः । सम्प्रति सम्बन्ध (पर्याय) परिमाणावगमाय पृच्छति-'जीव-पज्जवा णं भंते ! किं संखेज्जा' इत्यादि, इह यस्माद्वनस्पति-सिद्धवर्जाः सर्वेऽपि नैरयिकादयः प्रत्येकमसंख्येयाः मनुष्येष्वसं-ख्येयत्वं संमूर्च्छिममनुष्यापेक्षया वनस्पतयः सिद्धाश्च प्रत्येकम-नन्ताः ततः पर्यायिणामनन्तत्वाद् भवन्त्यनन्ता जीवपर्यायाः ॥ तदेवं गौतमेन सामान्यतो जीवपर्याया पृष्टाः भगवानपि सा-मान्येन निर्वचनमुक्तवान, इदानीं विशेषविषयं प्रश्नं गोतम-आह—

मूलम्—नेरइयाणं भंते ! केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! अणंतापज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ नेरइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! नेरइए नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएस-ट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे असंखिज्जइभागहीणे वा संखिज्जइभागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा असं-खिज्जगुणहीणे वा अह अब्भहिए असंखिज्जइभाग-मब्भहिए वा संखिज्जइभागमब्भहिए वा संखिज्ज-गुणमब्भहिए वा असंखिज्जगुणमब्भहिए वा, ठिईए सिय हीणे सियतुल्ले सियअब्भहिए जइहीणे

असंखिज्जइभागहीणे वा, संखिज्जइभागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा असंखिज्जगुणहीणे वा अह अब्भहिए असंखिज्जभागमब्भहिए वा संखिज्जभागमब्भहिए वा संखिज्जगुणमब्भहिइ वा असंखिज्जगुणमब्भहिए वा कालवण्णपज्जवेहिं सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए, जइहीणे अणंतभागहीणे वा असंखेज्ज भागहीणे संखेज्जभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा अणंतगुणहीणे वा अह अब्भहिए अणंतभागमब्भहिए वा असंखेज्जभागमब्भहिए वा संखेज्जभागमब्भहिए वा संखेज्जगुणमब्भहिय वा असंखेज्जगुणमब्भहिए वा अणंतगुणमब्भहिए वा, नीलवण्णपज्जवेहिं लोहियवण्णपज्जवेहिं पीयवण्णपज्जवेहिं हालिद्दवण्णपज्जवेहिं सुक्किलवण्णपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए सुब्भिगंधपज्जवेहिं दुब्भिगंधपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए, तित्तरसपज्जवेहिं कडुयरसपज्जवेहिं कसायरसपज्जवेहिं अंबिलरसपज्जवेहिं महुररसपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, कक्खडफासपज्जवेहिं मउयफासपज्जवेहिं गरुयफासपज्जवेहिं लहुयफासपज्जवेहिं सीयफासपज्जवेहिं उसिण फासपज्जवेहिं निद्धफासपज्जवेहिं लुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, आभिणिबोहियनाण-

पज्जवेहिं सुयनाणपज्जवेहिं ओहिनाण पज्जवेहिं मइ-अन्नाणपज्जवेहिं सुयअन्नाणपज्जवेहिं विभंगनाणपज्ज-वेहिं चक्खुदंसणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं ओहिदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एव वुच्चइ नेरइयाणं नो संखेज्जा नो असं-खेज्जा अणंता पज्जवा पन्नत्ता । (सू० १०४)

टीका 'नेरइयाणं भंते ! केवइयापज्जवा पन्नत्ता' इति, अथकेनाभिप्रायेणैवं गौतमः पृष्टवान ?, उच्यते, पूर्वं किल सामान्यप्रश्ने पर्यायिणामनन्तत्वात् पर्यायाणामानन्त्यमुक्तं, यत्र पुनः पर्यायिणामानन्त्यं नास्ति तत्र कथमिति पृच्छति—'नेर-इयाणं' इत्यादि, तत्रापि निर्वचनमिदम् 'अनन्ता' इति, अत्रैव जातसंशयः—प्रश्नयति—'सेकेणट्ठेणं भंते !' इत्यादि, अथ के-नार्थेन—केन कारणेन केन हेतुना भदन्त ! एवमुच्यते नैर-यिकाणां पर्याया एवम्—अनन्ता इति ?' भगवानाह गोयमा ! नेर-इए नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, इत्यादि, अथ पर्यायाणामान-न्त्यं कथं घटते इतिपृष्टे तदेव पर्यायाणामानन्त्यं यथा यु-क्त्युपपन्नं भवति तथा निर्वचनीयं नान्यत् ततः केनाभिप्रा-येण भगवतैवनिर्वचनमवाचि—नैरयिको नैरयिकस्यद्रव्यार्थतया तुल्य इति ! उच्येत, एकमपिद्रव्यमनन्तपर्यायमित्यस्य न्यायस्य प्रदर्शनार्थं तत्र यस्मादिदमपि नारक जीवद्रव्यमेकसंख्याऽवरुद्ध-

मिति नैरयिको नैरयिकस्यद्रव्यार्थतया तुल्यः, द्रव्यमेवार्थोद्रव्यार्थः तद्भावो द्रव्यार्थता तया द्रव्यार्थतया तुल्यः एवं तावतद्रव्यार्थतया तुल्यत्वमभिहितं, इदानीं प्रदेशार्थतामधिकृत्य तुल्यत्वमाह—'पएसट्ठयाए तुल्ले' इदमपि नारकजीवद्रव्यं लोकाकाशप्रदेशपरिमाणप्रदेशमितिप्रदेशार्थतयापि नैरयिको नैरयिकस्य तुल्यः, प्रदेशएवार्थः तद्भावः प्रदेशार्थता तया प्रदेशार्थतया, कस्मादभिहितमिति चेत्उच्यते, द्रव्यद्वैविध्यप्रदर्शनार्थं, तथाहि—द्विविधं द्रव्यं-प्रदेशवत् अप्रदेशवच्च, तत्र परमाणुरप्रदेशः, द्विप्रदेशत्रिप्रदेशादिकं तु प्रदेशवत्, एतच्चद्रव्यद्वैविध्यं पुद्गलास्तिकाय एव भवति, शेषाणि तु धर्मास्तिकायादीनि द्रव्याणि नियमात् सप्रदेशानि, 'ओगाहणट्ठयाए सियहीणे' इत्यादि, नैरयिकोऽसंख्यातप्रदेशोऽपरस्य नैरयिकस्य तुल्यप्रदेशस्य अवगाहनमवगाहः शरीरोच्छ्रयः अवगाहनमेवार्थोऽवगाहनार्थस्तद्भवोऽवगाहनार्थता तया अवगाहनार्थतया 'सिय हीणे' इत्यादि, स्याच्छब्दः प्रशंसाऽस्तित्वविवादविचारणाऽनेकान्तसंशयप्रश्नादि वर्थेपु, अत्राऽनेकांतद्योतकस्य ग्रहणं, स्याद्धीनः अनेकांतेनहीन इत्यर्थः, स्यात्तुल्यः—अनेकान्तेन तुल्य इत्यर्थः, स्याद्भ्यधिकः अनेकान्तेनाभ्यधिक इति भावः, कथमिति चेत्, उच्यते, यस्माद्वक्ष्यति रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भवधारणीयस्यवैक्रियशरीरस्य जघन्येनावगाहनाया अङ्गुलस्याऽसंख्येयो भागः उत्कर्षतः सप्त धनूंषि

अयो हस्ताः षट् चाङ्गुलानि, उत्तरोत्तरासु च पृथिवीषु द्विगुणं २ यावत् सप्तमनरकपृथिवीनैरयिकाणां जघन्यतोऽवगाहनाङ्गुलस्यासंख्येयो भागः उत्कर्षतः पञ्चधनुः शतानीति. तत्र 'जइ हीणे' इत्यादि. यदि हीनस्ततोऽसंख्येयभागहीनो वा स्यात् संख्येयभागहीनो वा संख्येयगुणहीनो वा स्यात् असंख्येयगुणहीनो वा, अथाभ्यधिकस्ततोऽसंख्येयभागाभ्यधिको वा स्यात् संख्येयभागाभ्यधिको वा संख्येयगुणाभ्यधिको वा असंख्येयगुणाभ्यधिको वा, कथमिति चेत्? उच्यते, एक किल नारकः उच्चैस्त्वेन पञ्च धनुःशतानि अपरस्तान्येवाङ्गुलासंख्येयभागहीनानि, अङ्गुलासंख्येयभागश्च पञ्चानां धनुः—शतानां असंख्येये भागे वर्त्तते तेन सोऽङ्गुलासंख्येयभागहीन पञ्च धनुःशतप्रमाणः अपरस्यपरिपूर्णपञ्चधनुः शतप्रमाणस्यापेक्षयाऽसंख्येयभागहीनः, इतरस्त्वितरापेक्षया असंख्येयभागाभ्यधिकः तथा एकः पञ्चधनुःशतान्युच्चैस्त्वेन अपरस्तान्येव द्वाभ्यां त्रिभिर्वा धनुर्भिन्यूनानि ते च द्वे त्रीणि वा धनूंषि पञ्चानां धनुःशतानां संख्येयभागे वर्त्तन्ते ततः सोऽपरस्य परिपूर्णपञ्चधनुःशतप्रमाणस्यापेक्षया संख्येयभागहीनः, इतरस्तु परिपूर्णपञ्चधनुःशतप्रमाणस्तदपेक्षया संख्येयभागाभ्यधिकः तथा एक पञ्चविंशं धनुःशतमुच्चैस्त्वेनापरः परिपूर्णानि पञ्चधनुःशतानि, पञ्चविंशं च धनुःशतं चतुर्भिर्गुणितं पञ्च धनुःशतानि भवन्ति ततः पञ्चविंशत्यधिकधनुःशतप्रमाणोच्चै-

स्त्वेऽप्यपरस्य परिपूर्णपञ्चधनुःशतप्रमाणस्यापेक्षया संख्येयगुणहीनो भवति तदपेक्षया त्वितरः परिपूर्णपञ्चधनुःशतप्रमाणः संख्येयगुणाभ्यधिकः, तथा एकोऽपर्याप्तावस्थायामङ्गुलस्यासंख्येयभागावगाहे वर्तते अन्यस्तु पञ्चधनुःशतान्युच्चैस्त्वेन, अङ्गुलासंख्येयभागश्चासंख्येयेन गुणितः सन् पञ्चधनुःशतप्रमाणो भवति, ततोऽपर्याप्तावस्थायामङ्गुलासंख्येयभागप्रमाणेऽवगाहे वर्तमानः परिपूर्णपञ्चधनुःशतप्रमाणापेक्षया असंख्येयगुणहीनः, पञ्चधनुःशतप्रमाणस्तु तदपेक्षयाऽसंख्येयगुणाभ्यधिकः । 'ठिइए सिय हीणे' इत्यादि यथाऽवगाहनया हानौ वृद्धौ च चतुःस्थानपतितउक्तस्तथा स्थित्याऽपि वक्तव्य इति भावः एतदेवाह—'जइ हीणे' इत्यादि तत्रैकस्य किल नारकस्य त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः अपरस्य तु तान्येव समयादिन्यूनानि, तत्र यः समयादिन्यूनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणस्थितिकः स परिपूर्णत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिकनारकापेक्षयाऽसंख्येयभागहीनः परिपूर्णत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिकस्तु तदपेक्षयाऽसंख्येयभागाभ्यधिकः, समयादेः सागरोपमापेक्षयाऽसंख्येयभागमात्रत्वात्, तथाहि—असंख्येयैः समयैरेकाऽऽवलिका संख्याताभिरावलिकाभिरेक उच्छ्वासनिश्वासकालः सप्तभिरुच्छ्वासनिश्वासैरेकः स्तोकः सप्तभिः स्तोकैरेको लवः सप्तसप्तत्या लवानामेको मुहूर्त्तः त्रिंशता मुहूर्त्तैरहोरात्रः पञ्चदशभिरहोरात्रैः पक्षः द्वाभ्यां पक्षाभ्यां मासः द्वादशभिर्मासैः सम्वत्सरः असं-

ख्येयै समयसमैः पल्योपमसागरोपमाणि, समयाऽवलिकोच्छ्वास-मुहूर्त्तदिवसाहोरात्रपक्षमाससंवत्सरयुगैः हीनः परिपूर्णस्थितिकनारकापेक्षया ऽसंख्येयभागहीनो भवति तदपेक्षयाऽपि तरोऽसंख्येय-भागाभ्यधिकः, तथा एकस्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि स्थितिः परस्य तान्येव पल्योपमैन्यूनानि, दशभिश्च पल्योपमकोटीकोटी-भिरेकं सागरोपमं निष्पद्यते, ततः पल्योपमैन्यूनस्थितिक परिपूर्णस्थितिकनारकापेक्षया संख्येयभागहीन परिपूर्णस्थितिकस्तु तदपेक्षया संख्येयभागाभ्यधिकः तथैकस्य सागरोपममेकं स्थितिः अपरस्य परिपूर्णानि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, तत्रैकसागरोपम-स्थितिकः परिपूर्णस्थितिकनारकापेक्षया संख्येयगुणहीनः एकस्य सागरोपमस्य त्रयस्त्रिंशता गुणने परिपूर्णस्थितिकत्वप्राप्तेः, परिपूर्णस्थितिकस्तु तदपेक्षया संख्येयगुणाभ्यधिकः, तथैकस्य दशवर्षसहस्राणि स्थितिः अपरस्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, दश वर्षसहस्राण्यसंख्येयरूपेण गुणकारेण गुणितानि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि भवन्ति, ततो दशवर्षसहस्रस्थितिकः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिकनारकापेक्षयाऽसंख्येयगुणहीनः तदपेक्षया तु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिकोऽसंख्येयगुणाभ्यधिक इति, तदेवमेकस्य नारकस्यापरनारकापेक्षया द्रव्यतो द्रव्यार्थतया प्रदेशार्थतया च तुल्यत्वमुक्तं चेत्रतोऽवगाहनं प्रति हीनाधिकत्वेन चतुःस्थानपतितत्वं कालतोऽपि स्थितितो हीनाधिकत्वेन चतुःस्थानपतितत्वं, इदानीं

भावश्चयं हीनाधिकत्वं प्रतिपाद्यते—यतः सकलमेव जीवद्रव्य-मजीवद्रव्यं वा परस्परतो द्रव्यक्षेत्रकालभावैर्विभज्यते यथा घटः, तथाहि—द्रव्यत एकोमार्त्तिकः अपरः काञ्चनो राजतादिर्वा क्षेत्रत एक इहत्यः अपरः पाटलिपुत्रकः कालतः एकोऽद्यतनः अन्य-स्त्वैषमः परुतनो वा भावत एकः श्यामः अपरस्तु रक्तादिः एवमन्यदपि। तत्र प्रथमतः पुद्गलविपाकिनाम कर्मोदयनिमित्तं जीवौदायिकभावाश्रयेणाहीनाधिकत्वमाह 'कालवन्नरसगंधेहिं सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए' अस्याक्षरघटना पूर्ववत्, तत्र यथा हीनत्वमभ्यधिकत्वं च तथा प्रतिपादयति—'जइ हीणे' इत्यादि, इह भावानुसारा हीनत्वाभ्यधिकत्वचिन्तायां हानौ वृद्धौ च प्रत्येकं षट्स्थानपतितत्वमवाप्यते, षट्स्थानके च यद्यदपेक्षयाऽन-न्तभागहीनं तस्य सर्वजीवानन्तकेन भागे हृते यल्लभ्यते तेना-नन्ततमेन भागेन हीनं, यच्च यदपेक्षयाऽसंख्येयभागहीनं तस्यापेक्षणीयस्यासंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणेन राशिना भागे हृते यल्लभ्यते तावता भागेन न्यूनं, यच्च यदधिकृत्य संख्येयभागहीनं तस्यापेक्षणीयस्योत्कृष्टसंख्येयकेन भागे हृते यल्लभ्यते तावता हीनं, गुणनसंख्यायां तु यद्यतः संख्येयगुणं तदवधिभू-तमुत्कृष्टेन संख्येयकेनगुणितं सद्यावत् भवति तावत्प्रमाणमव-सातव्यं, यच्च यतोऽसंख्येयगुणं तदवधिभूतमसंख्येयलोकाकाश-प्रदेशप्रमाणेन गुणकारेण गुण्यते गुणितं सद्यावद्भवति तावद-

वसेयम्, यच्च यस्मादनन्तगुणं तदवधिभूतं सर्वजीवानन्तकरूपेण गुणकारेण गुण्यते गुणितं सद्यावद्भवति तावत्प्रमाणं द्रष्टव्यं, तथा चैतदेव कर्मप्रकृतिसंग्रहिण्यां षट्स्थानकप्ररूपणावसरे भागहारगुणकारस्वरूपमुपदर्शितं, 'सव्वजीयाणंतमसंखलोगसंखेज्जगस्स जेट्ठस्स। भागोतिसु गुणणातिसु' इति. सम्प्रत्यधिकृतसूत्रोक्तषट्स्थानपतितत्वं भाव्यते—तत्र कृष्णवर्णपर्यायपरिमाणं तत्त्वतोऽनन्तसंख्यात्मकमप्यसद्भावस्थापनया किल दश सहस्राणि १०००० तस्य सर्वजीवानन्तकेन शतपरिमाणपरिकल्पितेन भागो ह्रियते लब्धं शतं १०० तत्रैकस्य किल नारकस्य कृष्णवर्णपर्यायपरिमाणं दश सहस्राणि, अपरस्य तान्येव शतेन हीनानि ९९००, शतं च सर्वजीवानन्तभागहारलब्धत्वादनन्ततमो भागः ततोऽयं शतेन हीनानि दश सहस्राणि सोऽपरस्य परिपूर्णदशसहस्रप्रमाणकृष्णवर्णपर्यायस्य नारकस्यापेक्षयाऽनन्तभागहीनः तदपेक्षया तु सोऽपरःकृष्णवर्णपर्यायोऽनन्तभागाभ्यधिकः, तथा कृष्णवर्णपर्यायपरिमाणस्य दशसहस्रसंख्याकस्यासंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणपरिकल्पितेन पञ्चाशत्परिमाणेन भागहारेण भागो ह्रियते लब्धेद्वे शते एषोऽसंख्येयतमो भागः, तत्रैकस्य किल नारकस्य कृष्णवर्णपर्याया दश सहस्राणि शतद्वयेन हीनानि ९८०० अपरस्य परिपूर्णानि दश सहस्राणि १००००, तत्र यः शतद्वयहीनदशसहस्रप्रमाणकृष्णवर्णपर्यायः स परिपूर्णकृष्णवर्णपर्यायनार-

कापेक्षया असंख्येयभागहीनः परिपूर्णकृष्णवर्णपर्यायस्तु तदपेक्षयाऽसंख्येयभागाभ्यधिकः, तथा तस्यैव कृष्णवर्णपर्यायराशेर्दशसहस्रसंख्याकस्यासत्कल्पनया संख्येयकपरिमाणकल्पितेन दशकपरिमाणेन भागहारेण भागो ह्रियते तल्लब्धं सहस्रमेषः किल संख्याततमो भागः, तत्रैकस्य नारकस्य किल कृष्णवर्णपर्यायपरिमाणं नव सहस्राणि ९०००, अपरस्य दशसहस्राणि १००००, नव सहस्राणि तु दशसहस्रेभ्यः सहस्रेण हीनानि सहस्रं च संख्येयतमो भाग —इति नवसहस्रपरिमाणकृष्णवर्णपर्यायः परिपूर्णकृष्णवर्णपर्यायनारकापेक्षया संख्येयभागहीनः तदपेक्षया त्वितरः संख्येयभागाभ्यधिकः, तथैकस्य नारकस्य किल कृष्णवर्णपर्यायपरिमाणं सहस्रं अपरस्य दश सहस्राणि, तत्र सहस्रं दशकेनासत्कल्पनया संख्यातकल्पेन गुणितं दशसहस्रसंख्याकं भवति इति सहस्रसंख्यकृष्णवर्णपर्यायो नारको दशसहस्रसंख्याककृष्णवर्णपर्यायनारकापेक्षया संख्येयगुणहीनः तदपेक्षया परिपूर्णकृष्णवर्णपर्यायः संख्येयगुणाभ्यधिकः तथैकस्य किल नारकस्य कृष्णवर्णपर्यायाग्रं द्वे शते परस्य परिपूर्णानि दशसहस्राणि, द्वे च शते असंख्येयलोकाकाशप्रदेशपरिमाणकल्पितेन पञ्चाशत्परिमाणेन गुणकारेण गुणिते दशसहस्राणि जायन्ते, ततो द्विशतपरिमाणकृष्णवर्णपर्यायो नारकः परिपूर्णकृष्णवर्णपर्यायपरिमाणं शतमपरस्य दशसहस्राणि शतं च सर्वजीवानन्तपरिमाणपरिकल्पि-

तेन (शत) गुणकारेण गुणिताः जायन्ते दशसहस्राणि, ततः शतपरमाणुकृष्णवर्णपर्यायो नारकः परमाणुकृष्णवर्णपर्यायनारकापेक्षया अनन्तगुणहीनः इतरस्तु तदपेक्षयाऽनन्तगुणाभ्यधिकः, यथा कृष्णवर्णपर्यायानधिकृत्य हानौ वृद्धौ च षट्स्थानपतितत्वमुक्तमेवशेषवर्णगन्धरसस्पर्शैरपि प्रत्येकं षट्स्थानपतितत्वं भावनीयं । तदेवं पुद्गलविपाकिनामकर्मोदयजनितजीवौदयिकभावाश्रयेण षट्स्थानपतितत्वमुपदर्शितं, इदानीं जीवविपाकिज्ञानावरणीयादिकर्मक्षयोपशमभावाश्रयेण तदुपदर्शयति—'आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं' इत्यादि, पूर्ववत प्रत्येकमाभिनिबोधिकादिषु षट्स्थानपतितत्वं भावनीयं, इह द्रव्यतस्तुल्यत्वं वदता संमूर्च्छिमसर्वप्रभेदनिर्भेदबीजं सपृगालेडकरसवदनभिव्यक्तदेशकालक्रमं प्रत्यवयवद्रविशेषभेदपरिणतेर्योग्यंद्रव्यमित्यावेदितं, अवगाहनया चतुःस्थानपतितत्वमभिवदता क्षेत्रतः सङ्कोचविकोचधर्मा आत्मा न तु द्रव्यप्रदेशसङ्ख्याया इति दर्शितं, उक्तं चैतदन्यत्रापि—"विकसनसंकोचयानयोनेस्तो द्रव्यप्रदेशसङ्ख्यायाः । वृद्धिह्रासौ स्तः क्षेत्रतस्तु तावात्मनस्तस्मात् ॥ १ ॥" स्थित्या चतुःस्थानपतितत्वं वदताऽऽयुः कर्मस्थितिनिर्वर्त्तकानामध्यवसायस्थानानामुत्कर्षापकर्षवृत्तित्वप्रदर्शिता, अन्यथा स्थित्या चतुःस्थानपतितत्वायोगात् ; आयुः कर्मचोपलक्षणं तेन सर्वकर्मस्थितिनिर्वर्त्तकत्वस्याध्यवसायोत्कर्षापकर्षवृत्तित्वसातत्या, कृष्णादिपर्यायैः षट्स्थानपतितत्व-

मुपदर्शयता एकस्यापि नारकस्य पर्याया अनन्ताः किं पुनः सर्वेषां नारकाणामिति दर्शितं अथ नारकाणां पर्यायानन्त्यं पृष्टेन भगवता तदेव पर्यायानन्त्यं वक्तव्यं न त्वन्यत् ततः किमर्थं द्रव्यक्षेत्रकालभावाभिधानमिति ?, तदयुक्तं, अभिप्रायापरिज्ञानात्, इह न सर्वेषां सर्वे स्वपर्यायाः समसङ्ख्या किं तु षट्स्थानपतिताः, एतच्चानन्तरमेव दर्शितं, तच्च षट्स्थापतितत्वं-परिणामित्वमन्तरेण न भवति, तच्च परिणामित्वं यथोक्तलक्षणस्यद्रव्यस्येति द्रव्यतस्तुल्यत्वमभिहितं, तथा न कृष्णादिपर्यायैरेव पर्यायवान् जीवः किं तु तत्तत्क्षेत्रसंकोचविकोचधर्मतयाऽपि तथा तत्तदध्यवसायस्थानयुक्ततयाऽपीति ख्यापनार्थं क्षेत्रकालाभ्यां चतुःस्थानपतितत्वमुक्तमिति कृतं प्रसङ्गेन । तदेवमवसितं नैरयिकाणां पर्यायानन्त्यं, इदानीमसुरकुमारेषु पर्यायाग्रं पिपृच्छिषुराह—

मूलम्—असुरकुमाराणं भंते ! केवइया पज्जवा पन्नत्ता ? गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—असुरकुमाराणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! असुरकुमारे असुरकुमारस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए एवं नीलवन्नपज्जवेहिं लोहियवन्नपज्जवेहिं

हालिद्दवन्नपज्जवेहिं सुक्किल्लवन्नपज्जवेहिं पज्जवेहिं सुब्भिगंधपज्जवेहिं दुब्भिगंधपज्जवेहिं तित्त-रसपज्जवेहिं कडुयरसपज्जवेहिं कसायरसपज्जवेहिं अंबि-लरसपज्जवेहिं महुररसपज्जवेहिं कक्खडफासपज्जवेहिं मउयफासपज्जवेहिं गरुयफासपज्जवेहिं लहुयफास-पज्जवेहिं सीयफासपज्जवेहिं उसिणफासपज्जवेहिं निद्ध-फासपज्जवेहिं लुक्खफासपज्जवेहिं आभिणिबोहि-यणाणपज्जवेहिं सुयणाणपज्जवेहिं ओहिनाणपज्जवेहिं मइअन्नाणपज्जवेहिं सुयअन्नाणपज्जवेहिं विभंगनाण-पज्जवेहिं चक्खुदंसणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं ओहिदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-असुरकुमाराणं अणंतापज्जवा पन्नत्ता एवं जहा नेरइया, जहा असुरकुमारा तहा नागकुमारावि जाव थणियकुमारा (सूत्र १०५)॥

मूलम्-पुढविकाइयाणं भंते! केवइया पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! पुढविकाइए पुढविकाइयस्स दव्वयट्ठाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए, जइहीणे असंखिज्ज-

भागहीणे वा संखिज्जभागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा असंखिज्जइगुणहीणे वा, अह अब्भहिए असंखिज्जइभागअब्भहिए वा संखिज्जइभागअब्भहिए वा संखिज्जगुणअब्भहिए वा असंखिज्जगुणअब्भहिए वा ठिईए तिट्ठाणवडिए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए, जइ हीणे असंखिज्जभागहीणे वा संखिज्जभागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा अह अब्भहिए असंखिज्जइभागअब्भहिए वा संखिज्जइभागअब्भहिए वा वन्नेहिं गंधेहिं रसेहिं फासेहिं मइअन्नाणपज्जवेहिं सुयअन्नाणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए ॥ आउकाइयाणं भंते! केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ आउकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा! आउकाइए आउकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासमइअन्नाणसुअअन्नाणअचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए ॥ तेउकाइयाणं पुच्छा गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ तेउकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा! तेउ-

काइए तेउकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तिट्ठाणवडिए, वन्नगंधरसफासमइअन्नाणसुयअन्नाणअचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए ॥ वाउकाइयाणं पुच्छा गोयमा ! वाउकाइयाणं अणंतापज्जवापन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइवाउकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! वाउकाइए वाउकाइयस्सदव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासमइअन्नाणसुयअन्नाणअचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए ॥ वणस्सइकाइयाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ वणस्सइकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! वणस्सइकाइए वणस्सइकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासमइअन्नाणसुयअन्नाणअचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ वणस्सइकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ॥ (सूत्र १०६)

मूलम्—बेइंदियाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-बेइंदियाणं अणंता

पज्जवा पन्नत्ता, गोयमा ! बेइंदिए बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सियहीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए, जइ हीणे असंखिज्जइभागहीणे वा संखिज्जइभागहीणे वा संखिज्जइगुणहीणे वा असंखिज्जइगुणहीणे वा, अह अब्भहिए असंखिज्जभागअब्भहिए वा संखिज्जइभागअब्भहिए वा संखिज्जगुणमब्भहिए वा असंखिज्जइगुणमब्भहिए वा, ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफास आभिणिबोहियनाणसुयनाणमइअन्नाण सुयअन्नाण अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, एवं तेइंदियावि, एवं चउरिंदियावि नवरं दो दंसणा चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं सूत्र १०७)

मूलम्-पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जवा जहा नेरइयाणं तहा भाणियव्वा सूत्र १०८)

मूलम्-मणुस्साणं भंते ! केवइया पज्जवा पन्नत्ता ? गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइमणुस्साणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! मणूसे मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफास आभिणिबोहियनाणसुयनाणओहिनाणमणपज्जव-

णाणकेवलनाणपज्जवेहिं तुल्ले तिहिं दंसणेहिं छट्ठा-
णवडिए केवलदंसणपज्जवेहिं तुल्ले (सूत्र १०९)

मूलम्- वाणमंतरा ओगाहणट्ठयाए ठिईए चउट्ठाणवडिया वण्णाईहिं छट्ठाणवडिया जोइसिया वेमाणियावि एवं चेव नवरं ठिईए तिट्ठाणवडिया (सूत्र ११० ॥

टीका—'असुरकुमाराणं भंते ! केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?' इत्यादि, उक्त एवार्थः प्रायः सर्वत्राप्यसुरकुमारादिषु, ततः सकलमपि चतुर्विंशतिदण्डकसूत्रं प्रागवत् स्वयं भावनीयं, यस्तु विशेषः स उप दर्श्यते, तत्र यत्पृथिवीकायिकादीनामवगाहनया अङ्गुलासंख्येय-भागप्रमाणया अपि चतुःस्थानपतितत्वं तदङ्गुलासंख्येयभागप्रमा-णस्य संख्येय भेदभिन्नत्वादवसेयं स्थित्या हीनत्वमभ्यधि-कत्वं च त्रिस्थानपतितं न चतुः स्थानपतितं, असंख्येयगुण-वृद्धिहान्योरसंभवात् , कथं तयोरसंभव इति चेत् , उच्यते, इह पृथिव्यादीनां सर्वजघन्यमायुः क्षुल्लकभवग्रहणं, क्षुल्लक-भवग्रहणस्य च परिमाणमावलिकानां द्वे शते षट् पंचाशदधिके, मुहूर्ते च द्विघटिकाप्रमाणे सर्वसंख्यया क्षुल्लकभवग्रहणानां पञ्चषष्टिः सहस्राणि पञ्चशतानि षट्त्रिंशदधिकानि ६५५३६, उक्तं च 'दोन्निसयाइं नियमा छप्पन्नाइं पमाणओ होंति । आवलियपमाणेणं खुड्डागभवग्गहणमेयं ॥ १ ॥ पन्नट्ठिसहस्साइं पंचेवसयाइं तह य छत्तीसा । खुड्डागभवग्गहणा भवंति एते

मुहूर्त्तम् ॥ ८ ॥ पृथिव्यादीनां च स्थित्युत्कर्षतोऽपि संख्येयवर्षप्रमाणा ततो न संख्येयगुणवृद्धिहान्योः संभवः, शेषवृद्धिहानित्रिकभावनात्वेवं एकस्य किल पृथ्वीकायस्य स्थितिः परिपूर्णानि द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि अपरस्य तान्येव समयन्यूनानि ततः समयन्यूनद्वाविंशतिवर्षसहस्रस्थितिकः परिपूर्णद्वाविंशतिवर्षसहस्रस्थितिकापेक्षयाऽसंख्येयभागहीनः तदपेक्षया त्वितरोऽसंख्येयभागाधिकः, तथैकस्य परिपूर्णानि द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि स्थितिरपरस्य तान्येवान्तर्मुहूर्त्तादिन्यूनानि, अन्तर्मुहूर्त्तादिकं (च) द्वाविंशतिवर्षसहस्राणां संख्येयतमो भागः, ततोऽन्तर्मुहूर्त्तादिन्यूनद्वाविंशतिवर्षसहस्रस्थितिकः परिपूर्णद्वाविंशतिवर्षसहस्रस्थितिकापेक्षया संख्येयभागहीनः तदपेक्षया परिपूर्णद्वाविंशतिवर्षसहस्रस्थितिकः संख्येयभागाभ्यधिकः, तथैकस्य द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि स्थितिरपरस्यान्तर्मुहूर्त्तं मासो वर्षं वर्षसहस्रं वा, अन्तर्मुहूर्त्तादिकं (च) नियतपरिमाणया संख्यया गुणितं द्वाविंशतिवर्षसहस्रप्रमाणं भवति तेनान्तर्मुहूर्त्तादिप्रमाणस्थितिकः परिपूर्णद्वाविंशतिवर्षसहस्रस्थितिकापेक्षया संख्येयगुणहीनः तदपेक्षया तु परिपूर्णद्वाविंशतिवर्षसहस्रस्थितिकः संख्येयगुणाभ्यधिकः, एवमप्कायिकादीनामपि चतुरिन्द्रियपर्याप्तानां स्वस्वोत्कृष्टस्थित्यनुसारेण स्थित्या त्रिस्थानपतितत्वं भावनीयम् । तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां मनुष्याणां च चतुःस्थानपतितत्वं, तेषां ह्युत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि

स्थितिः, पल्योपमं चासंख्येयवर्षसहस्रप्रमाणमतोऽसंख्येयगुणवृद्धिहानिसंभवादुपपद्यते चतुःस्थानपतितत्वं, एवं व्यन्तराणामपि तेषां जघन्यतो दशवर्षसहस्रस्थितिकत्वादुत्कर्षतः पल्योपमस्थितिः (तेः), ज्योतिष्कवैमानिकानां पुनःस्थित्या त्रिस्थानपतितत्वं, यतो ज्योतिष्काणां जघन्यमायुः पल्योपमाष्टभागः उत्कृष्टं वर्षलक्षाधिकं पल्योपमं, वैमानिकानां जघन्यं पल्योपमम् उत्कृष्टं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, दशकोटीकोटीसंख्येयपल्योपमप्रमाणं च सागरोपममतस्तेषामप्यसंख्येयगुणवृद्धिहान्यसंभावात् त्रिस्थानपतितता, शेषसूत्रभावना तु सुगमत्वात् स्वयं भावनीया ॥ तदेवं सामान्यतो नैरयिकादीनां प्रत्येकं पर्यायानन्त्यं प्रतिपादितं, इदानीं जघन्याद्यवगाहनाद्यधिकृत्य तेषामेव प्रत्येकं पर्यायाग्रं प्रतिपिपादयिषुराह —

मूलम्—जहन्नोगाहणगाणं भंते ! नेरइयाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ? अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नोगाहणए नेरइए जहन्नोगाहणस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए उक्कोसोगाहणगाणं भंते ! नेरइयाणं केवइया

पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ उक्कोसोगाहणयाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! उक्कोसोगाहणए नेरइए उक्कोसोगाहणस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठिईए सिय हीणे सियतुल्ले सिय अब्भहिए, जइ हीणे असंखिज्जभागहीणे वा संखिज्जभागहीणे वा अह अब्भहिए असंखिज्जभागअब्भहिए वा संखिज्जभागअब्भहिए वा, वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, अजहन्नमणुक्कोसोगाहणाणं नेरइयाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा !, अणंता पज्जवा पन्नत्ता. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ अजहन्नमणुक्कोसोगाहणाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! अजहन्नमणुक्कोसोगाहणए नेरइए अजहन्नमणुक्कोसोगाहणस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सियहीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे असंखिज्जभागहीणे वा संखिज्जभागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा असंखिज्जगुणहीणे वा अह अब्भहिए असंखिज्जभाग-

अब्भहिए वा संखिज्जभागअब्भहिए वा संखिज्ज-गुणअब्भहिए वा असंखिज्जगुणअब्भहिए वा, ठिईए सिय हीणे सियतुल्ले सियअब्भहिए, जइ हीणे असंखिज्जभागहीणे वा संखिज्जभागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा असंखिज्जगुणहीणे वा अह अब्भहिए असंखिज्जभागअब्भहिए वा संखिज्ज-भागअब्भहिए वा संखिज्जगुणअब्भहिए वा असं-खिज्जगुणअब्भहिए वा वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, से एएणट्ठेणं गोयमा !, एवं वुच्चइ--अजहन्नमणुक्कोसोगाहणाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता। जहन्नठिइयाणं भंते ! नेरइयाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जहन्नठिइयाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नठिइए नेरइए जहन्नठिइयस्स नेर-इयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगा-हणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तुल्ले वन्नगंध-रसफासपज्जवेहिं तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए एवं उक्कोसठिइए वि,

अजहन्नमणुक्कोसठिइएवि, नवरं सट्ठानेचउट्ठाण-
वडिए। जहन्नगुणकालगाणं भंते! नेरइयाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–जहन्नगुणकालगाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! जहन्नगुणकालए नेरइए जहन्न-गुणकालगस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठ-याए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिइए चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं वन्न-गंधरसफासपज्जवेहिं तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ जहन्नगुणकालगाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता, एवं उक्कोसगुणकालएवि, अजहन्नमणुक्कोसगुण-कालएवि एवं चेव नवरं कालवन्नपज्जवेहिं छट्ठाण-वडिए, एवं अवसेसा चत्तारि वन्ना दो गंधा पंच-रसा अट्ठफासा भाणियव्वा। जहन्नाभिणिबोहियना-णीणं भंते! नेरइयाणं केवइया पज्जवा पन्नता?, गोयमा! जहन्नाभिणिबोहियनाणीणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहन्नाभिणिबोहियनाणीणं नेरइयाणं अणंता

पज्जवा पन्नत्ता ?; गोयमा ! जहन्नाभिणिबोहियनाणी नेरइए जहन्नाभिणिबोहियस्स नाणिस्स नेरइयस्स-दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफास पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए आभिणिबोहियनाणपज्जवेहि तुल्ले सुयनाण० ओहिनाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसाभिणिबोहियनाणीवि, अजहन्नमणुक्कोसमभिणिबोहियनाणीवि एवं चेव, णवरं अभिणिबोहियनाणपज्जवेहिं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं सुयनाणी ओहिनाणीवि, नवरं जस्स नाणा-तस्स अन्नाणा नत्थि, जहा नाणा तहा अन्नाणावि भाणियव्वा, नवरं जस्स अन्नाणा तस्स नाणा न भवंति। जहन्नचक्खुदंसणीणं भंते! नेरइयाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहन्नचक्खुदंसणीणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा! जहन्नचक्खुदंसणीणं नेरइए जहन्नचक्खुदंसणिस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाण-

वडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफास पज्ज-
वेहिं तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं छट्ठाणवडिए
चक्खुदंसणपज्जवेहिं तुल्ले अचक्खुदंसणपज्जवेहिं
ओहिदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोस-
चक्खुदंसणीवि, अजहन्नमणुक्कोसचक्खुदंसणीवि
एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं अचक्खु-
दंसणीवि ओहिदंसणीवि । (सूत्र १११) ॥

टीका— जहन्नोगाहणाणं भंते !' इत्यादि, सुगमं नवरं 'ठिईए चउट्ठाणवडिए' इति जघन्यावगाहनो हि दशवर्षसहस्र-स्थितिकोऽपि भवति रत्नप्रभायां उत्कृष्टस्थितिकोऽपि सप्तमनरक-पृथिव्यां, तत उत्पद्यते स्थित्या चतुः स्थानपतितता, 'तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं' ति इह यदा गर्भव्युत्क्रान्तिकसंज्ञिपञ्चेन्द्रियो नरके-पूत्पद्यते तदा स नारकायुः संवेदनप्रथमसमय एव पूर्वगृहीतौदारिक-शरीरपरिशाटं करोति तस्मिन्नेव समये सम्यग्दृष्टेस्त्रीणि ज्ञानानि मिथ्यादृष्टेस्त्रीण्यज्ञानानि समुत्पद्यन्ते, ततोऽविग्रहेण विग्रहेण वा गत्वा वैक्रियशरीरसंघातं करोति, यस्तु संमूर्च्छिमासंज्ञिपञ्चेन्द्रियो नरकेपूत्पद्यते तस्य तदानीं विभंगज्ञानं नास्तीति जघन्यावगाहन-स्याज्ञानानि भजनयाद्वष्ट्यानि द्वे त्रीणि वेति, उत्कृष्टावगाहन-सूत्रेस्थित्या हानौ वृद्धौ च द्विस्थानपतितत्वं तद्यथा—असंख्येय-भागहीनत्वं वा संख्येयभागहीनत्वं वा, तथा असंख्येयभागाधिक-

त्वं वा संख्येयभागाधिकत्वं वा न तु संख्येयासंख्येयगुणवृद्धिहानी, कस्मादिति चेत्, उच्यते, उत्कृष्टावगाहना हि नैरयिकाः पञ्चधनुःशतप्रमाणाः ते च सप्तमनरकपृथिव्यां, तत्र जघन्या स्थितिं द्वाविंशतिः सागरोपमाणि उत्कृष्टा त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, ततोऽसंख्येयसंख्येयभागहानिवृद्धी एव घटेते न त्वसंख्येयसंख्येयगुणहानिवृद्धी, तेषां चोत्कृष्टावगाहनानां त्रीणि ज्ञानानि त्रीण्यज्ञानानि वा नियमाद्वेदितव्यानि, न भजनया, भजनाहेतोः संमूर्च्छिमासंज्ञिपञ्चेन्द्रियोत्पादस्य तेषामसंभवात्, अजघन्योत्कृष्टावगाहनसूत्रे यदवगाहनया चतुःस्थानपतितत्वं तदेवं अजघन्योत्कृष्टावगाहनो हि सर्वजघन्याङ्गुलासंख्येयभागात् परतो मनाक् बृहत्तराङ्गुलस्यासंख्येयभागादारभ्य यावदङ्गुलासंख्येयभागन्यूनानि पञ्चधनुःशतानि तावदवसेयः, ततः सामान्यनैरयिकसूत्रे इवात्राप्युपपद्यते अवगाहनातश्चतुःस्थानपतितता, स्थित्या चतुःस्थानपतितता सुप्रतीता, दशवर्षसहस्रेभ्यः आरभ्योत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणामपि तस्यां लभ्यमानत्वात्, जघन्यस्थितिसूत्रे अवगाहनया चतुःस्थानपतितत्वं तस्यामवगाहनायां जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयभागादारभ्योत्कर्षतः सप्तानांधनुषामवाप्यमानत्वात्, अत्रापि त्रीण्यज्ञानानि केषांचित्कादाचित्कतया द्रष्टव्यानि, संमूर्च्छिमासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेभ्यउत्पन्नानामपर्याप्तावस्थायां विभङ्गस्याभावात्, उत्कृष्टस्थितिचिन्तायामवगाहनया चतुःस्थानपतितत्वमुत्कृष्टस्थितिकस्यावगाह-

नाया जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयभागादारभ्योत्कर्षतः पञ्चानां धनुःशतानामवाप्यमानत्वात्, 'अजहन्नुक्कोसोगाहणएवि एवं चेव' इत्यादि, अजघन्योत्कृष्टस्थितावपि तथा वक्तव्यं यथा जघन्यस्थितिसूत्रे उत्कृष्टस्थितिसूत्रे च नवरमयं विशेषः—जघन्यस्थितिसूत्रे उत्कृष्टस्थितिसूत्रे च स्थित्या तुल्यत्वमभिहितं अत्र तु स्वस्थानेऽपि स्थितावपि चतुःस्थानपतित इति वक्तव्यं, समयाधिकदशवर्षसहस्रेभ्य आरभ्योत्कर्षत समयोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणामवाप्यमानत्वात्, जघन्यगुणकालकादिसूत्राणि सुप्रतीतानि नवरं 'जस्स नाणा तस्स अन्नाणा नत्थि'त्ति यस्य ज्ञानानि तस्य ज्ञानानि न संभवन्तीति यतः सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानानि मिथ्यादृष्टेरज्ञानानि, सम्यग्दृष्टित्वं च मिथ्यादृष्टित्वोपमर्देन भवति मिथ्यादृष्टित्वमपि सम्यग्दृष्टित्वोपमर्देन भवति, ततो ज्ञानसद्भावेऽज्ञानाभावः एवमज्ञानसद्भावे ज्ञानाभावः, तत उक्तं—'जहा नाणा तहा अन्नाणावि भाणियव्वा, नवरं जस्स अन्नाणा तस्स अन्नाणा न संभवंति' इतिशेषं पाठ सिद्धं ।

मूलम्—जहन्नोगाहणगाणं भंते ! असुरकुमाणं केवइया पज्जवा पन्नता ?, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जहन्नोगाहणगाणं असुरकुमाराणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नोगाहणए असुरकुमारे जहन्नोगाह-

णस्स असुरकुमारस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाईहिं छट्ठाणवडिए आभिणिबोहियनाण० सुयनाण० ओहिनाणपज्जवेहिं तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसोगाहणएवि, एवं अजहन्नमणुक्कोसोगाहणएवि, नवरं उक्कोसोगाहणएवि असुरकुमारे ठिईए चउट्ठाणवडिए, एवं जाव थणिय कुमारा। सूत्र ११२।

मूलम्–जहन्नोगाहणाणं भंते! पुढविकाइयाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहन्नोगाहणाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! जहन्नोगाहणए पुढविकाइए जहन्नोगाहणस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं दोहिं अन्नाणेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसोगाहणएवि, अजहन्नमणुक्कोसोगाहणएवि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे चउट्ठाणवडिए, जहन्नठिइयाणं पुढविकाइयाणं पुच्छा गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता,

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जहन्नठिइयाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नठिइए पुढविकाइए जहन्नठिइयस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तुल्ले वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं मतिअन्नाण० सुयअन्नाण० अचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए एवं उक्कोसठिइएवि अजहन्नमणुक्कोसठिइएवि एवं चेव नवरं सट्ठाणे तिट्ठाणवडिए, जहन्नगुणकालयाणं भंते ! पुढविकाइयाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जहन्नगुणकालयाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता, गोयमा ! जहन्नगुणकालए पुढविकाइए जहन्नगुणकालगस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए दोहिं अन्नाणेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणकालएवि, अजहन्नमणुक्कोसगुणकालएवि, एवं चेव, नवरं सट्ठाणेछट्ठाणवडिए, एवं पंच वन्ना दो गंधा पंच रसा अट्ठफासा भाणि-

यव्वा। जहन्नमतिअन्नाणीणं भंते ! पुढविकाइयाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जहन्नमतिअन्नाणीणं पुढविकाइकाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नमतिअन्नाणी पुढविकाइए जहन्नमतिअन्नाणिस्स पुढविकायस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफास-पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए मइअन्नाणपज्जवेहिं तुल्ले सुय-अन्नाणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसमइअन्नाणीवि, अजहन्नमणुक्कोसमइ-अन्नाणीवि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं सुयअन्नाणीवि अचक्खुदंसणीवि एवं चेव जाव वणप्फइकाइया। (सूत्र ११३) ॥

मूलम्–जहन्नोगाहणगाणं भंते ! बेइंदियाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जहन्नोगाहणगाणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नोगाहणाए बेइंदिए जह-न्नोगाहणस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठ-याए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं दोहिं नाणेहिं दोहिं अन्ना-

णेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसोगाहणएवि, णवरं णाणा णत्थि, अजहन्नमणुक्कोसोगाहणए जहा जहन्नोगाहणए, णवरं सट्ठाणे ओगाहणाए चउट्ठाणवडिए, जहन्नठिइयाणं भंते ! बेइंदियाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जहन्नठियाणं बेइंदिइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नठिइए बेइंदिए जहन्नठिइयस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठितीए तुल्ले वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं दोहिं अन्नाणेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसठिइएवि, नवरं दो णाणा अब्भहिया, अजहन्नमणुक्कोसठिइए जहा उक्कोसठिइए णवरं ठिइए तिट्ठाणवडिए । जहन्नगुणकालगाणं बेइंदियाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-जहन्नगुणकालगाणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नगुणकालए बेइंदिए जहन्नगुणकालगस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए छट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं

तुल्ले अवसेसेहिं वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं दोहिं नाणेहिं दोहिं अन्नाणेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणकालएवि, अजहन्नमणुक्कोसगुणकालएवि, एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं पच वन्ना दो गंधा पच रसा अट्ठ फासा भाणियव्वा, जहन्नाभिणिबोहियनाणीणं भंते! बेइंदियाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ— जहन्नाभिणिबोहियनाणीणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा! जहन्नाभिणिबोहियणाणी बेइंदिए जहन्नाभिणिबोहियणाणिस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले सुयणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए अचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसाभिणिबोहियनाणीवि अजहन्नमणुक्कोसभिणिबोहियणाणीवि एवं चेव नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं सुयनाणीवि सुयअन्नाणीवि अचक्खुदंसणीवि, णवरं जत्थ णाणा तत्थ अन्नाणा नत्थि जत्थ अन्नाणा तत्थ णाणा नत्थि,

जत्थ दंसणं तत्थ णाणावि अन्नाणावि, एव तेइंदियाणवि, चउरिंदियाणवि एवं चेव णवरं चक्खदंसणं अब्भहियं (सू० ११४ ॥

मूलम्–जहन्नोगाहणगाणं भंते! पंचिंदियतिरिक्खजोणिकाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–अहन्नोगाहणगा पंचिंयितिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा! जहन्नो गाहणाए पंचिंदियतिरिक्खजोणिए जहन्नोगाहणयस्स पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले टिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगधफासपज्जवेहिं दोहिं नाणेहिं दोहि अन्नाणेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, उक्कोसोगाहणएवि एव चेव णवरं तिहिं नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छटठाणवडिए, जहा उक्कोसोगाहणए तहा अजहन्नमणुक्कोसोगाहणएवि, णवरं ओगाहणटठयाए चउट्ठाणवडिए, जघन्नठिइयाणं भंते! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहन्नटिइयाणं

पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नठिइए पंचिंदियतिरिक्खजोणिए जहन्नठिइयस्स पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स दव्वट्टयाए तुल्ले पएसट्टयाए तुल्ले ओगाहणट्टयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तुल्ले वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं दोहिं अन्नाणेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए उक्कोसठिइएवि एवं चेव णवरं दो नाणा दो अन्नाणा दो दंसणा, अजहन्नमणुक्कोसठिइएवि एवं चेव, नवरं ठिइए चउट्ठाणवडिए तिन्नि णाणा तिन्नि अन्नाणा तिन्नि दंसणा । जहन्नगुणकालगाणं भंते ! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा गोयमा ! अनन्ता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नगुणकालए पंचिंदियतिरिक्खजोणिए जहन्नगुणकालगस्स पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणकालएवि अजहन्नमणुक्कोसगुणकालएवि, एवं चेव नवरं सट्ठाणे छट्ठाण-

वडिए, एवं पंच वन्ना दो गंधा पंच रसा अट्ठ फासा, जहन्नाभिणिबोहियणाणीणं भंते ! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ? गोयमा ! जहन्नाभिणिबोहियणाणिस्स पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए आभिणिबोहियनाणपज्जवेहिं तुल्ले सुयनाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए चक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए अचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसाभिणिबोहियनाणीवि, णवरं ठिईए तिट्ठाणवडिए, तिन्नि नाणा तिन्नि दंसणा सट्ठाणे तुल्ले सेसेसु छट्ठाणवडिए, अजहन्नमणुक्कोसाभिणिबोहियनाणी जहा उक्कोसाभिणिबोहियनाणी णवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए, सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं सुयनाणीवि, जहन्नोहिनाणीणं भंते ! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नोहिनाणी पंचिंदियतिरिक्खजोणिए जहन्नोहिनाणिस्स पंचिंदियति-

रिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए वण्णगंधरसफासपज्जवेहिं आभिणिबोहियनाणसुयनाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए ओहिनाणपज्जवेहिं तुल्ले, अन्नाणा नत्थि, चक्खुदंसणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य ओहिदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसोहिनाणीवि अजहन्नोक्कोसोहिनाणीवि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, जहा आभिणिबोहियनाणी तहा मइअन्नाणी सुयअन्नाणी य जहा ओहिनाणी तहा विभंगनाणीवि, चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी य जहा आभिणिबोहियनाणी, ओहिदंसणी जहा ओहिनाणी, जत्थ नाणा तत्थ अन्नाणा नत्थि जत्थ अन्नाणा तत्थ नाणा नत्थि, जत्थ दंसणा तत्थ णाणावि अन्नाणावि अत्थित्ति भाणियव्वं सू० (११५)

मूलम्-जहन्नोगाहणगाणं भंते! मणुस्साणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-जहन्नोगाहणगाणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! जहन्नोगाहणए मणूसे जहन्नोगाहणगस्स मणूसस्स-

दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं तिहिं नाणेहिं दोहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, उक्कोसोगाहणएवि एवं चेव, नवरं ठिईए सिय तुल्ले सिय अब्भहिए, जइ हीणे असंखिज्जइ भागहीणे अह अब्भहिए असंखेज्जइभागअब्भहिए, दो नाणा दो अन्नाणा दो दंसणा, अजहन्नमणुक्कोसोगाहणएवि एवं चेव, णवरं ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए आइल्लेहिं चउहिं नाणेहिं छट्ठाणवडिए, केवलनाणपज्जवेहिं तुल्ले, तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, केवलदंसणपज्जवेहिं तुल्ले, जहन्नठिइयाणं भंते! मणुस्साणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जहन्नठिइए मणुस्से जहन्नठिइयस्स मणुस्सस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तुल्ले वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं दोहिं अन्नाणेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसठिइएवि, नवरं दो नाणा दो अन्नाणा दो दंसणा, अजहन्न-

मणुक्कोसठिइएवि, एवं चेव, नवरं ठिईए चउट्ठाण-वडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए आइल्लेहिं चउहिं नाणेहिं छट्ठाणवडिए केवलनाणपज्जवेहिं तुल्ले तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए केवल दंसणपज्जवेहिं तुल्ले। जहन्नगुणकालयाणं भंते! मणुस्साणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जहन्नगुणकालए मणूसे जहन्न-गुणकालगस्स मणूस्सस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठ-याए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए-चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए चउहिं नाणेहिं छट्ठाणवडिए केवलनाणपज्जवेहिं तुल्ले तिहिं अन्ना-णेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए केवल दंसणपज्ज-वेहिं तुल्ले, एवं उक्कोसगुणकालएवि, अजहन्नमणु-क्कोसगुणकालएवि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाण-वडिए, एवं पंचवन्ना दो गंधा पंच रसा अट्ठफासा भाणियव्वा। जहन्नाभिणिबोहियनाणीणं मणुस्साणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा!

जहन्नाभिणिबोहियणाणी मणूसे जहन्नाभिणिबोहिया-णाणिस्स मणुस्सस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठ-याए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडि-ए आभिणिबोहियनाणपज्जवेहिं तुल्ले सुयनाणपज्ज-वेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसाभिणि-बोहियनाणीवि नवरं आभिणिबोहियनाणपज्जवेहिं तुल्ले ठिईए तिट्ठाणवडिए तिहिं नाणेहिं तिहिं दंसणे-हिं छट्ठाणवडिए, अजहन्नमणुक्कोसाभिणिबोहियनाणी जहा उक्कोसाभिणिबोहियनाणी, नवरं ठिईए चउ-ट्ठाणवडिए सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं सुयनाणीवि, जहन्नोहिनाणीणं भंते ! मणुस्साणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नोहि-नाणी मणुस्से जहन्नोहिनाणिस्स मणूसस्स दव्वट्ठ-याए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तिट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफास-पज्जवेहिं दोहिं नाणेहिं छट्ठाणवडिए ओहिनाणपज्ज-वेहिं तुल्ले मणनाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए तिहिं दंस-णेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसोहिनाणीवि, अजहन्न-

मणुस्सोहिनाणी एवं चेव, नवरं ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, जहा ओहिनाणी तहा मणपज्जवनाणीवि भाणियव्वे, नवरं ओगाहणट्ठयाए तिट्ठाणवडिए, जहा आभिणिबोहियणाणी तहा मइअन्नाणी सुयअन्नाणीवि भाणियव्वे, जहा ओहिनाणी तहा विभंगनाणिवि भाणियव्वे चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी य जहा आभिणिबोहियणाणी ओहिदंसणी जहा ओहिनाणी। जत्थ नाणा तत्थ अन्नाणा नत्थि जत्थ अन्नाणा तत्थ नाणा नत्थि, जत्थ दंसणा तत्थ णाणावि अन्नाणावि। केवलनाणीणं भंते! मणुस्साणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—केवलनाणीणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! केवलनाणी मणूसे केवलनाणिस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, केवलनाणपज्जवेहिं केवलदंसणपज्जवेहि य तुल्ले एवं केवलदंसणीवि मणूसे भाणियव्वे ॥ (सूत्र ११६)

मूलम्—वाणमंतरा जहा असुरकुमारा । एवं जोइसियवेमाणिया, नवरं सट्ठाणे ठिइए तिट्ठाणवडिए भाणियव्वे, सेत्तं जीवपज्जवा (सूत्र ११७) ॥

टीका—एवमसुरकुमारादिसूत्राण्यपि भावनीयानि प्रायः समानगमत्वात्, जघन्यावगाहनादिपृथिव्यादि सूत्रे स्थित्या त्रिस्थानपतितत्वं संख्येयवर्षायुष्कत्वात्, एतच्च प्रागेव सामान्यपृथिवीकायिकसूत्रे भावितं, पर्यायचिन्तायामज्ञाने एव मत्यज्ञानश्रुताज्ञानलक्षणे वक्तव्ये न तु ज्ञाने, तेषां सम्यक्त्वस्य तेषु मध्ये सम्यक्त्वसहितस्य चोत्पादासंभवात् 'उभयाभावो पुढवाइएसु' इति वचनाद् अत एवैतदेवोक्तमत्र 'दोहिं अन्नाणेहिं' इति जघन्यावगाहनद्वीन्द्रियसूत्रे 'दोहिं नाणेहिं दोहिं अन्नाणेहिं' इति द्वीन्द्रियाणां हि केषांचिदपर्याप्तावस्थायां सास्वादनसम्यक्त्वमवाप्यते सम्यग्दृष्टेश्च ज्ञाने इति द्वे ज्ञाने लभ्येते शेषाणामज्ञाने तत उक्तं द्वाभ्यां ज्ञानाभ्यां द्वाभ्यामज्ञानाभ्यामिति, उत्कृष्टावगाहनायां त्वपर्याप्तावस्थाया अभावात् सास्वादनसम्यक्त्वं नावाप्यते ततस्तत्र ज्ञाने न वक्तव्ये, तथाचाह—'एवं उक्कोसितोगाहणाए वि नवरं नाणा नत्थि' त्ति, तथा ऽजघन्योत्कृष्टावगाहना किल प्रथमसमयादूर्ध्वं भवति—इत्यपर्याप्तावस्थायामपि तस्याः सम्भवात् सास्वादनसम्यक्त्ववतां ज्ञाने अन्येषां चाज्ञाने इति ज्ञाने चाज्ञाने च वक्तव्ये तथाचाह—'अज-

हन्नुमगुक्कोसोगाहणा? जहा जहन्नोगाहणए' इति, तथा जघन्यस्थिति सूत्रे द्वे अज्ञाने एव वक्तव्ये, न तु ज्ञाने, यतः सर्वजघन्यस्थितिको लब्ध्यपर्याप्तको भवति नच लब्ध्यपर्याप्तकेषु मध्ये सास्वादनसम्यग्दृष्टिरुत्पद्यते, किं कारणमिति चेत, उच्यते, लब्ध्यपर्याप्तको हि सर्वसंक्लिष्टः सास्वादनसम्यग्दृष्टिश्च मनाक् शुभपरिणामस्ततः स तेषु मध्ये नोत्पद्यते तेनाज्ञाने एव लभ्येते न ज्ञाने, उत्कृष्टस्थितिषु पुनर्मध्ये सासादनसम्यक्त्वसहितोऽप्युत्पद्यते इति तत्सूत्रे ज्ञाने अज्ञाने च वक्तव्ये, तथाचाह—'एवं उक्कोसठिइएवि, नवरं दो नाणा अब्भहिया' इति, एवमेवाजघन्योत्कृष्टस्थितिसूत्रमपि वक्तव्यं, भावसूत्राणि पाठसिद्धानि, एवं त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिया अपि वक्तव्याः, नवरं चतुरिन्द्रियाणां चक्षुर्दर्शन मधिकं अन्यथा चतुरिन्द्रियत्वायोगादिति, तेषां चक्षुर्दर्शनविषयमपि सूत्रं वक्तव्यं, जघन्यावगाहनतिर्यक्पञ्चेन्द्रियसूत्रे 'ठिईए तिट्ठाणवडिए' इति, इह तिर्यक्पंचेन्द्रियः संख्येयवर्षायुष्क एव जघन्यावगाहनो भवति, नासंख्येयवर्षायुष्कः, किं कारणमिति चेत्, उच्यते, असंख्येयवर्षायुषो हि महाशरीराः कृष्टक्लिष्टपरिणामत्वात् पुष्टाहाराः प्रवृत्तधातूपचयाः ततस्तेषां भूयान् पुष्टिका भवति पुष्टिकानुसारेण च तिर्यगमनुष्याणामुत्पत्तिसमयेऽपि अवगाहनेति न तेषां जघन्यावगाहना लभ्यते किन्तु संख्येयवर्षायुषां, संख्येयवर्षायुषश्च स्थित्या त्रिस्थानपतिताः, एतच्च भावितं प्राक्, तत उक्तं स्थित्या त्रिस्थानपतिताः

इति, 'दोहिं नाणेहिं दोहिं अन्नाणेहिं' इति जघन्यावगाहनोहि तिर्यक्पञ्चेन्द्रियः संख्येयवर्षायुष्कोऽपर्याप्तो भवति सोऽपि चाल्पकायेषु मध्ये समुत्पद्यमानस्ततस्तस्यावधिविभंगज्ञानासंभवात् द्वे ज्ञाने द्वे अज्ञाने उक्ते, यस्तु विभंगज्ञानसहितो नरकादुद्वृत्य संख्येयवर्षायुष्केषु तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु मध्येसमुत्पद्यमानो वक्ष्यते स महाकायेषूत्पद्यमानो द्रष्टव्यः नाल्पकायेषु, तथास्वाभाव्यात्, अन्यथाऽधिकृतसूत्रविरोधः उत्कृष्टावगाहनतिर्यक्पंचेन्द्रियसूत्रे 'तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं' इति, त्रिभिर्ज्ञानैस्त्रिभिरज्ञानैश्च षट् स्थानपतिताः, तत्र त्रीणि अज्ञानानि कथमिति चेत्, उच्यते, इह यस्य योजनसहस्रं शरीरावगाहना स उत्कृष्टावगाहनः, स च संख्येयवर्षायुष्कः एव भवति पर्याप्तश्च, तेन तस्य त्रीणि ज्ञानानि त्रीण्यज्ञानानि च सम्भवन्ति, स्थित्याऽपि चासावुत्कृष्टावगाहनः त्रिस्थानपतितः, संख्येयवर्षायुष्कत्वात्, अजघन्योत्कृष्टावगाहनसूत्रे स्थित्या चतुःस्थानपतितः, यतोऽजघन्योत्कृष्टावगाहनोऽसंख्येयवर्षायुष्कोऽपि लभ्यते, तत्रोपपद्यते प्रागुक्तयुक्त्या चतुःस्थानपतितत्वं, जघन्यस्थितिकतिर्यक्पञ्चेन्द्रियसूत्रे द्वे अज्ञाने एव वक्तव्ये न तु ज्ञाने, यतोऽसौ जघन्यस्थितिको लब्ध्यपर्याप्तक एव भवति न च तन्मध्ये सासादनसम्यग्दृष्टेरुत्पादः इति, उत्कृष्टस्थितिको हि तिर्यक्पञ्चेन्द्रियसूत्रे 'दो नाणा दो अन्नाणा' इति उत्कृष्टस्थितिको हि तिर्यक्पञ्चेन्द्रिय-

स्त्रिपल्यौपमस्थितिको भवति, तस्य च द्वे अज्ञाने तावन्नियमेन यदा पुनः षण्मासावशेषायुर्वैमानिकेषु बद्धायुष्को भवति तदा तस्य द्वे ज्ञाने लभ्येते अत उक्तं द्वे ज्ञाने द्वे अज्ञाने इति, अजघन्योत्कृष्टस्थितिकतिर्यक्पञ्चेन्द्रियसूत्रे 'ठिइए चउट्ठाणवडिए' इति, अजघन्योत्कृष्टस्थितिको हि तिर्यक्पंचेन्द्रियः संख्येयवर्षायुष्कोऽपि लभ्यते, असंख्येयवर्षायुष्कोऽपि समयोनत्रिपल्योपमस्थितिकः ततश्चतुःस्थानपतितः, जघन्याभिनिबोधिकतिर्यक्पंचेन्द्रियसूत्रे 'ठिइए चउट्ठाणवडिए' इति, असंख्येयवर्षायुषोऽपि हि तिर्यक्पंचेन्द्रियस्य स्वभूमिकानुसारेण जघन्ये अभिनिबोधिकश्रुतज्ञाने लभ्येते ततः संख्येयवर्षायुषोऽसंख्येयवर्षायुषश्च जघन्याभिनिबोधिकश्रुत ज्ञानसम्भवाद् भवन्ति स्थित्या चतुःस्थानपतिताः, उत्कृष्टाभिनिबोधिकज्ञानसूत्रे स्थित्या च त्रिस्थानपतिता वक्तव्याः, यत इह यस्योत्कृष्टे आभिनिबोधिकश्रुतज्ञाने स नियमात संख्येयवर्षायुष्कः संख्येयवर्षायुष्कश्च स्थित्याऽपि त्रिस्थानपतित एव यथोक्तं प्राक् , अवधिसूत्रे विभंगसूत्रेऽपि स्थित्या त्रिस्थानपतितः, किं कारणमिति चेत् उच्यते, असंख्येयवर्षायुषोऽवधिविभंगासंभवात् , आह च—मूलटीकाकारः 'ओहिविभंगेसु नियमा तिट्ठाणवडिए, किं कारणं ?, भन्नइ, ओहिविभंगा असंखेज्जवासाउयस्स नत्थि'त्ति, जघन्यावगाहनमनुष्यसूत्रे 'ठिइए तिट्ठाणवडिए' इति, तिर्यक्पंचेन्द्रियवत् मनुष्योऽपि जघन्यावगाहनो नियमात् संख्येयवर्षायुष्कः, संख्येय-

वर्षायुष्कश्च स्थित्या त्रिस्थानपतित एवेति 'तिहिं नाणेहिं' इति, यदा कश्चित् तीर्थकरोऽनुत्तरोपपातिकदेवो वा अप्रतिपतितेनावधिज्ञानेन जघन्यायामवगाहनायामुत्पद्यते तदाऽवधिज्ञानमपि लभ्यते इतीह त्रिभिर्ज्ञानैरित्युक्तं, विभङ्गज्ञानसहितस्तु नरकादुद्वृत्तो जघन्यायामवगाहनायां नोत्पद्यते तथास्वाभाव्यात् अतो विभङ्गज्ञानं न लभ्यते इति द्वाभ्यामज्ञानाभ्यामित्युक्तं, उत्कृष्टावगाहनमनुष्यसूत्रे 'ठिईए सिय हीणे सियतुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे असंखेज्जभागहीणे जइ अब्भहिए असंखेज्जभागअब्भहिए' इति उत्कृष्टावगाहना हि मनुष्यास्त्रिगव्युतोच्छ्रयाः त्रिगव्युतानां च स्थितिर्जघन्यतः पल्योपमासंख्येयभागहीनानि त्रीणि पल्योपमानि उत्कर्षतस्तान्येव परिपूर्णानि त्रीणि पल्योपमानि उक्तं च जीवाभिगमे—'उत्तरकुरुदेवकुराएमणुस्साणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं तिन्नि पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागहीणाइं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं' त्रिपल्योपमासंख्येयभागश्च त्रयाणां पल्योपमानामसंख्येयतमो भाग इति पल्योपमासंख्येयभागहीनपल्योपमत्रयस्थितिकः परिपूर्णपल्योपमत्रयस्थितिकापेक्षयाऽसंख्येयभागहीनः, इतरस्तु तदपेक्षया ऽसंख्येयभागाधिकः शेषा वृद्धिहान्योर्न लभ्यन्ते, 'दो नाणा दो अन्नाणा' इति, उत्कृष्टावगाहना हि असंख्येयवर्षायुषः असंख्येयवर्षायुषां चावधिविभंगासंभवः, तथास्वाभाव्यात् अतो द्वे एव ज्ञाने द्वे अज्ञाने इति, तथा ऽजघन्योत्कृष्टावगाहनः संख्येयवर्षा-

युष्कोऽपिभवति असंख्येयवर्षायुष्कोऽपि भवति, असंख्येयवर्षायुष्कोऽपि गव्यूतद्विगव्यूतोच्छ्रयः ततोऽवगाहनतयाऽपि चतुःस्थानपतितत्वं स्थित्याऽपि तथा, आद्यैश्चतुर्भिर्मतिश्रुतावधिमनः पर्यायरूपैर्ज्ञानैः षट्स्थानपतिताः, तेषां चतुर्णामपि ज्ञानानां तत्तद्द्रव्यादिसापेक्षतया क्षयोपशमवैचित्र्यतस्तारतम्यभावात्, केवलज्ञानपर्यवैस्तुल्यता, निशेषस्वावरणक्षयतः प्रादुर्भूतस्य केवलज्ञानस्य भेदाभावात्, शेषं सुगमं, जघन्यस्थितिकमनुष्यसूत्रे 'दोहिं अन्नाणेहिं'इति द्वाभ्यामज्ञानाभ्यांमत्यज्ञानश्रुताज्ञानरूपाभ्यां षट्स्थानपतितता वक्तव्याः, न तु ज्ञानाभ्यां कस्मादिति चेत ?, उच्यते, जघन्यस्थितिका मनुष्याः संमूर्च्छिमाः, संमूर्च्छिममनुष्याश्च नियमतो मिथ्यादृष्टयः, ततस्तेषामज्ञाने, एव न तु ज्ञानेउत्कृष्टस्थितिकमनुष्यसूत्रे 'दो नाणा दो अन्नाणा'इति, उत्कृष्टस्थितिकाहि मनुष्यास्त्रिपल्योपमायुषः, तेषां च तावदज्ञाने नियमेन यदा पुनः षण्मासावशेषायुषो वैमानिकेषु बद्धायुषस्तदा सम्यक्त्वलाभात् द्वे ज्ञाने लभ्यंते अवधिविभङ्गौ चासंख्येयवर्षायुषां न स्त इति त्रीणि ज्ञानानि त्रीण्यज्ञानानि इतिनोक्तं, अजघन्योत्कृष्टस्थितिकमनुष्यसूत्रमजघन्योत्कृष्टावगाहनमनुष्यसूत्रमिव भावनीयं, जघन्याभिनिबोधिकमनुष्यसूत्रे द्वे ज्ञाने वक्तव्ये द्वे दर्शने च, किं कारणं इति चेत् ?, उच्यते, जघन्याभिनिबोधिको हि जीवो नियमादवधिमनः पर्यवज्ञानविकलः, प्रबल ज्ञानावरण कर्मोदयसद्भावात्, अन्यथा जघन्याभिनिबोधिकज्ञानत्वायोगा

ततः शेषज्ञानदर्शनासंभवादाभिनिबोधिकज्ञानपर्यवैस्तुल्यः श्रुतज्ञान-पर्यवैर्द्वाभ्यां दर्शनाभ्यां च षट्स्थानपतितोक्ता, उत्कृष्टाभिनिबोधि-कसूत्रे 'ठिईए तिट्ठाणवडिए' इति उत्कृष्टाभिनिबोधिको हि नियमात् संख्येयवर्षायुः, असंख्येयवर्षायुषः तथाभवस्वाभाव्यात् सर्वोत्कृष्टा-भिनिबोधिकज्ञानासंभवात् . संख्येयवर्षायुषश्च प्रागुक्तयुक्त्या स्थित्या त्रिस्थानपतिता इति, जघन्यावधिसूत्रे उत्कृष्टावधिसूत्रे चावगाहनया त्रिस्थानपतितो वक्तव्यः, यतः सर्वजघन्योऽवधिर्यथोक्तस्वरूपो मनुष्याणां पारभविको न भवति, किन्तु तद्भवभावी, सोऽपि च पर्याप्तावस्थायां, अपर्याप्तावस्थायां तद्योग्यविशुद्धयभावात् , उत्कृष्टो-ऽप्यवधिर्भावतश्चारित्रिणः, ततो जघन्यावधिरुत्कृष्टावधिर्वाऽवगाहन-यात्रिस्थानपतितः, अजघन्योत्कृष्टस्त्ववधिः पारभविकोऽपि संभवति ततोऽपर्याप्तावस्थायामपि तस्य संभवात् अजघन्योत्कृष्टावधिरव-गाहनया चतुःस्थानपतितः, स्थित्या तु जघन्यावधिरुत्कृष्टावधिर-जघन्योत्कृष्टावधिर्वा त्रिस्थानपतितः, असंख्येयवर्षायुषामवधेर-संभवात् , संख्येयवर्षायुषां च त्रिस्थानपतितत्वात् , जघन्यमनः पर्यवज्ञानी उत्कृष्टमनःपर्यवज्ञानी अजघन्योत्कृष्टमनः पर्यवज्ञानी च स्थित्या त्रिस्थानपतितः, चारित्रिणामेव मनःपर्याय ज्ञानसद्भावात् . चारित्रिणां च संख्येयवर्षायुष्कत्वात् , केवलज्ञानसूत्रे तु 'ओगा-हणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए' इति केवलसमुद्घातं प्रतीत्य, तथाहि— केवलिसमुद्घातगतः केवली शेषकेवलिभ्योऽसंख्येयगुणाधिकाव-

गाहनः, तदपेक्षया शेषाः केवलिनोऽसंख्येयगुणहीनावगाहनाः, स्वस्थाने तु शेषाः केवलिनस्त्रिस्थानपतिता इति स्थित्या त्रिस्थान-पतितं, संख्येयवर्षायुष्कत्वात् ॥ व्यन्तरा यथाऽसुरकुमाराः, ज्योतिष्कवैमानिका अपि तथैव नवरं ते स्थित्यात्रिस्थानपतिता वक्तव्याः, एतच्च प्रागेव भावितं ! उपसंहारमाह—[ग्रन्थाग्रं ४०००] 'सेत्तं जीवपज्जवा' एते जीवपर्यायाः । सम्प्रत्यजीवपर्यायान् पृच्छति

मूलम्—अजीवपज्जवा णं भंते! कइविहा पन्नत्ता ?, गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता, तं जहा- रूविअजीवपज्जवा य अरूविअजीवपज्जवा य, अरूविअजीवपज्जवा णं भंते! कइविहा पन्नत्ता ?, गोयमा! दशविहा पन्नत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए धम्मत्थिकायस्स देसे धम्मत्थिकायस्स पएसा अहम्मत्थिकाए अहम्मत्थिकायस्स देसे अहम्मत्थिकायस्स पएसा आगासत्थिकाए आगासत्थिकायस्स देसे आगासत्थिकायस्स पएसा अद्धासमए सूत्र ११८)

मूलम्-रूविअजीवपज्जवा णं भंते! कइविहा पन्नत्ता ?, गोयमा! चउविहा पन्नत्ता, तं जहा—खंधा खंधदेसा खंधपएसा परमाणुपुग्गला, तेणं भंते ! किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता ?, गोयमा ! नो संखेज्जा नो

संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता ?, गोयमा! अणंता परमाणुपुग्गला अणंता दुपएसिया खंधा जाव अणंता दसपएसिया खंधा अणंता संखिज्जपएसिया खंधा अणंता असंखिज्जपएसिया खंधा अणंता अणंतपएसिया खंधा, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ ते णं नो संखिज्जा नो असंखिज्जा अणंता। सूत्र ११६)

मूलम्-परमाणुपोग्गलाणं भंते! केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा! परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-परमाणुपुग्गलाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा! परमाणुपुग्गले परमाणुपोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे असंखिज्जइभागहीणे वा संखिज्जइभागहीणे वा संखिज्जइगुणहीणे वा असंखिज्जइगुणहीणे वा अह अब्भहिए असंखिज्जइभागअब्भहिए वा संखिज्जइभागअब्भहिए वा संखिज्जइभागअब्भहिए वा संखिज्जइगुणअब्भहिए वा असंखिज्जइगुणअब्भहिए वा, कालवन्नपज्जवेहिं सिय

हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे अणंत-भागहीणे वा असंखिज्जइभागहीणे वा संखिज्जइ भागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा असंखिज्जगुण-हीणे वा अणंतगुणहीणे वा अह अब्भहिए अणंत-भागअब्भहिए वा असंखिज्जइभागअब्भहिए वा सं-खिज्जभागअब्भहिए वा अणंतगुणमब्भहिए वा एवं अवसेसवन्नगंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए फासाणं सियउसिणनिद्धलुक्खेहिं छट्ठाणवडिए, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता दुपएसियाणं पुच्छा गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ ?, गोयम! दुपएसिए दुपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे पएसहीणे अह अब्भहिए पएसमब्भहिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नाईहिं उवरिल्लेहिं चउफासेहिं य छट्ठाणवडिए, एवं तिपएसेवि, नवरं ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे पएसहीणे वा दुप-एसोहीणे वा, अह अब्भहिए पएसमब्भहिए वा

दुपएसमब्भहिए वा, एवं जाव दसपएसिए, नवरं ओगाहणाए पएसपरिवुड्ढी कायव्वा जाव दसपए-सिए, णवरं नवपएसहीणत्ति, संखेज्जपएसियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—गोयमा ! संखेज्जपएसिए संखेज्ज-पएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए, जइ हीणे संखेज्ज-भागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा अह अब्भहिए एवं चेव ओगाहणट्ठयाए वि दुट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइउवरिल्लचउफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, असंखिज्जपएसियाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—गोयमा ! असंखिज्जपएसिए खंधे असंखिज्ज-पएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए चउ-ट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइउवरिल्ल चउफासेहि य छट्ठाण-वडिए, अणंतपएसियाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! अणंतपएसिए खंधे अणंतपएसियस्स खंध-

स्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णगंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए ॥ एगपएसोगाढाणं पोग्गलाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! एगपएसोगाढे पोग्गले एगपएसोगाढस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठया छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइउवरिल्लचउफासेहिं छट्ठाणवडिए, एवं दुपएसोगाढेवि, संखिज्जपएसोगाढाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! संखिज्जपएसोगाढे पोग्गले संखिज्जपएसोगाढस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइउवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिए, असंखिज्जपएसोगाढाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! असंखिज्जपएसोगाढे पोग्गले असंखिज्जपएसोगाढस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए

ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइअट्ठफासेहिं छट्ठाण-
वडिए। एगसमयठियाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता
पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?,
गोयमा ! एगसमयठिइए पोग्गले एगसमयठियस्स
पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाण-
वडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते ठितीए तुल्ले
वण्णाइअट्ठफासेहिं छट्ठाणवडिए एवं जाव दस-
समयठिइए, संखेज्जसमयठिइयाणं एवं चेव, णवरं
ठिईए दुट्ठाणवडिए, असंखेज्जसमयठिइयाणं एवं चेव,
नवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए, एकगुणकालगाणं
पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केण-
ट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! एकगुणकालए
पोग्गले एकगुणकालगस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले
पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउ-
ट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्ज-
वेहिं तुल्ले अवसेसेहिं वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठा-
णवडिए अट्ठफासेहिं छट्ठाणवडिए, एवं जाव दसगुण-
कालए, संखेज्जगुणकालएवि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे
दुट्ठाणवडिए, एवं असंखिज्जगुणकालएवि नवरं
सट्ठाणे चउट्ठाणवडिए, एवं अणंतगुणकालएवि नवरं

मट्ठाने छट्ठाणवडिए, एवं जहा कालवन्नस्स वत्तव्वया भणिया तहा सेसाणवि वन्नगंधरसफासाणां वत्तव्वया भाणियव्वा जाव अणंतगुणलुक्खे। जहन्नोगाहणगाणं भंते! दुपएसियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जहन्नोगाहणए दुपएसिए खंधे जहन्नोगाहणस्स दुपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए सेसवन्नगंधरसपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए सीउसिणणिद्धलुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-जहन्नोगाहणाणं दुपएसियाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता, उक्कोसोगाहणएवि एवं चेव, अजहन्नमणुक्कोसोगाहणओ नत्थि, जहन्नोगाहणयाणं भंते! तिपएसियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जहा दुपएसिए जहन्नोगाहणए उक्कोसोगाहणएवि एवं चेव, एवं अजहन्नमणुक्कोसोगाहणएवि, जहन्नोगाहणयाणं भंते! चउपएसियाणं

पुच्छा, गोयमा! जहा जहन्नोगाहणए दुपएसिए तहा जहन्नोगाहणए चउप्पएसिए एवं जहा उक्कोसोगाहणए दुपएसिए तहा उक्कोसोगाहणए चउप्पएसिएवि, एवं अजहन्नमणुक्कोसोगाहणएवि चउप्पएसिए, णवरं ओगाहणट्ठाए सिय हीणे सिय तुल्ले सियमब्भहिए जइ हीणे पएसहीणे अह अब्भहिए पएसअब्भहिए एवं जाव दसपएसिए णेयव्वं, णवरं अजहन्नमणुक्कोसोगाहणए पएसपरिवुड्ढी कायव्वा जाव दसपएसियस्स सत्त पएसा परिवड्ढिज्जंति, जहन्नोगाहणगाणं भंते! संखिज्जपएपएसियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जहन्नोगाहणए संखेज्जपएसिए जहन्नोगाहणगस्स संखिज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए दुट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइचउफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए एवं उक्कोसोगाहणएवि, अजहन्नमणुक्कोसोगाहणएवि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे दुट्ठाणवडिए, जहन्नोगाहणगाणं भंते! असंखिज्जपएसियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं

वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नोगाहणए असंखिज्जपएसिए खंधे जहन्नोगाहणगस्स असंखिज्जपएसियस्स खंधस्स दव्वटठयाए तुल्ले पएसटठयाए चउट्ठाणवडिए ओगाहणटठयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइउवरिल्लफासेहि य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसोगाहणएवि, अजहन्नमणुक्कोसोगाहणएवि, एवं चेव, नवरं सट्ठाणे चउट्ठाणवडिए। जहन्नोगाहणगाणं भंते ! अणंतपएसियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणटठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नोगाहणए अणंतपएसिए खंधे जहन्नोगाहणगस्स अणंतपएसियस्स खंधस्स दव्वटठयाए तुल्ले पएसटठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणटठयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइउवरिल्ल चउफासेहिं छट्ठाणवडिए उक्कोसोगाहणएवि एवं चेव, नवरं ठिईएवि तुल्ले, अजहन्नमणुक्कोसोगाहणगाणं भंते ! अणंतपएसियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणटठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! अजहन्नमणुक्कोसोगाहणए अणंतपएसिए खंधे अजहन्नमणुक्कोसोगाहणस्स अणंत-

पएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइअट्ठफासेहिं छट्ठाणवडिए, जहन्नठिइयाणं भंते! परमाणुपुग्गलाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ ?, गोयमा! जहन्नठिइए परमाणुपोग्गले जहन्नठियस्स परमाणुपोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए तुल्ले वण्णाइ दुफासेहि य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसठिइएवि, अजहन्नमणुक्कोसठिइएवि एवं चेव नवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए, जहन्नठिइयाणं दुपएसियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ ?, गोयमा! जहन्नठिइए दुपएसिए जहन्नठिइयस्स दुपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे पएसहीणे अह अब्भहिए पएसअब्भहिए ठिईए तुल्ले वण्णाइ चउफासेहि य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसठिइएवि अजहन्नमणुक्कोसठिइएवि एवं चेव,

नवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए, एवं जाव दसपएसिए, नवरं पएसपरिवुड्ढी कायव्वा, ओगाहणट्ठयाए तिसुवि गमएसु जाव दसपएसिए एवं पएसा परिवड्ढिज्जंति, जहन्नठिइयाणं भंते ! संखिज्जपएसियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नठिइए संखिज्जपएसिए खंधे जहन्नठिइयस्स संखिज्जपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए दुट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए ठिईए तुल्ले वण्णाइ चउफासेहि य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसठिइएवि, अजहन्नमणुक्कोसठिइएवि एवं चेव, नवरं ठिईए चउट्ठाण वडिए, जहन्नठिइयाणं असंखिज्जपएसियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नठिइए असंखिज्जपएसिए जहन्नठिइयस्स असंखिज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तुल्ले वण्णाइ उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसठिइएवि, जहन्नमणुक्कोसठिइएवि, एव चेव नवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए,

जहन्नठिइयाणं अणंतपएसियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंत पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नठिइए अणंतपएसिए जहन्न-ठिइयस्स अणंतपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पए-सट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाण-वडिए ठिईए तुल्ले वण्णाइ अट्ठफासे हि य छट्ठाण-वडिए, एवं उक्कोस विठइएवि, अजहन्नमणुक्कोस-ठिइएवि एवं चेव, नवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए जहन्नगुणकालयाण परमाणुपुग्गलाणं पुच्छा, गोयमा !, अणंत पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नगुणकालए परमाणुपुग्गले जहन्नगुणकालगस्स परमाणुपुग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसाहि वण्णा नत्थि, गंधरसफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणकालएवि, एवमजहन्नमणुक्कोस-गुणकालएवि, णवरं सट्ठाणेछट्ठाणवडिए, जहन्नगुण-कालयाणं भंते ! दुपएसियाण पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं

वुच्चइ? गोयमा! जहन्नगुणकालए दुपएसिए जहन्नगुणकालयस्स दुपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे पएसहीणे अह अब्भहिए पएसअब्भहिए ठिईए चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसवन्नाइउवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणकालएवि, अजहन्नमणुक्कोसगुणकालएवि, एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं जाव दसपएसिए नवरं पएसपरिवुड्ढी ओगाहणाए तहेव, जहन्नगुणकालयाणं भंते! संखिज्जपएसियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा, पन्नत्ता से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जहन्नगुणकालए संखिज्जपएसिए जहन्नगुणकालगस्स संखिज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए दुट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं वण्णाइ उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणकालएवि एवं अजहन्नमणुक्कोसगुणकालएवि, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, जहन्नगुणकालयाणं

भंते! असंखिज्जपएमियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणटठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जहन्नगणकालए असंखिज्जपएसिए जहन्नगणकालगस्स असंखिज्जपएमियस्स दव्वटठयाए तुल्ले पएसटठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाए-वडिए कालवन्नपज्जवेहि तुल्ले अवसेसेहिं वण्णादि-उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिए, ओगाहणटठयाए चउट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणकालएवि, अजहन्न-मणुक्कोमगणकालएवि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, जहन्नगणकालयाणं भंते! अणंतपए-सियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता से केणटठेणं भंते! एव वुच्चइ?, गोयमा! जहन्न-गुणकालए अणंतपएसिए जहन्नगणकालयस्स अणंत-पएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसटठयाए छट्ठाण-वडिए ओगाहणटठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउ-ट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं वन्नादि अटठफासेहि य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणकालएवि. अजहन्नमणुक्कोमगणकालएवि, एवं चेव, नवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिए एवं नीललोहियहालिद्दसुक्किल्ल-सुब्भिगंधदुब्भिगंधतित्तकडुकसायअंबिलमहुररस पज्ज-

वेहि य वत्तव्वया भाणियव्वा, नवरं परमाणुपोग्गलस्स दुब्भिगंधस्स दुब्भिगंधो न भण्णइ दुब्भिगंधस्स सुब्भिगंधो न भण्णइ. तित्तस्स अवसेसे न भण्णंति एवं कडुयादीणवि. अवसेसं त चेव, जहन्नगुणकक्खडाणं अणंतपएसियाणं खंधाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ ?, गोयमा! जहन्नगुणकक्खडे अणंतपएसिए जहन्नगुणकक्खडस्स अणंतपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसेहिं छट्ठाणवडिए कक्खडफासपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं सत्तफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणकक्खडेवि, जहन्नमणुक्कोसगुणकक्खडेवि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं मउयगुरुयलहुएवि भाणियव्वे, जहन्नगुणसीयाणं भंते! परमाणुपोग्गलाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ ?, गोयमा! जहन्नगुणसीय परमाणुपोग्गले जहन्नगुणसीतस्स परमाणुपुग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठ-

याए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसेहिं छट्ठाण-वडिए सीयफासपज्जवेहि य तुल्ले उसिणफासो न भणति निद्धलक्खफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, जहन्नगुणसीताणं दुपदेसियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जहन्नगुणसीते दुपएसिए जहन्नगुणसीतस्स दुपदे-सियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे पएसहीणे (अह) अब्भहिए पएसअब्भहिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, सीयफासपज्जवेहिं तुल्ले उसिणनिद्धलुक्खफासपज्ज-वेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणसीतेवि, अजहन्न-मणुक्कोसगुणसीतेवि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाण-वडिए, एवं जाव दसपएसिए, णवरं ओगाहणट्ठ-याए पएसपरिवुड्ढी कायव्वा, जाव दसपएसियस्स नवपएसा वुड्ढिज्जंति, जहन्नगुणसीयाणं संखेज्जपए-सियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जहन्न-गुणसीते संखिज्जपएसिए जहन्नगुणसीतस्स संखि-

ज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए दुट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णादीहिं छट्ठाणवडिए सीयफास-पज्जवेहिं तुल्ले उसिणनिद्धलुक्खेहिं छट्ठाणवडिए. एवं उक्कोसगुणसीतेवि. अजहन्नमणुक्कोसगुणसीतावि एव चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, जहन्नगुणसी-याणं असंखिज्जपएसियाणं पुच्छा. गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ ?, गोयमा! जहन्नगुणसीते असंखिज्जपएसिए जहन्न-गुणसीयस्स असंखिज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसियाए चउट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाण-वडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइ पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए सीयफासपज्जवेहिं तुल्ले उसिणनिद्ध-लुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एव उक्कोसगुण-सीतेवि, अजहन्नमणुक्कोसगुणसीतेवि एवं चेव, न-वरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए जहन्नगुणसीताणं अणंत-पएसियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता! पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ ?, गोयमा! जहन्नगुणसीते अणंतपएसिए जहन्नगुणसीतस्स अणंत-पएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाण-

वड्डिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइ पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए सीयफासपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं सत्तफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणसीतेवि अजहन्नमणुक्कोसगुणसीतेवि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं उसिणणिद्धलक्खे जहा सीते परमाणुपोग्गलस्स तहेव पडिवक्खो सव्वेसिं न भण्णइ त्ति भाणियव्वं ॥ सूत्र १२०)

मूलम्- (साम्प्रत सामान्यसूत्रमारभ्यते) जहन्नपएसियाणं भंते! खंधाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ ?, गोयमा! जहन्नपएसिए खंधे जहन्नपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे पएसहीणे अह अब्भहिए पएसमब्भहिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरस-उवरिल्लचउफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए उक्कोस-पएसियाणं भंते! खंधाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता०, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ ?, गोयमा! उक्कोसपएसिए खंधे उक्कोसपएसियस्स खंधस्स

दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइ अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, अजहन्नमणुक्कोसपएसियाणं भंते! खंधाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता, गोयमा! अणंता०, से केणट्ठेणं० ?, गोयमा! अजहन्नमणुक्कोसपएसिए खंधे जहन्नमणुक्कोसपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए, तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइ अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए! जहन्नोगाहणगाणं भंते! पोग्गलाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता०, से केणट्ठेणं० ?, गोयमा! जहन्नोगाहणाए पोग्गले जहन्नोगाहणगस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइ उवरिल्लफासेहि य छट्ठाणवडिए, उक्कोसोगाहणएवि एवं चेव, नवरं ठिईए तुल्ले, अजहन्नमणुक्कोसोगाहणगाणं भंते! पोग्गलाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता०, से केणट्ठेणं० ?, गोयमा! अजहन्नमणुक्कोसोगाहणाए पोग्गले अजहन्नमणुक्कोसोगाहणगस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाण-

वड्डिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइ अट्ठफास-पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, जहन्नठिइयाणं भंते! पोग्गलाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता०, से केणट्ठेणं गोयमा! जहन्नठिइए पोग्गले जहन्नठिइयस्स पोग्ग-लस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तुल्ले वण्णाई अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, एव उक्कोसठि-इएवि, अजहन्नमणुक्कोसठिइएवि एवं चेव, नवरं ठिइएवि चउट्ठाणवडिए, जहन्नगुणकालयाणं भंते! पोग्गलाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंता०, से केणट्ठेणं?, गोयमा! जहन्नगुणकालए पोग्गले जहन्नगुणकालयस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं वन्नगंधरसफासपज्जवेहि य छट्ठाण-वडिए, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ जहन्नगुण-कालयाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता, एवं उक्कोसगुणकालएवि, अजहन्नमणुक्कोसगुणकालय-वि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं जहा

कालवन्नपज्जवाणं वत्तव्वया भणिया तहा सेसाणवि वण्णगंधरसफासाणं वत्तव्वया भाणियव्वा जाव अजहन्नमणुक्कोसलुक्खे सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। सेत्तं रूविअजीव पज्जवा, सेत्त अजीवपज्जवा। (सूत्र १२१)

टीका—'अजीवपज्जवाणं' इत्यादि, 'रूविअजीवपज्जवा य अरूवीअजीवपज्जवा य' इति रूपमिति उपलक्षणमेतत् गंधरसस्पर्शाश्च विद्यन्ते येषां ते रूपिणः ते च ते अजीवाश्च रूप्यजीवाः तेषां पर्यायाः रूप्यजीवपर्यायाः (पुद्गलपर्यायाः) इत्यर्थः, तद्विपरीता अरूप्यजीवपर्यायाः अमूर्त्ताजीवपर्याया इति भावः, 'धम्मत्थिकाए' इत्यादि धर्मास्तिकाय इति परिपूर्णमवयवि द्रव्यं, धर्मास्तिकायस्य देश —तस्यैवार्द्धादिरूपो विभागः, धर्मास्तिकायस्य प्रदेशाः तस्यैव निर्विभागा भागाः एवं त्रिकमधर्मास्तिकाये आकाशास्तिकाये च भावनीयं, एतावता चान्योऽन्यानुगमात्मकावयवावयविस्वरूपं धर्मास्तिकायादिकं वस्त्विति प्रतिपादितं. दशमोऽद्धासमयः, ननु अत्र पर्याया वक्तुमुपक्रान्तास्तत्कथं द्रव्यमात्रोपन्यासकृतः ?, उच्यते, पर्यायपर्यायिणोः कथंचिदभेदख्यापनार्थः, एवमुत्तरोऽपि ग्रन्थः. आह च मूलटीकाकारः— 'अत्र सर्वत्र पर्यायपर्यायिणोः कथंचिदभेदख्यापनार्थमित्थं सूत्रोपन्यास' इति, परमार्थतस्त्वेतद्द्रष्टव्यं— धर्मास्तिकायत्वं धर्मास्तिकायदेशत्वं धर्मास्तिकायप्रदेशत्वं इत्यादि,

'ते णं भंते ! किं संखेज्जा' इत्यादि, ते स्कन्धादयः प्रत्येकं किं संख्येया असंख्येया अनन्ता भगवानाह—अनन्ताः, एतदेव भावयति—'केणट्ठेणं भंते ! इत्यादि पाठसिद्ध। सम्प्रतिदण्डकक्रमेण परमाणुपुद्गलादीनां पर्यायाश्चिन्तनीयाः, दण्डकक्रमश्चायम्—प्रथमतः सामान्येन परमाण्वादयश्चिन्तनीयाः तदनन्तरं ते एव एकप्रदेशाद्यवगाढाः तत एक समयादिस्थितिकाः तदनन्तरमेकमेकगुणकालकादयः ततो जघन्याद्यवगाहनाप्रकारेण तदनन्तरं जघन्यस्थित्यादिभेदेन ततो जघन्यगुणकालकादिक्रमेण तदनन्तरं जघन्य प्रदेशादिना भेदेनेति, उक्तं च—'अणुमाइयाहियाणं खेत्तादिपएससंगयाणं च जहन्नावगाहणाइणा चेव जहन्नादिदेसाणं ॥१॥"

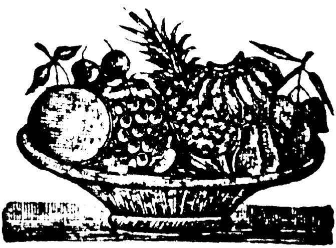
अस्याक्षरगमनिका—प्रथमतोऽण्वादीनां परमाण्वादीनां चिन्ता कर्त्तव्या, तदनन्तरं क्षेत्रादिप्रदेशसङ्गतानां, अत्रादिशब्दात्कालभावपरिग्रहः, ततोऽयमर्थः—प्रथमतः क्षेत्रप्रदेशैरेकादिभिः संगतानां चिन्ता कर्त्तव्या, तदनन्तरं कालप्रदेशैः—एकादिसमयैस्ततो भावप्रदेशैः—एकगुणकालकादिभिरिति, तदनन्तरं जघन्यावगाहनादीनामिति, अत्रादिशब्देन मध्योत्कृष्टावगाहनाजघन्यमध्यमोत्कृष्ट स्थितिजघन्यमध्योत्कृष्टगुणकालकादिवर्णपरिग्रहः, ततो जघन्यादिप्रदेशानां—जघन्यप्रदेशानामुत्कृष्टप्रदेशानामजघन्योत्कृष्टप्रदेशानामिति। तत्र प्रथमतः क्रमेण परमाण्वादीनां चिन्तां कुर्वन्नाह—'परमाणुपोग्गलाणं भंते !' इत्यादि, स्थित्या चतुःस्थानपतितत्व, परमाणोः

समयादि (स्थि)तिकोऽपरोऽसंख्येयकालस्थायित्वात्. कालादिवर्णपर्यायैः षट्स्थानपतितं एकस्यापि परमाणोः पर्यायानन्त्याविरोधात् ननु परमाणुरप्रदेशो गीयते ततः कथं पर्यायानन्त्याऽविरोधः ?, पर्यायानन्त्ये नियमतः सप्रदेशत्वप्रसक्तेः, तदयुक्तं, वस्तुतत्त्वापरिज्ञानात्, परमाणुर्हि अप्रदेशो गीयते द्रव्यरूपतया सांशो न भवतीति, न तु कालभावाभ्यामिति, 'अपएसो दव्वट्ठयाए' इति वचनात्, ततः कालभावाभ्यां सप्रदेशत्वेऽपि न कोऽपि दोषः, तथा परमाण्वादीनामसंख्यातप्रदेशस्कन्धपर्यन्तानां केषांचिदनन्तप्रादेशिकानामपि स्कन्धानां तथैकप्रदेशावगाढानां यावत् संख्यातप्रदेशावगाढानां शीतोष्णस्निग्धरूक्षरूपाश्चत्वार एव स्पर्शा इति तेषामेव परमाण्वादीनां षट्स्थानपतितता वक्तव्या, न शेषा, द्विप्रदेशस्कन्धसूत्रे—'ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए' इत्यादि, यदा द्वावपि द्विप्रदेशिकौ स्कन्धौ द्विप्रदेशावगाढावेकप्रदेशावगाढौ वा भवतस्तदा तुल्यावगाहनौ, यदा त्वेको द्विप्रदेशावगाढो वा भवतस्तदा तुल्यावगाहनौ, यदा त्वेको द्विप्रदेशावगाढोऽपरस्त्वेकप्रदेशावगाढस्तदा एकप्रदेशावगाढो द्विप्रदेशावगाढापेक्षया प्रदेशहीनो द्विप्रदेशावगाढस्तु तदपेक्षया (प्रदेश) ऽभ्यधिकः शेषं प्राग्वत्, त्रिप्रदेशस्कन्धसूत्रे "ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे' इत्यादि, यदा द्वावपि त्रिप्रदेशिकौ स्कन्धौ त्रिप्रदेशावगाढौ द्विप्रदेशावगाढौ एकप्रदेशावगाढौ वा तदा तुल्यौ यदा त्वेकस्त्रिप्रदे-

शावगाढो वा त्रिप्रदेशावगाढो वा अपरस्तु द्विप्रदेशावगाढ एकप्रदेशावगाढो वा तदा द्विप्रदेशावगाढैकदेशाशावगाढौ यथाक्रमं त्रिप्रदेशावगाढद्विप्रदेशावगाढापेक्षया एकप्रदेशहीनौ त्रिप्रदेशावगाढद्विप्रदेशावगाढौ तु तदपेक्षया एकप्रदेशाभ्यधिकौ, यदा त्वेकस्त्रिप्रदेशावगाढोऽपर एकप्रदेशावगाढस्तदा एकप्रदेशावगाढस्त्रिप्रदेशावगाढापेक्षया द्विप्रदेशहीनः त्रिप्रदेशावगाढस्तु तदपेक्षया द्विप्रदेशाभ्यधिकः, एवमेकैकप्रदेशपरिवृद्धया चतुःप्रदेशादिषु स्कन्धेष्ववगाहनामधिकृत्य हानिवृद्धिर्वा तावद् वक्तव्या यावद् दशप्रदेशस्कन्धः तस्मिंश्च दशप्रदेशके स्कन्धे एव वक्तव्यः 'जइ हीणे पएसहीणे वा दुपएसहीणे वा जाव नवपएसहीणे वा अह अब्भहिए पएसमब्भहिए वा दुपएसमब्भहिए वा जाव नवपएसमब्भहिए वा' इति भावना पूर्वोक्तानुसारेण स्वयं कर्तव्या. संख्यातप्रादेशिकस्कन्धसूत्रे 'ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए' इति संख्येयभागेन संख्येयगुणेन चेति, असंख्यातप्रदेशकस्कन्धे 'ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए' इति असंख्यातभागेन संख्यातभागेन संख्यातगुणेनासंख्यातगुणेनेति, अनन्तप्रादेशिकस्कन्धेष्ववगाहनार्थतया चतुःस्थानपतिता, अनन्तप्रदेशावगाहनाया असंभवतोऽनन्तभागानन्तगुणाभ्यां वृद्धिहान्यसम्भवात्, 'एगपएसोगाढाणं पोग्गलाणं भंते ?' इत्यादि. अत्र 'दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए' इति. इदमपि विवक्षितैकप्रदेशावगाढं परमाण्वादिकं द्रव्यं इदमप्यपरैकप्रदेशावगाढं

द्विप्रदेशादिकं द्रव्यमिति द्रव्यार्थतया तुल्यता प्रदेशार्थतया षट्-स्थानपतिता. अनन्तप्रदेशकस्यापि स्कन्धस्यैकस्मिन्नाकाशप्रदेशेऽवगाहनासम्भवात्, शेषं सुगमं, एवं स्थितिभावाश्रयाण्यपि सूत्राण्युपयुज्य भावनीयानि। 'जहन्नोगाहणगाणं भंते! दुपएसियाणं' इत्यादि. जघन्यप्रदेशकस्य स्कन्धस्यावगाहना एकप्रदेशात्मिका उत्कृष्टा द्विप्रदेशात्मिका अत्रापान्तरालं नास्तीति मध्यमा न लभ्यते तत उक्तं—'अजहन्नमणुक्कोसोगाहणओ नत्थि' इति, त्रिप्रदेशकस्य स्कन्धस्य जघन्यावगाहना एकप्रदेशरूपा मध्यमा द्विप्रदेशरूपा उत्कृष्टा त्रिप्रदेशरूपा, चतुष्प्रदेशस्य जघन्या एक-प्रदेशरूपा उत्कृष्टा चतुष्प्रदेशात्मिका मध्यमा द्विविधा द्विप्रदेशा-त्मिका त्रिप्रदेशात्मिका च, एवं च सति मध्यमावगाहनश्चतुःप्रदेश-को मध्यमावगाहनचतुःप्रदेशकापेक्षया यदि हीनस्तर्हि प्रदेशतो हीनो भवति अथाभ्यधिकस्ततः प्रदेशतोऽभ्यधिकः, एवं पञ्चप्रदेशादिषु स्कन्धेषु मध्यमावगाहनामधिकृत्य प्रदेशपरिवृद्धया वृद्धिर्हानिश्च तावत् वक्तव्या यावद्दशप्रदेशके स्कन्धे सप्तप्रदेशपरिवृद्धिः, सा चैवं वक्तव्या—'अजहन्नमणुक्कोसोगाहणए दसपएसिए अजहन्नमणु-क्कोसोगाहणस्स दसपएसियस्स खंधस्स ओगाहणट्टयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे पएसहीणे दुपएसहीणे जाव सत्तपएसहीणे अह अब्भहिए पएसअब्भहिए दुपएसअब्भ-हिए जाव सत्तपएसअब्भहिए' इति शेषं सूत्रं स्वयमुपयुज्य परिभाव-

नेयम् सुगमत्वात् नवरमनन्तप्रदेशोत्कृष्टावगाहनाचिन्तायां 'ठिईए वि तुल्ले' इति उत्कृष्टावगाहनः किलानन्तप्रदेशकः स्कन्धः स उच्यते यः समस्तलोकव्यापी स चाचित्तमहास्कन्धः केवलिसमुद्घातकर्मस्कन्धो वा तयोश्चोभयोरपि दण्डकपाटमन्थान्तरपूरणलक्षण चतुःसमयप्रमाणत्वेन तुल्यकालता. शेषं सूत्रमापदपरिसमाप्तेः प्रागुक्तभावनाऽनुसारेण स्वयमुपयुज्य परिभावनीयं सुगमत्वात्, नवरं जघन्यप्रदेशकाः स्कन्धाः द्विप्रदेशका उत्कृष्टप्रदेशकाः सर्वोत्कृष्टानन्तप्रदेशाः ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां प्रज्ञापना-टीकायां विशेषाख्यं पदं समाप्तम् ॥



अथ परिशिष्टो भागः॥

मूलम्-सिद्धिः स्याद् वादात् ॥ १।१।२॥

स्यादित्यव्ययमनेकान्तद्योतकं, ततः स्याद्वादोऽनेकान्तवादो नित्यानित्याद्यनेकधर्मशबलैकवस्त्वभ्युपगम इति यावत् ततः सिद्धिर्निष्पत्तिर्ज्ञप्तिश्च प्रकृतानां शब्दानां वेदितव्या, एकस्यैव हि ह्रस्वदीर्घादिविधयोऽनेककारकसंनिपातः सामानाधिकरण्यं विशेषणविशेष्यभावादयश्च, स्याद्वादमन्तरेणनोपपद्यन्ते, सर्वपार्षदत्वाच्च, शब्दानुशासनस्य सकलदर्शनसमूहात्मकस्याद्वादसमाश्रयणमतिरमणीयम् । यदवोचामस्तुतिषु—अन्योऽन्यपक्षप्रतिपक्षभावाद्, यथा परेमत्सरिणः प्रवादाः । नयानशेषानविशेषमिच्छन् न पक्षपाती समयस्तथाते ॥ स्तुतिकारोऽप्याह—"नयास्तवस्यात्पदलाञ्छना इमे रसोपविद्धा इवलोहधातवः । भवंत्यभिप्रेतफलायतस्ततो भवंतमार्याः प्रणताहितैषिणः ॥ १ ॥ इति, अथवा वादात् विविक्तशब्दप्रयोगात् सिद्धिः सम्यग्ज्ञानंतद्द्वारेण च निःश्रेयसं स्याद् भवेदिति शब्दानुशासनमिदमारभ्यत इत्यभिधेय प्रयोजनपरतयापीदं व्याख्येयम् ॥ २ ॥

न्यासः—सिद्धिःस्याद्वादात् ॥ दशधा सूत्राणि—संज्ञा १ परिभाषा २ अधिकार, ३ विधि, ४ प्रतिषेध ५ नियम ६ विकल्प ७ समुच्चय ८ अतिदेश ६ अनुवाद १० रूपाणि तत्र औदन्ताः स्वराः" इति १" "प्रत्ययः प्रकृत्यादेः" इति २। 'घुटि", इति ३। नाम्यन्तस्था कवर्गात्—इति ४ "न स्तं मत्वर्थे", इति ५ "नाम सिदय व्यञ्जने" इति ६। 'सौनवेतौ'इति ७। 'शमोऽता'इति ८, 'इदितो वा, इति ६। 'तयोः समूहवच्च बहुषु' १० इत्यादीनि सूत्राणि प्रत्येकं ज्ञातव्यानि, एतेषां मध्ये इदमधिकारसूत्रमाशास्त्र-परिसमाप्तेः ॥ स्यादित्यव्ययमिति विभक्त्यन्ताभत्वेन स्वरादि-स्याद्वाऽनेकान्तंद्योतयति वाचकत्वेनेत्यनेकान्तद्योतकम्। अनेकान्त-वाद इति, अमति गच्छति धर्मिणमिति 'दम्यमि" इति तेऽन्तो धर्मः। न एकोऽनेकः। अनेकोऽन्तोऽस्यास्यवनेकान्तः तस्य वदनं याथातथ्येन प्रतिपादनम् तथाभ्युपगतस्तेवभवति इति, नित्यानि-त्यादीति। आदिशब्दात् सदसदात्मकत्वसामान्यविशेषात्मकत्वाभि-लाप्यानभिलाप्यत्वग्रहः 'नेध्रुवे" इति त्याच, नित्यमुभयाद्यन्ता-परिच्छिन्नसत्ताकं वस्तु। तद्विपरीतमनित्यम्। आदीयते-गृह्यते ऽर्थोऽस्मादिति' उपसर्गाद् दः किः इति कौ आदिः। धरन्ति-धर्मिणो धर्मिरूपतामिति धर्माः वस्तुपर्यायाः ते च सहभुवः सामान्यादयः क्रमभुवश्च नव पुराणादयः पर्यायाः। धर्ममन्तरेणधर्मिण स्वरूप-माशात् ॥ शाम्यति-विरुद्धधर्मैर्युगपत् परिणति मुपयाति 'शमंत्र च'

इत्यते शबलम्। एत्यभेदं गच्छति "भीणं शलि" इति के एकर्। वसंतिसामान्यविशेषरूपा धर्मोऽस्मिन्निति "वसेर्णिद्वा" इतिवुनि-वस्तु। नित्यानित्यादिभिरनेकधर्मैः शबलं यदेकंवस्तु तस्याभ्युपगमः प्रमाणाविरुद्धोऽङ्गीकारः॥ तत एव शब्दानां सिद्धिर्भवतिनान्यथेत्यत आह—एकस्य रेति। तथाहि—यस्यैव वर्णस्य ह्रस्वत्वं विधीयते तस्यैव दीर्घत्वादिः तस्य च सर्वात्मना नित्यत्वे पूर्वधर्मनिवृत्तिपूर्वकस्य ह्रस्वादिविधेरसम्भवः, एवमनित्यत्वेऽपि जन्मानन्तरमेव विनाशात्कस्य ह्रस्वादिविधिरिति वर्णरूपसामान्यात्मनानित्यो ह्रस्वादिधर्मात्मनात्व-नित्य इति॥ तथा द्रव्याणां स्वपराश्रयसमवेतक्रियानिर्वर्तकं सामर्थ्य कारकम्। तच्च कर्त्रादिनेक प्रकारमेकस्याप्युपलभ्यते। यथा पीयमानं मधु मदयति वृक्षमारुह्य ततः फलान्यवचिनोति, विषयेभ्योनिभ्यव-नात्मन्नस्तेभ्य एवात्मानं प्रयच्छंस्तैरेव बन्धमाप्नोति इत्यादि। तच्च कथमेकस्य सर्वथा नित्यत्वे एकरूपां वृत्तिमवलम्बमानस्यावस्था-न्तराभिव्यक्तरूपोपालम्भाभावाद् घटते इति साध्यसाधनरूपकारक-व्यवहारविलोपः॥ अनित्यत्वेऽपि न घटते। तथाहि—स्वातंत्र्य कर्तृत्वम्। तच्च इदं फलमिच्छं क्रिया करणमेतदेषक्रमोऽव्ययोऽय-मनुषङ्गजंफलमिदंदशेयंमम॥ अयं सुहृद् अयं द्विषन प्रकृतदेश-कालाविमाविति प्रतिवितर्कयन् प्रयतते बुधान्तेतरः॥ १॥ इत्येव मादरूपस्वरूपसामर्थ्यकारकयोस्त्वलक्षणम्। तदपि नानित्यस्य क्षणमात्रावस्थायित्वे नोपजननानन्तरमेव विनष्टस्य युज्यते किं पुनः कारकसंनिपात इति नित्यानित्यात्मकः स्याद्वादोऽङ्गीकर्तव्यः तथा

तमन्तरेण सामानाधिकरण्यं विशेषणविशेष्यभावोऽपि नोपपद्यते तथाहि—भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तयोः शब्दयो रेकत्रार्थे वृत्तिः सामानाधिकरण्यम्। तयोश्चात्यन्त भेदे घटपटयोरिव नैकत्रवृत्तिः नाप्यत्यन्ताभेदे, भेदनिबन्धनत्वात्तस्य। नहि भवतिर्नीलं नीलमिति। किञ्च नीलशब्दादेव तदर्थप्रतिपत्तौ उत्पलशब्दानर्थक्यप्रसङ्गः॥ तथैवंचन्तु भेदे वेतिनियम्यमाने विशेषणविशेष्यभावाभावः। विशेषणाद् विशेष्यं कथंचिदर्थान्तरभूतमवगन्तव्यम्, अस्तित्व चेहविशेषणम। तस्यविशेष्यंवस्तु तदेव वास्यादन्यदेववानतावत्तदेव। नहि तदेव तस्य विशेषणं भवितुमर्हति अस्ति च विशेष्यविशेषणत्वमपि न स्यात्। विशेष्यं विशिष्यते येन तद् विशेषणमितिव्युत्पत्तेः। अथान्यत्तर्हि अन्यत्वाविशेषात् सर्वं सर्वस्यविशेषणंस्यात्। समवायात् प्रतिनियतो विशेषणविशेष्य भाव इतिचेत्, न सोऽपि अविष्वग्भावलक्षण एवैष्टव्यः। रूपान्तरपरिकल्पनायामनवस्थाप्रसङ्गः। अतो नासावत्यन्तं भेदेऽभेदेवासंभवतीतिभेदाभेदलक्षणः स्याद्वादोऽकामेनापि अभ्युपगन्तव्यइति, आदिग्रहणात् स्थान्यादेशनिमित्तनिमित्ति प्रकृतिविकारभावादिग्रहः। किञ्च शब्दानुशासनमिदं, शास्त्रञ्चप्रतिविप्रतिपद्यते, नित्य इत्येके, अनित्य इत्यपरे नित्यानित्य इतिचान्ये। तत्र नित्यत्वानित्यत्वयोरन्यतरपक्षपरिग्रहे सर्वोपादेयत्वविरहः स्यादित्याह—सर्वपार्षदत्वाच्चेति। स्वेन रूपेण व्यवस्थितं वस्तु सत्वं पृणाति-पालयतीति "प्रः सद" इति सदिः पर्षद् तत्र साधु

"पर्षदोऽण्यणौ" इति णो पार्षदं साधारणमित्यर्थः, अथवा, पार्षदः परिचारक उच्यते, स च पर्षत्साधारण इत्यर्थः। पार्षदत्वेन च साधारणत्वंलक्ष्यते तेन सर्वेषां पार्षदं सर्वसाधारणमित्यर्थः। दृश्यते तत्त्वमेकदेशेनैभिरिति दर्शनानिनयाः। समस्तदर्शनानां यः समुदाय तत्साधारणस्याद्वादस्याभ्युपगमोऽतितरां निर्दोष इत्यर्थः। अति रमणीयमिति णिगन्ताद् "प्रवचनर्यादयः" इत्यनायः। एतदेव स्वोक्तं तद्रक्ष्यति अन्योन्येत्यादि। साध्यधर्मवैशिष्ट्येन पक्ष्यते व्यक्तीक्रियते हेत्वादिभिरिति। "माशा वदे" —इति न पक्षः साध्यधर्मविशिष्टोधर्मी शब्दोऽनित्य इत्यादि, प्रतिकूलः पक्षः प्रतिपक्षः। अन्योऽन्यपक्षप्रतिपक्षास्तेषांभावः, एकस्मिन् धर्मिणि परस्परविरुद्धधर्मोपन्यासइत्यर्थः। ततः यथेति दृष्टान्तोपन्यासे॥ परे भवच्छासनादन्येसांतिरायामःवराऽप्रदननारयेराामत शायने मत्वर्थीय -मत्सरिणः। प्रकर्षेणोद्यते प्रतिपाद्यते स्वाभ्युपगतोऽर्थो यैरिति "व्यञ्जनाद् घञ्" इति घञि प्रवादाः प्रवचनानि॥ यथा परस्परविरोधात परप्रवादामत्सरिणो न तथा त्वत्समय इति॥ अत्रविशेषणद्वारेणहेतुमाहपक्षपातीति — यतोऽयं निमित्तवशुर्ष्याकारूपं पक्षं पातयति नाशयतीत्येवंशीलो रागस्य जीवनाशं नष्टत्वात्। अत्रैवहेतुमाह—नयानशेषानविशेषमिच्छन्निति। नयान् नैगमादीन् समस्तान् अविशेषम भेदं य ताभवत्येवमङ्गीकुर्वन्। अयंभावः नयानां समत्वेन दर्शनाद्रागमयस्य पक्षस्य पातितत्वात् समयस्य

मत्सराभावः ॥ परयांतु विपर्ययात् तत्सद्भावः. इति सम्यगीत-गच्छति शब्दोऽर्थम नेति "गुणाग्नि" इति घ समयः संकेतः । यद्-वासम्यगयान्त गच्छन्ति जीवादयः पदार्था स्वस्मिन्रूपे प्रतिष्ठांप्राप्नु-व त्य स्मन्निति समय आगम । मत्सरित्वस्य विधेयत्वादुनेनेवनत्र: सवन्धात् , पक्षपातिशब्देन वसव धात् प्रक्रमभेदाभाव । परोक्त-नापि दृढय ति—नया इत्यादि । नीयन्ते प्राप्यन्ते जीवादयोऽर्थो एकदेशविशिष्टा एभिरिति नयाः निरवधारणाभिप्रायविशेषाः । सावधारणास्यदुर्नयत्वात् समस्तार्थप्राप्तेस्तु प्रमाणाधीनत्वात् – ते च नैगमादयः सत्र तत्र यातपदेन चिन्हिता अभिप्रेतं फलन्ति लिहाश्च् अभिप्रेतं फलं येभ्य इति वहुव्रीहिः ॥ प्रणा इति । प्रणन्तुमार-स्थ न्तः । हितैपिण इति । विशेषणद्वारेण हेतुः हितैपित्वादित्यर्थः । आराद्दूरान्तिकयोः, सम्यग्ज्ञानाद्यात्मकमोक्षमार्गस्यारात् , समीपं याताः प्राप्ताः, दूरं वा पापक्रियाभ्यो याता इत्यार्याः । ननु अस्तु युक्तियुक्तः स्याद्वाद तदधीनत्वाच्छब्दसिद्धेः, तथापि अनभिहि-ताभिध्येय प्रयोजनत्वात् कथमिदं प्रेक्षावत् प्रवृत्तिविषयमित्या-शंक्याह—अथवेति, विविक्तानामसाधुत्वविमुक्तानां शब्दानां प्रयुक्तेः सम्यग्ज्ञानरूपासिद्धिः साधुशब्दाश्चात्राभिधेयाः । यमर्थमधिकृत्य प्रवर्ततेतत् प्रयोजनमिति सम्यग् ज्ञानमनन्तरं प्रयोजनं तद्द्वारेणतु निःश्रेयसंपरं परमिति । यतः "द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्द ब्रह्म परं च यत् । शब्दब्रह्मणि निष्णातः परंब्रह्माधिगच्छति ॥१॥ व्याकरण

पद सिद्धिः पदसिद्धेरर्थनिर्णयो भवति, अर्थात् तत्त्वज्ञानं तत्त्वज्ञानात् परं श्रेय इति ॥१॥ सम्बन्धस्त्वभिधेयप्रयोजनयोः साध्यसाधनभावः, शब्दानुशासनाभिधेययोस्तु अभिधानाभिधेयरूपः। सच नयोरेवान्तर्भूतत्वात् पृथग् नोपदर्शित इति ॥२॥ (श्रीहेमशब्दानुशासनम्। (बृहद्वृत्तिः) लघुन्यासः) ॥

सूत्र-सिद्धिरनेकान्तात ॥ १ ॥

प्रकृत्यादिविभागेन व्यवहाररूपा आश्रयाश्रयतया परमार्थतोपेता प्रकृत्यादिविभागेन च शब्दानां सिद्धिं अनेकान्ताद्भवतात्यर्थाधिकार आशास्त्रपरिसमाप्ते वेदितव्यः। अस्तित्वनास्त्वि नित्यत्वसामान्यसामानाधिकरण्यविशेषणविशेष्यादिकाऽनेकः अन्तः स्वभावः यस्मिन्भावे सोऽयमनेकान्तः अनेकात्मा इत्यर्थः। तस्यावग्रहेहावायधारणात्मकं प्रत्यक्षं तद्व्यवहारान्यथानुपपत्तेरितीदमनुमानं च साधकम्। अथास्तित्वनास्तित्वादीनां परस्परविरुद्धानां कथमेकयाधिकरण्यमसङ्कीर्णरूपता च यथा भवतामेकत्र हेतौ अन्वयव्यतिरेकयोः जनकयोरपि वा जन्यमानरूपरसापेक्षयोः सहकारित्वासहकारित्वयोः अथ हेतौ सपक्षविपक्षापेक्षया रूपद्वय रसे च सभागासभागकार्यापेक्षया अत्रापि तर्हि स्वरूपपररूपापेक्षया स्तित्वनास्तित्वे। द्रव्यपर्यायापेक्षया च नित्यत्वनित्यत्वे। द्रव्यपर्यययोश्चान्वयव्यतिरेकाभ्यां सिद्धिरित्यास्तां तावदेतत्। अनेकान्तादितीदमेव ज्ञापकं हेतौ

कापि भवति। तेनानित्यः शब्दः कृतकत्वादित्यादि सिद्धम्। उत्तरसूत्रैकदेशाद्याचापोऽधिकारः (?) इति वक्ष्यति। सत्स्थानिक्रिय स्वमिति एतच्च वस्तुना साधर्म्यवैधर्म्यात्मकेऽनेकान्ते सत्युपपद्यते। तथाहि—अकाराकारयोः ह्रस्वदीर्घकालभेदेन वैधर्म्येऽपि तुल्यस्थानकारणत्वेन साधर्म्यमस्तीति सवर्णसंज्ञाव्यवहारः सिद्ध्यति। यदि हि साधर्म्यमेव स्यात् तदास्तित्वेनैवान्यैरपि धर्मैः साधर्म्ये सर्वमेकं प्रसज्येत। यदि च वैधर्म्यमेव तदा कस्यचिदस्तित्वमपरस्य नास्तित्वमन्यस्य चान्यत्। अधुमृदिति अन्वयव्यतिरेकाभ्यामर्थवच्छब्दरूपं मृतसञ्ज्ञकमनेकान्तात् सिद्ध्यति। तथाहि विभक्त्यन्तस्य च शब्दस्य प्रयोगादर्थे ज्ञानमुत्पद्यत इति सञ्ज्ञाता अन्वयव्यतिरेकौ दृष्टौ। तदवयवानामप्यन्वयव्यतिरेकाभ्यामर्थवत्ता जायते। वृक्षावित्यत्र विसर्जनीयाभावादेकत्वार्थो निवृत्तः। औकारभावाद् द्वित्वं जातम्। अकारान्तवृक्षशब्दान्वयाज्जातिरन्वयिनी प्रतीयते। अन्वयव्यतिरेकौ च भावावेकान्तवादेनस्तः। तथाह्यपाये ध्रुवमपादानमित्यादि षट्कारकी नित्यक्षणिकपक्षयोर्नोपपद्यते ह्यपायध्रौव्याद्यभावात्। उक्तञ्च—इदं फलमियं क्रिया करणमेतदेष क्रमो, व्ययोऽयमनुषङ्गजं फलमिदं दशेयं मम। अयं सुहृदयं द्विषत् प्रयतदेशकालाविमाविति प्रतिवितर्कयन् प्रयतते बुधो नेतरः॥ (जिनेन्द्रव्याकरणम्—महावृत्तिः)

आदीपमाव्योमसमस्वभावं स्याद्वादमुद्रानतिभेदिवस्तु ।
तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यदितित्वदाज्ञा द्विषतांप्रलापाः ॥५॥

— स्याद्वादमञ्जरीकारिका ॥ ५ ॥

टीका—आदीपं—दीपादारभ्य आव्योम—व्योममर्यादीकृत्य, सर्ववस्तुपदार्थस्वरूपं समस्वभावं-समः-तुल्यः, स्वभावः—स्वरूपं यस्य तत्तथा । किञ्च वस्तुनः स्वरूपंद्रव्यपर्यायात्मकत्वमिति-क्रमः । तथा च वाचकमुख्यः-"उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्" इति, समस्वभावत्वं कुतः ? इति विशेषणद्वारेण हेतुमाह—स्याद्वाद-मुद्रानतिभेदि – स्यादित्यव्ययमनेकान्तद्योतकम् । ततः स्याद्वादः – अनेकान्तवादः, नित्यानित्याद्यनेकधर्मशबलैकवस्त्वभ्युपगम इति-यावत् । तस्यमुद्रा—मर्यादा—तां,—नातिभिनत्ति-नातिक्रामतीति स्याद्वादमुद्रानतिभेदि । यथा हि न्यायैकनिष्ठेराजनिराज्यश्रियं शासति सति सर्वाः प्रजास्तन्मुद्रां नातिवर्तितुमीशते, तदतिक्रमे-तासां सर्वार्थहानिभावात् एवं विजयिनि निष्कंटके स्याद्वादमहा-नरेन्द्रे, तदीयमुद्रांसर्वेऽपि पदार्था नातिक्रामन्ति तदुल्लंघने तेषां स्वरूपव्यवस्थाहानिप्रसक्तेः ॥ सर्ववस्तूनां समस्वभावत्वकथनञ्च परामिप्रायेणैकं वस्तु व्योमादि नित्यमेव अन्यच्च प्रदीपादि अनित्य-मेव इति वादस्य प्रतिक्षेप बीजम् सर्वे हि भावा—द्रव्यार्थिकनया-पेक्षया नित्याः, पर्यायार्थिकनयादेशात् पुनरनित्याः । तत्रैकान्ता-

नित्यतया परैरङ्गीकृतस्य प्रदीपस्य तावन्नित्यानित्यत्व व्यवस्थापने दिङ्मात्रमुच्यते, तथाहि—प्रदीपपर्यायापन्नास्तैजसाः परमाणवः स्वरसतस्तैलक्षयात् वाताभिघाताद् वा ज्योतिपपर्यायं परित्यज्य तमोरूपं पर्यायान्तरमाश्रयन्तोऽपि नैकान्तेनानित्याः पुद्गल द्रव्यरूप-तयावस्थितत्वात् तेषाम् । नह्येतावतैवानित्यत्वं यावतापूर्वपर्यायस्य-विनाशः, उत्तरपर्यायस्यचोत्पादः । न खलु मृद्द्रव्यंस्थासककोश-कुशूलशिवकघटाद्यवस्थान्तराण्यापद्यमानमप्येकान्ततो विनष्टम्, तेषु मृद्द्रव्यानुगमस्याबालगोपालंप्रतीतत्वात् । न च तमसः पौ-द्गलिकत्वमसिद्ध चाक्षुपत्वान्यथानुपपत्तेः प्रदीपालोकवत् ॥ अथ यच्चाक्षुपंतत्सर्वं स्वप्रतिभासे आलोकमपेक्षते । नचैवं तमः । तत् कथं चाक्षुपं । नैवम् । उलूकादीनामालोकमन्तरेणापि तत् प्रति-भासात् । यैस्त्वस्मदादिभिरन्यच्चाक्षुपं घटादिकमालोकं विनानोप-लभ्यते तैरपितिमिरमालोकयिष्यते, विचित्रत्वाद् भावानाम् । कथमन्यथा पीतश्वेतादयोऽपि स्वर्णमुक्ताफलाद्या आलोकापेक्ष-दर्शनाः प्रदीपचन्द्रादयस्तु प्रकाशान्तरनिरपेक्षाः । इतिसिद्ध तमश्चा-क्षुषम् ॥ रूपवत्त्वाच्चस्पर्शवत्त्वमपि प्रतीयते, शीतस्पर्शप्रत्ययजनक-त्वात् । यानि त्वनिबिडावयवत्वमप्रतिघातित्वमनुद्भूतस्पर्शविशेष-त्वमप्रतीयमानखण्डावयविद्रव्यप्रविभागत्वमित्यादीनि तमसः पौद्ग-गलिकत्त्वनिषेधाय परैः साधनान्युपन्यस्तानि तानिप्रदीप प्रभादृष्टान्ते-नैव प्रतिषेध्यानि, तुल्ययोगक्षेमत्वात् । नच वाच्यं तैजसाः परमा

एत: कथंतमस्त्वेन परिणमन्त इति। पुद्गलानां तत्तत्सामग्रीसहकृतानां विसदृशकार्य्योत्पादकत्वस्यापि दर्शनात्। दृष्टो ह्यार्द्रेन्धनसंयोगवशाद् भास्वररूपस्यापि वन्हेरभास्वररूपधूमकार्य्योत्पादः। इति सिद्धो नित्यानित्यः प्रदीपः यदापि निर्वाणादर्वाग् देदीप्यमानो दीपस्तदापि नव नव पर्यायोत्पादविनाशभाक्त्वात् प्रदीपान्वयाच्च नित्यानित्य एव॥ एवं व्योमापि उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकत्वादनित्यानित्यमेव। तथाहि—अवगाहकानां जीव पुद्गलानामवगाहदानोपग्रहणवनलक्षणम्। 'अवकाशदमाकाशम्॥ इतिवचनात्। यदा चावगाहका जीवपुद्गलाः प्रयोगतो विस्रसातो वा एकस्मान्नभः देशात् प्रदेशान्तरमुपसर्पन्ति तदा तस्य व्योम्नस्तैरवगाहकैः सममेकस्मिन प्रदेशे विभागः उत्तरस्मिंश्च प्रदेशे संयोगः। संयोगविभागौच परस्परं विरुद्धौ धर्मौ। तद्भेदे चावश्यंधर्मिणोभेदः। तथाचाहुः—"अयमेवहिभेदो भेदहेतुर्वा, यद् विरुद्धधर्माध्यासः कारणभेदश्चेति॥ ततश्च तदाकाशं पूर्वसंयोगविनाशलक्षणपरिणामापत्या विनष्टम्, उत्तरसंयोगोत्पादाख्य परिणामानुभवाच्चोत्पन्नम्। उभयत्राकाशद्रव्यस्यानुगतत्वाच्चोत्पादव्यययोरेकाधिकरणत्वम्॥ तथाच यद् "अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपंनित्यम्" इति नित्यलक्षणमाचक्षते। तदपास्तम्। एवंविधस्य कस्यचिद् वस्तुनोऽभावात्। "तद्भावाव्ययं नित्यम्"। इति तु सत्यं नित्यलक्षणम् उत्पादविनाशयोः सद्भावेऽपि तद्भावाद् अन्वयिरूपाद् यन्नव्येति

तन्नित्यमिति तदर्थस्य घटमानत्वात् यदि हि अप्रच्युतादिलक्षणं नित्यमिष्यते तदोत्पादव्यययोर्निराधारत्वप्रसङ्गः। नच तयोर्योगे नित्यत्वहानिः। "द्रव्यं पर्यायवियुतं पर्याया द्रव्यवर्जिताः क कदा केन किंरूपाः दृष्टामानेन केनवा ॥ इतिवचनात्। लौकिकानामपि घटाकाशं पटाकाशमिति व्यवहारप्रसिद्धेराकाशस्य नित्यानित्यत्वम्। घटाकाशमपि हि यदा घटापगमे पटेनाक्रान्तं तदा पटाकाशमिति व्यवहारः। नचायमौपचारिकत्वादप्रमाणमेव। उपचारस्यापि किञ्चित् साधर्म्यद्वारेण मुख्यार्थस्पर्शित्वात्। नभसोहि यत् किल सर्वव्यापकत्वं मुख्यं परिमाणं तत् तदाधेयघटपटादिसम्बन्धि नियतपरिमाणवशात् कल्पितभेदं सत्प्रतिनियतदेश व्यापितया व्यवह्रियमाणं घटाकाशपटाकाशादि तत्तद्व्यपदेशनिबन्धनं भवति। तत्तद्घटादिसम्बन्धेच व्यापकत्वेनावस्थितस्य व्योम्नोऽवस्थान्तरापत्तिः, ततश्चावस्थाभेदेऽवस्थावतोऽपिभेदः। तास्मांततोऽविष्वगभावात् इतिसिद्धं नित्यानित्यत्वं व्योम्नः ॥ स्वायंभुवा—अपि हि नित्यानित्यमेव वस्तुप्रपन्नाः। तथाचाहुस्त्रिविधः खल्वयधर्मिणः परिणामो धर्मलक्षणावस्थारूपः। सुवर्णंधर्मि। तस्य धर्मपरिणामो वर्धमानरुचकादिः। धर्मस्य तु लक्षणपरिणामोऽनागतत्वादिः यदा खल्वयं हेमकारो वर्धमानकं भंक्त्वा रुचकमारचयति तदा वर्धमानको वर्तमानतालक्षणं हित्वा अतीततालक्षणमापद्यते। रुचकस्तु अनागततालक्षणं हित्वा वर्तमानतालक्षणमापद्यते। वर्तमानतता-

पन्न एव तु रुचकोनगुणभावमापद्यमानोऽवस्थापरिणामवान् भवति । सो ऽयं त्रिविधः परिणामो धर्मिणः । धर्मलक्षणावस्थाश्च धर्मिणोभिन्नाश्चाभिन्नाश्च । तथा च ते धर्म्यभेदात् तन्नित्यत्वेन नित्याः । भेदाच्चोत्पत्तिविनाशविषयत्वम् । इत्युभयमुपपन्नमिति ॥ अथोत्तरार्धं विव्रियते । एवञ्चोत्पादव्ययध्रौव्यात्मकत्वे सर्वभावानां सिद्धे ऽपि तद्वस्त्वेकमाकाशात्मादिकं नित्यमेव, अन्यच्च प्रदीपघटादिकमनित्यमेव इत्येवकारोऽत्रापिसम्बध्यते । इत्थंहि दुर्नयवादापत्तिः । अनन्तधर्मात्मके वस्तुनि स्वाभिप्रेतनित्यत्वादि धर्मसमर्थनप्रवणा शेष धर्म—तिरस्कारेण प्रवर्तमाना दुर्नया इति तल्लक्षणात् । इत्यनेनोल्लेखेन त्वदाज्ञा द्विषतां भवत्प्रणीत शासनविरोधिनां प्रलापाःप्रलपितानि, असम्बद्धवाक्यानीति यावत् ॥ अत्र च प्रथममादीपमिति परप्रसिद्धयानित्यपक्षोल्लेखेऽपि यदुत्तरत्र यथासंख्यपरिहारेणापूर्वतरं नित्यमेवैकमित्युक्तं तदेवं ज्ञापयति । यदनित्यं तदपिनित्यमेव कथञ्चित् । यच्चनित्यं तदप्यनित्यमेव कथञ्चित् । प्रक्रान्तवादिभिरप्येकस्यामेव पृथिव्यां नित्यानित्यत्वाऽभ्युपगमात् । तथा च प्रशस्तकारः—' सा तु द्विविधा नित्या चानित्या च । परमाणु लक्षणानित्या, कार्यलक्षणात्वनित्या' इति । न चात्र परमाणुकार्य्य द्रव्यलक्षणविषयद्वयभेदाद् नैकाधिकरणं नित्यानित्यत्वमितिवाच्य । पृथिवीत्वस्योभयत्राप्यव्यभिचारात् । एवमबादिष्वपि इति । आकाशेऽपि संयोगविभागांगीकारात् तैरनित्यत्वं

युक्त्या प्रतिपन्नमेव । तथा च एवाह—शब्दकारणत्ववचनात् संयोगविभागौ" इति नित्यानित्यपक्षयोः संवलितत्वम् । एतच्च लेशतोभावितमेवेति ॥ प्रलापप्रायत्वं च परवचनानामित्थं समर्थनीयम् । वस्तुनस्तावदर्थक्रियाकारित्वं लक्षणम् । तच्चैकान्तनित्यानित्यपक्षयोः न घटते । अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपो हि नित्यः, स च क्रमेणार्थक्रियां कुर्वीत अक्रमेण वा ! अन्योऽन्यव्यवच्छेदरूपाणां प्रकारान्तरासम्भवात् । तत्र न तावत् क्रमेण, स हि कालान्तर भाविनीः क्रियाः प्रथमक्रियाकाल एव प्रसह्य कुर्यात् : समर्थस्य कालक्षेपायोगात् कालक्षेपिणो वा असामर्थ्यप्राप्तेः समर्थोऽपि तत्तत् सहकारिसमवधाने तं तमर्थं करोतीति चेत् , न तर्हि तस्य सामर्थ्यम् , अपरसहकारिसापेक्षवृत्तित्वात् । "सापेक्षमसमर्थम्" इति न्यायात् ॥ न तेन सहकारिणोऽपेक्ष्यन्ते अपितु कार्यमेवसहकारिष्वसत्स्वभवत तान्पेक्षते इतिचेत् तत् किं स भावोऽसमर्थो समर्थो वा,समर्थश्चेत् , किंसहकारिमुख प्रेक्षणदीनानि तान्युपेक्षते न पुनर्झटिति घटयति । ननु समर्थमपिबीज मिलाजलानिलादि सहकारिसहितमेवांकुरंकरोति नान्यथा । तत् किं तस्य सहकारिभिः किञ्चिदुपक्रियेत नवा यदि नोपक्रियेत तदा सहकारिसन्निधानात् प्रागिव, किन्न तदाप्यर्थक्रियायामुदास्ते उपक्रियेत इति चेत् सः तर्हितैरुपकारोऽभिन्नोभिन्नोवा क्रियते इतिवाच्यम् । अभेदे स एव क्रियते । इति लाभमिच्छतो मूलक्षतिरायानाकृतकत्वेन तस्यानित्यत्वापत्तेः । भेदे तु कथं तस्यो-

पकारः, किन सह्यविन्ध्याद्रेरपि, तत् सम्बन्धात् तस्यायमितिचेत्, उपकार्य्योपकारयोः कः सम्बन्धः ? न तावत् संयोगः द्रव्ययोरेव तस्यभावात्, अत्र तु उपकार्यं द्रव्यम्, उपकारश्चक्रियेति न संयोगः, नापि समवायः, तस्यैकत्वात् व्यापकत्वाच्च प्रत्यासत्तिविप्रकर्षाभावेन सर्वत्रतुल्यत्वात् न नियतैः सम्बन्धिभिः संबन्धोयुक्तः। नियत संबन्धिसंबन्धे चांगीक्रियमाणेतत् कृत उपकारोऽस्य समवायस्याभ्युपगन्तव्यः। तथाच सति उपकारस्यभेदाभेदकल्पनातद् अवस्थैव। उपकारस्यसमवायस्य समवायादभेदे समवाय एव कृतः स्यात् भेदेपुनरपि समवायस्य न नियतसंबंधिसंबन्धत्वम्। तन्नैकान्त नित्योभावः क्रमेणार्थक्रियां कुरुते। नाप्यक्रमेण। नह्येकोभावः सकलकालकलाकलापभाविनीर्युगपत् सर्वाः क्रियाः करोतीति प्रातीतिकम्। कुरुतां वा, तथापि द्वितीयक्षणे किं कुर्यात् करणे वा, क्रमपक्षभावीदोषः। अकरणे त्वर्थक्रियाकारित्वाभावात् अवस्तुत्व प्रसंगः। इत्येकान्तनित्यात् क्रमाक्रमाभ्यां व्याप्तार्थक्रिया व्यापकानुपलब्धिबलात्, व्यापकनिवृत्तौ निवर्तमानास्वव्याप्यमर्थक्रियाकारित्वंनिवर्तयति। अर्थक्रियाकारित्वञ्चनिवर्तमानं स्वव्याप्यंसत्त्वं निवर्तयति, इतिनैकान्तनित्यपक्षोयुक्तिक्षमः। एकान्तानित्यपक्षोऽपि न कर्त्ताकरणार्हः। अनित्योहिप्रतिक्षणविनाशी सच न क्रमेणार्थकियासमर्थः देशकृतस्य कालकृतस्य च क्रमस्यैवाभावात्, क्रमोहि पौर्वापर्यम्, तच्च क्षणिक-

स्यासंभवि । अवस्थितस्यैव हि नानादेशकालव्याप्तिः देशक्रमः कालक्रमश्चाभिधीयते नचैकान्तविनाशिनिसास्तियदाहुः— योयत्रैवसतत्रैव यो यदैव तदैव सः । न देशकालयोर्व्याप्ति भावाना-मिहविद्यते ॥ नच संतानापेक्षया पूर्वोत्तरक्षणानांक्रमः संभवति, संतानस्यावस्तुत्वात्, वस्तुत्वेऽपि तस्य यदि क्षणिकत्वं, न तर्हि क्षणेभ्यः कश्चिद् विशेषः अथाक्षणिकत्वंतर्हि समाप्तः क्षणभंगवादः ॥ नाप्य-क्रमणार्थक्रियाक्षणिके संभवति । सहयेको बीजपूरादिक्षणो युगपदनेकान रसादिक्षणान जनयन एकेनस्वभावेन जनयेत्, नानास्वभावैर्वा? यद्येकेनतदातेषांरसादिक्षणानामेकत्वं स्यात् एकस्वभावजन्यत्वात । अथ नानास्वभावैं जनयति किञ्चिद् रूपादिकमुपादानभावेन, किञ्चिद्रसादिकं सहकारित्वेन, इतिचेन्न तर्हि ते स्वभावा स्तस्यात्मभूता अनात्मभूता वा! अनात्मभूताश्चेत् स्वभावत्वहानिः, यद्यात्मभूताः तर्हितस्यानेकत्वम् । अनेकस्वभावत्वात्, स्वभावानां वा एकत्वं प्रसज्येत तदव्यतिरिक्तत्वात् तेषां तस्यचैकत्वात् ॥ अथय एव एकत्रोपादानभावः स एवान्यत्र सहकारिभाव इति न स्वभावभेद इष्यते । तर्हि नित्यस्यैकरूपस्यापिक्रमेण नानाकार्यकारिणः स्वभावभेदःकार्यसांकर्य्यञ्च कथमिष्यते क्षणिकवादिना । अथ नित्यमेकरूपत्वादक्रमं, अक्रमाच्च क्रमिणां नानाकार्य्याणां कथमुत्पत्तिः इतिचेत्, अहो स्वपक्षपाती देवानांप्रियः यः खलु स्वयमेकस्माद् निरंशाद् रूपादिक्षणलक्षणात् कारणाद् युगपद-